श्रीः

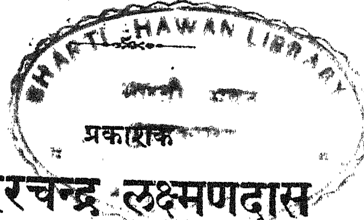
महाकविभासप्रणीतम्

प्रतिमानाटकम्

लवपुरीयसनातनधर्ममहाविद्यालयसंस्कृतविभागप्रधानाध्यापक-
विद्याभास्कर-ऋषिकुलस्नातक-श्रीपरमेश्वरानन्दशास्त्रिणा
विरचितया सरलसंस्कृतव्याख्यया

तथा

खण्डूड़ीत्युपाह्व-विद्वद्वरश्रीकाशीरामशर्मात्मजज्योतिर्विंत्तिलक-
श्रीदौलतरामशर्मतनुजनुषा श्रीविजयानन्दशास्त्रिणा
विरचितेन सुललितहिन्दीभाषानुवादेन च
समलङ्कृतम्



प्रकाशक

मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास
संस्कृत हिन्दी पुस्तक विक्रेता
सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर

तृतीयावृत्तिः] विं० सं० १९९६ [मूल्यम्

प्रकाशक—

लाला तुलसीराम जैन, मैनेजिंग
प्रोप्राइटर, मेहरचन्द लक्ष्मणदास,
संस्कृत हिंदी पुस्तक विक्रेता,
सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर।

मुद्रक—

लाला खज़ानचीराम जैन,
मैनेजर, मनोहर इलेक्ट्रिक प्रेस,
सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर।

प्राक्कथन

यस्याश्चोरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरो
भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबाणश्च बाणः
केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय ॥ *

(प्रसन्नराघव)

प्रस्तुत प्रतिमा-नाटक के कर्ता भास को कविवर जयदेव ने उक्त पद्य में कविता-कामिनी का हास मानकर प्रशंसित किया है। इससे निश्चित होता है कि प्राचीन काल में भास साधारण जनता में ही नहीं अपितु संस्कृत भारती के उच्च कवियों में भी बड़े प्रीतिभाजन थे और उनकी रचनाएँ रसिक-समाज में विशेष चुलबुलाहट पैदा करने वाली हुआ करती थीं। दुर्भाग्यवश ऐसे उत्कृष्ट कवि और उनकी रचनाओं को हम भूल बैठे थे।

परलोकगत पं० गणपति शास्त्री ने अनेक प्राचीन ग्रन्थों का उद्धार किया। अपने परिश्रम के फलरूप उन्होंने वे वे ग्रन्थ-रत्न सुलभ किये, जिनका नाम तक बड़े बड़े विद्वान् भूल गये थे। सन् १९१२ में उन्होंने तेरह नाटक प्रकाशित किये। ये नाटक दूसरे नाटकों से कुछ विलक्षण थे। संस्कृत नाटकों में कवि अपना परिचय देता है। कालिदास, भवभूति आदि इसी शैली का अनुसरण करते हैं। इन नव-प्रकाशित नाटकों की मूल हस्तलिखित प्रतियों में समाप्ति पर प्रत्येक नाटक का पृथक् पृथक् नाम-निर्देश हुआ रहने से नाम का निश्चय तो हो गया किन्तु इनमें नाटककार का नामोल्लेख न होने से ऐतिहासिकों के समक्ष एक विकट समस्या खड़ी हो गई। पण्डित गणपति शास्त्री ने अन्तरङ्ग बहिरङ्ग परीक्षा कर इन तेरहों को भासकृत सिद्ध किया है।

---

* चोर कवि जिसकी अलकें हैं, मयूर कवि जिसका कर्णफूल है, भास कवि जिसका हास है, कविकुलगुरु कालिदास जिसके हाव-भाव हैं, हर्ष कवि जिसके हृदय का हर्ष है, और बाण कवि तो साक्षात् पञ्चसायक कामदेव है। कहिए, ऐसी कविता-कामिनी किसका उल्लास बढ़ाने वाली नहीं?

भासकृत होने में प्रमाण

राजशेखर ने लिखा है—

> 'भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
> स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥'

(जल्हणकृत सूक्ति-मुक्तावली में उद्धृत)

—जब कविता के ऊँचे पारखी विद्वानों ने भास के नाटक-समूह की परीक्षा के लिए उन्हें समालोचना की अग्नि में डाला तो वह अग्नि स्वप्न-वासवदत्त को न जला सकी। इससे निश्चित होता है कि राजशेखर को भास का बहुत से नाटकों का रचयिता होना विदित था, जिनमें स्वप्न-वासवदत्त भास की सर्वोत्कृष्ट कृति थी । और इन नव-प्रकाशित तेरह नाटकों में स्वप्न-नाटक भी एक है । इसमें उदयन और वासवदत्ता की कथा है। पं० गणपति शास्त्री ने इससे अनुमान किया कि राजशेखर-निर्दिष्ट स्वप्न-वासवदत्त यही है । और क्योंकि उल्लिखित श्लोक के अनुसार स्वप्न-वासवदत्त का कर्ता भास माना गया है, अतः इस नव-उपलब्ध स्वप्न-नाटक का कर्ता भी भास ही था। पुनः उन्होंने लिखा कि क्योंकि रचना आदि में ये सब नाटक एक ही प्रकार के हैं, अतः इन सब का कर्ता भास ही होगा।

रचनाविन्यास में सादृश्य

इन तेरह नाटकों के रचयिता का एक ही कवि—भास—होना इनके रचनाविन्यास आदि सादृश्य से भी सिद्ध होता है। वाक्पतिराज (लगभग सन् ८०० ई०) ने अपने 'गउडवहो' नामक प्राकृत काव्य में लिखा है—

> 'भासम्मि जलणमित्ते कुन्तीपुत्ते तहावि रघुआरे।
> सोबन्धवे अ बन्धम्मि हारिअन्दे अ आणन्दो ॥'

इसमें भास को 'जलणमित्ते'—ज्वलनमित्रम्—अग्नि का मित्र कहा गया है। कतिपय विद्वानों की सम्मति में यह पद उक्त नाटकों के लेखक पर पूरा उतरता है। स्वप्न-वासवदत्त में लावाणक की अग्नि का उल्लेख है, जिसमें वासवदत्ता के जलने की झूठी खबर फैलाकर भास को नाटकीय वस्तुविकास का उचित अवसर मिला है। पञ्चरात्र में वनाग्नि का वर्णन है । अभिषेकनाटक में सीता का अग्नि में प्रवेश करना और अग्नि-देवता का उनकी विशुद्धता की साक्षी देना वर्णित है । अविमारक में चरित्रनायक का अपने आपको वनाग्नि में फेंकना किन्तु आग

की लपटों का चन्दन के समान शीतल होना लिखा है।

इन सब नाटकों का एक ही ग्रन्थकार द्वारा लिखा होना कई अन्य आधारों से भी सिद्ध होता है। साधारण नियम है कि नान्दी के अन्त में सूत्रधार का प्रवेश होता है, किन्तु इन तेरहों नाटकों में नान्दी का सर्वथा अभाव है। सब के प्रारम्भ में 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः'—नान्दी के अन्त में सूत्रधार का प्रवेश, यह एक-सा वाक्य है। यह बात बाणभट्ट के भास के विषय में पढ़े गये श्लोक के 'सूत्रधारकृतारम्भैः' पद से और भी स्पष्ट हो जाती है। प्रस्तावना के स्थान में सर्वत्र 'स्थापना' पद का प्रयोग है। नाटक अत्यन्त संक्षिप्त हैं और सर्वत्र नाटककार का नाम स्मरण नहीं हुआ है। स्वप्न, प्रतिज्ञा, प्रतिमा और पञ्चरात्र के मङ्गल श्लोकों में नाटकीय कथा का भी संकेत करने वाली शैली अवलम्बन की गई है। प्रतिज्ञायौगन्धरायण और स्वप्न-वासवदत्त तो एक ही राजा उदयन और उसकी रानी वासवदत्ता तथा पद्मावती के विषय में लिखे हुए हैं, जो कथा की दृष्टि से पूर्वार्ध और उत्तरार्ध हैं। वाक्य-विन्यास तथा भाषाशैली तेरहों नाटकों की आपस में बहुत मिलती-जुलती है। स्वप्न-वासवदत्त, प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण, प्रतिमानाटक और अभिषेकनाटक इन सब में प्रतिहारी का नाम विजया है। बहुत से नाटकों में भरतवाक्य प्रायः एक-सा ही है—'इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः'—हमारे राजसिंह इस सम्पूर्ण पृथ्वी पर शासन करें। बालचरित और चारुदत्त के प्रथम अङ्क तथा अविमारक के तृतीय अङ्क में निम्नलिखित श्लोक ज्यों-का-त्यों है—

'लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलतां गता॥'

—अन्धकार मानो अङ्गों को पोत रहा है और आकाश मानो काजल बरसा रहा है। असत्पुरुष की सेवा की भाँति दृष्टि निष्फल हो गई है। उपर्युक्त सब बातें इसी परिणाम पर पहुँचाती हैं कि ये नाटक एक ही कवि भास की रचनाएँ हैं।

भास का कुशल कवि और बहुत से नाटकों का रचयिता होना इससे भी सिद्ध होता है। महाकवि कालिदास ने अपने मालविकाग्निमित्र में लिखा है—'प्रथितयशसां भाससौमिल्लककविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवेः कालिदासस्य क्रियायां कथं बहुमानः'—लब्धप्रतिष्ठ भास, सौमिल्लक, कविपुत्र आदि कवियों के प्रबन्धों को छोड़कर आधुनिक कवि कालिदास की कृति का इतना अधिक आदर क्योंकर होने लगा? इससे विदित होता है कि

उस समय सर्वसाधारण में भास के नाटकों का बहुत प्रचार हो चुका था और भास की कीर्ति-कौमुदी सुविस्तृत हो चुकी थी, जब कि कालिदास अभी कविता के मन्दिर में प्रवेश कर ही रहे थे। महाकवि बाणभट्ट ने अपने 'हर्षचरित' के प्रारम्भ में इस प्रकार भास की प्रशंसा की है—

'सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥'

भास ने सूत्रधार (नाटक का मैनेजर, कारीगर) से आरम्भ किये गये बहुत से भूमिका (पार्ट, आँगन) वाले, तथा पताका (मुख्य अवान्तर घटना, ध्वजा) से सुशोभित देव-मन्दिरों के समान अपने नाटकों से बहुत यश पाया।

यहाँ पर 'नाटकैः' यह बहुवचनान्त पद ध्यान देने योग्य है। इससे बाणभट्ट के समय भास के बहुत से नाटकों का प्रचलित होना स्पष्ट प्रतीत होता है। पूर्वोद्धृत 'भासनाटकचक्रेऽपि' पद्य में राजशेखर ने तो भास के बहुत से नाटकों का स्पष्ट ही उल्लेख किया है।

अन्य मत

पं० गणपति शास्त्री का निकाला हुआ परिणाम बहुत से एतद्देशीय और विदेशीय विद्वानों ने स्वीकार कर लिया परन्तु अनेक ऐसे भी विद्वान् हैं, जो ऐसा नहीं मानते। कुछ विद्वानों का कहना है कि 'स्वप्न-वासवदत्त' भासकृत हो सकता है। क्योंकि आचार्य अभिनवगुप्त ने अपनी 'अभिनव-भारती' में इसका उल्लेख किया है। किन्तु अन्य रूपकों को भासकृत मानने में कोई प्रबल कारण नहीं। स्वर्गीय पण्डित रामावतार शर्मा की सम्मति में कतिपय नाटकों के कुछ अंश भासरचित हैं किन्तु समग्र नाटक भासरचित नहीं।

इन दोनों मतों के अतिरिक्त एक तीसरा भी मत है। उसके मानने वालों का कहना है कि भारत के केरल आदि दक्षिण प्रान्तों में प्राचीन कवियों के अनेक नाटकों का संक्षेप और परिवर्तन करने का यही प्रयोजन था कि ये नाटक रंगमंच पर आसानी से खेले जा सकें। इसी अभिप्राय से शाकुन्तलादि नाटकों का भी संक्षिप्त और परिवर्तित रूप वहाँ मिलता है। इसी प्रकार त्रिवन्द्रम् से प्रकाशित हुए ये तेरह नाटक प्राचीन नाटकों का संक्षेप और रूपान्तर ही है। यह मत इस समय बहुत विद्वानों को मान्य है। इसका कारण है। अनेक प्राचीन ग्रन्थकारों ने भास-

कृत स्वप्न-वासवदत्त के नाम से कई श्लोक अपने ग्रन्थों में उद्धृत किये हैं। वे सब नव-उपलब्ध स्वप्न-नाटक में नहीं मिलते तथा भास के नाम से जो सूक्तियाँ प्रसिद्ध हैं, वे एक भी इन नव-उपलब्ध नाटकों में नहीं पाई जातीं। अतः विद्वानों का अनुमान है कि नव-उपलब्ध स्वप्न-नाटक में से अनेक श्लोक लुप्त हो गये हैं। इस विवाद के रहते हुए इतना तो निश्चित है कि भास ने कोई स्वप्न-वासवदत्त नाटक रचा था और स्वप्न-नाटक उसी का रूपान्तर है। इस रूपान्तर का मूल से कितना भेद हुआ, यह कहा नहीं जा सकता। संभव है, यह भेद बहुत ही अल्प हो। अनेक प्रमाणों के आधार पर यही निश्चय होता है कि राजशेखरोपवर्णित स्वप्न-वासवदत्त यही है और भास ही उसका रचयिता है। और जब यह बात सिद्ध हो गई तो प्रस्तुत प्रतिमा आदि बारह नाटकों का भास की रचना मानना स्वयं सिद्ध हो गया।

भास का काल

भास के समय के विषय में ऐतिहासिकों में बड़ा मतभेद है। पं० गणपति शास्त्री ने भास को चाणक्य तथा पाणिनि से भी प्राचीन सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। प्रस्तुत प्रतिमानाटक के पाँचवें अङ्क में 'बार्हस्पत्यम् अर्थशास्त्रम्—' बृहस्पतिकृत अर्थशास्त्र का उल्लेख है, चाणक्यकृत कौटिल्य अर्थशास्त्र का नहीं। बृहस्पतिकृत अर्थशास्त्र कौटिल्य से भी प्राचीन है। इससे निश्चित होता है कि भास चाणक्य के पूर्व रहा होगा। भास का चाणक्य से प्राचीन होना एक और कारण से भी सिद्ध है। चाणक्य ने अपने कौटिल्य अर्थशास्त्र में शूरों को युद्ध करने के लिए उत्साहित करने के प्रसंग में 'अपीह श्लोकौ भवतः' लिखकर प्रमाण कोटि में जिन श्लोकों को उद्धृत किया है, उनमें एक निम्नलिखित श्लोक भी है—

> 'नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
> तत् तस्य मा भून्नरकं च गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्॥'

(कौटिल्य अर्थशास्त्र अधि० १० अ० ३)

यह श्लोक भास के उपलब्ध 'प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण नाटक' के दूसरे अङ्क में पाया जाता है। चाणक्य का काल चौथी शताब्दी ईस्वी पूर्व माना जाता है। प्रयोगों की अपाणिनीयता सिद्ध करती है कि पाणिनि-व्याकरण के सर्वमान्य होने से पूर्व ही इन नाटकों की रचना हुई होगी। इन आधारों पर भास का समय कम से कम पाँचवीं शताब्दी ईस्वी के पूर्व माना जाता है।

डा० बार्नेट का मत है कि इन नाटकों का रचयिता 'कल्पित भास' सातवीं शताब्दी का केरलीय कवि है, क्योंकि उसी समय के लिखे गये महेन्द्रवीर विक्रम विरचित 'मत्तविलास प्रहसन' से इन नाटकों की भाषा तथा पारिभाषिक शब्द बहुत समानता रखते हैं और राजसिंह, जिसका नाम इन नाटकों के भरतवाक्यों में अधिकता से मिलता है, केरल देश का सातवीं शताब्दी का राजा माना गया है।

इसके विरुद्ध एक मत है, जो अधिकांश विद्वानों को मान्य है : वे भरतवाक्यों के 'राजसिंह' शब्द को किसी व्यक्ति का नाम नहीं मानते : उनका कहना है कि भामह द्वारा उद्धृत तथा कालिदास और बाणभट्ट द्वारा प्रशंसित होने से भास का समय अवश्य ही प्राचीन होना चाहिए। इन नाटकों की भाषा, पारिभाषिक शब्द, विशेष करके प्राकृत प्राचीनता के ही द्योतक हैं। वे नाटकों की प्राकृत-विषयक परीक्षा करके इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि भास, कालिदास (पाँचवीं शताब्दी) से प्राचीन रहे होंगे और अश्वघोष (द्वितीय शताब्दी) से अर्वाचीन, अर्थात् सन् ३०० या ३५० ई० के लगभग। यही मत अधिकांश विद्वानों को मान्य है।

भास के दूसरे बारह नाटक

१ मध्यमव्यायोग—इसमें हिडिम्बा राक्षसी और भीम के पूर्वप्रेम का स्मरण, उनका अपने पुत्र घटोत्कच द्वारा चिरविरह के पश्चात् पुनर्मिलन तथा भीम द्वारा एक ब्राह्मण के लड़के की एक भयंकर राक्षस से रक्षा किया जाना वर्णित है।

२ दूतघटोत्कच—इसमें हिडिम्बा से उत्पन्न हुए भीमपुत्र घटोत्कच का अभिमन्यु के मारे जाने पर परस्पर सन्धि के सन्देश को लिये हुए दुर्योधन के पास भेजा जाना, और कौरवों के न मानने पर वहाँ अर्जुन की युद्धविषयक भीषण प्रतिज्ञा सुना उन्हें संक्षुब्ध कर युद्ध जारी रखना वर्णित है।

३ पञ्चरात्र—इसमें महाभारत की एक कथा का अन्यथावर्णन है। द्रोण ने कौरवों का यज्ञ किया और दक्षिणा में उनसे आधा राज्य माँग पाण्डवों को देने के लिए कहा। दुर्योधन इस शर्त पर राज्य देने को राजी हुआ कि पाँच रात (पाँच दिन) के अन्दर पाण्डवों का पता लगाना होगा, जिसे वह असंभव समझे बैठा था। द्रोण ने पाण्डवों का पता लगा लिया और शर्त के अनुसार उन्हें आधा राज्य दे दिया गया।

४ दूतवाक्य—इसमें सन्धि करने के लिए श्रीकृष्ण का दूत बनकर दुर्योधन के पास जाना, दुर्योधन का उनका तिरस्कार करना और उनके

पाण्डवों को आधा राज्य देने का प्रस्ताव करने पर उन्हें कारागार में फेंकने का प्रयत्न करना किन्तु श्रीकृष्ण के दिव्य प्रभाव के कारण दुर्योधन का कृतकार्य न होना और अन्त में श्रीकृष्ण का विफलमनोरथ हो पाण्डवसेना में चला जाना वर्णित है।

५ बालचरित्र—इसका कथानक श्रीमद्भागवत से लिया गया है। इसमें श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं का हृदयग्राही विशद वर्णन है।

६ अविमारक—इसमें छः अंक हैं और राजकुमार अविमारक तथा कुन्तिभोजसुता राजकुमारी कुरंगी की प्रणय-कथा का चारु-चित्रण है।

७ प्रतिज्ञायौगन्धरायण—इसमें मन्त्री यौगन्धरायण की नीति-पटुता और वत्सराज उदयन तथा राजकुमारी वासवदत्ता का प्रणय वर्णित है।

८ स्वप्नवासवदत्त—वास्तव में यह भास के प्रतिज्ञायौगन्धरायण का ही परिशेष है। इसमें मन्त्री यौगन्धरायण की नीति, वत्सराज उदयन और राजकुमारी वासवदत्ता का प्रणय, राज्य की रक्षा और शक्ति बढ़ाने के निमित्त मगधराज की बहन राजकुमारी पद्मावती से उदयन का विवाह, और तत्पश्चात् मगधराज की सहायता से खोया हुआ वत्सदेश का राज्य पुनः प्राप्त करने का वर्णन है। इसकी कथा छः अंकों में समाप्त हुई है। विद्वानों का कथन है कि भास की उपलब्ध कृतियों में यह सब से उत्कृष्ट है।

९ अभिषेकनाटक—इसमें वालिवध, हनुमान् का लंका में जाकर सीता से मिलना, और रावण की अवमानना करना, तथा रावणवध एवं रामराज्याभिषेक का वर्णन है।

१० चारुदत्त—यद्यपि यह नाटक अपूर्ण है, इसके चार अंक ही मिलते हैं तथापि यह बड़े महत्त्व का माना जाता है। क्योंकि शूद्रक कवि का प्रसिद्ध मृच्छकटिक नाटक इसी के आधार पर लिखा माना जाता है। इसमें धनहीन किन्तु चरित्रसम्पन्न उदात्तप्रकृति ब्राह्मण चारुदत्त तथा गुण-ग्राहिणी वारवनिता वसन्तसेना के आदर्श प्रेम का मार्मिक वर्णन है।

११ ऊरुभङ्ग—संस्कृत साहित्य में केवल यही एक वियोगान्त नाटक है। इसमें भीम-दुर्योधन का गदायुद्ध तथा भरी सभा में द्रौपदी के अपमान का बदला लेने के लिए भीम का गदाद्वारा दुर्योधन की जाँघ तोड़ उसके वध करने का करुणापूर्ण वर्णन है। नाटक छोटा होने पर भी नाटकीय दृष्टि से बड़े महत्त्व का है।

१२ कर्णभार—इसमें देवराज इन्द्र का ब्राह्मण के वेश में आकर दानवीर कर्ण के अभेद्य कवच-कुण्डल माँग ले जाना, और कर्ण का युद्ध-भार ग्रहण कर मद्रराज शल्य के साथ अर्जुन से युद्ध करने के लिए जाना वर्णित है।

प्रतिमा और स्वप्नवासवदत्त में घटनासाम्य

दोनों नाटकों का कर्ता भास है। दोनों में परस्पर साम्य है। प्रस्तुत प्रतिमा में राम राज्याधिकार से वञ्चित होते हैं। कैकेयी इसमें कारण बनती है। राम सीता वन को चल देते हैं। स्वप्न में उदयन का राज्यभंग हो जाता है। उनका शत्रु राज्य हर लेता है। उनके प्रतिनिधि मन्त्री यौगन्धरायण राजरानी वासवदत्ता को लिये हुए वन को जाते हैं। दोनों जगह तपोवन है, तपस्वी हैं, मृग हैं, वही सुहावना आश्रम का दृश्य है। प्रतिमा में लक्ष्मण अनुगमन करता है तो वही अनुगमन स्वप्न में कुछ भेद से कवि ने लावाणक के ब्रह्मचारी से कराया है। पतिसेवा के लिए राजमहल के सुखों को ठुकराने वाली इधर सती सीता है तो उधर पति के लिए अपना सब कुछ न्योछावर करने वाली वासवदत्ता है। प्रतिमा में दशरथ का विलाप है तो स्वप्न में लावाणक के जल जाने पर उदयन का विलाप है। इधर राजा का अनन्यभक्त अमात्य सुमन्त्र है तो उधर अमात्य रुमण्वान्। प्रतिमा के तीसरे अङ्क में कवि ने ननिहाल से लौटे आ रहे भरत को विश्राम करने उद्यान में पहुँचा प्रतिमागृह में शोकाकुल करा रुलाया है तो उधर स्वप्न में उदयन को पर्यटन करने उद्यान में पहुँचा विदूषक के प्रश्न पूछने पर वासवदत्ता के शोक में उससे आँसू बहाये हैं। दोनों को मर्मान्त वेदना पहुँचती है। इस अवसर पर प्रतिमा में भरत माताओं को आया देख अपने आपको सँभालता है। स्वप्न में अचानक पद्मावती के उपस्थित होने पर उदयन अपने आपको सँभालता है। स्वप्न में राज्य का हरण करने वाला आरुणि है। प्रतिमा में राजलक्ष्मी सीता का हरण करने वाला रावण। दोनों अन्यायी हैं। दोनों को दण्ड देना ही कवि ने लक्ष्य रक्खा है। दोनों नाटकों में तपस्या है, त्याग है, कठोर यातनाएँ हैं और उसका परिणाम, शत्रु से युद्ध कर उन्हें अपने किये का फल चखा, मृत्यु दण्ड देकर, अन्त में अपने न्यायोचित अधिकारों की प्राप्ति है।

दोनों नाटकों में समाप्ति अंक के ठीक पूर्व दोनों जगह कवि को क्षात्रधर्म की रक्षा के लिए शत्रु पर विजय प्राप्त करानी है। स्वप्न में

पाँचवें अङ्क की समाप्ति पर आरुणि पर चढ़ाई करने की तैयारी होती है। प्रतिमा में वही तैयारी छठे अङ्क की समाप्ति पर होती है। दोनों जगह प्रचण्ड वीरता है, क्षत्रियोचित विजयाकांक्षा है। दोनों जगह युद्धवर्णन परोक्ष ही रक्खा है। स्वप्न में दर्शक आदि राजाओं की सहायता से सेना को सुसज्जित कर जहाँ उदयन—'अयमिदानीम्,

'उपेत्य नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे तमारुणिं दारुणकर्मदक्षम्।
विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे महार्णवाभे युधि नाशयामि ॥'

(स्वप्न ५।१३)

—इस प्रकार युद्ध के लिए तत्पर होता है, वहाँ प्रतिमा में अधीनस्थ राजमण्डल को सुसज्जित कर कवि ने भरत को—अयमिदानीम्,

'वेलामिमां मत्तगजान्धकारां करोमि सैन्यौघनिवेशनद्धाम्।
बलैस्तरद्भिश्च नयामि तुल्यं ग्लानिं समुद्रं सह रावणेन ॥'

(प्रतिमा ६।१६)

—इस प्रकार युद्धोन्मुख कराया। दोनों जगह प्रचण्ड वीरता है, बल है, दर्प है, कवि ने रणदुन्दुभि बजाई है।

स्वप्न के अन्तिम छठे अङ्क में उदयन आरुणि का वध कर अपना खोया हुआ राज्य प्राप्त करता है। उदयन को प्रियवस्तु वासवदत्ता भी मिल जाती है। प्रतिमा में रावण का संहार कर राम को सीता मिलती है और वे अयोध्या के राजा बनते हैं। उदयन को इस सफलता पर कवि ने अवन्तिराज महासेन से बधाइयाँ दिलाई हैं। मगधराजमहिषी का प्रसन्नता का सन्देश पढ़ाया है। प्रतिमा में राम को लङ्केश विभीषण आदि मित्र राजाओं के बधाई के सन्देश आते हैं। कैकेयी रामराज्याभिषेक पर प्रसन्नता मनाती है। दोनों जगह कवि ने विजेता राजाओं को विजय से दर्पित तथा उच्छृङ्खल होने से बचाया है। इस महान् विजय पर उदयन यौगन्धरायण आदि का कृतज्ञ होता है और राम विभीषण, सुग्रीव आदि का। दोनों नाटकों में कवि ने—स्वप्न में—

'इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥'

(स्वप्न ६।१९)

प्रतिमा में—

'यथा रामश्च जानक्या बन्धुभिश्च समागतः ।
तथा लक्ष्म्या समायुक्तो राजा भूमिं प्रशास्तु नः ॥'

(प्रतिमा ७।१५)

—इस प्रकार अपने आश्रयदाता एक ही राजा (राजसिंह ?) की शुभाशंसा के साथ नाटक को समाप्त किया है।

प्रतिमानाटक में नायक और रस

दशरथ महाराज के ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम इस नाटक में धीरोदात्त नायक हैं और 'धर्मवीर' प्रधान रस है। रामचन्द्र का पिता की आज्ञा का पालन करने में 'उत्साह' स्थायी भाव है। 'न जातु कामान्न भयान्न लोभाद् धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः'—इत्यादि धर्मशास्त्रीय वाक्यों का पर्यालोचन उद्दीपन विभाव है।

'मङ्गलार्थेऽनया दत्तान् वल्कलांस्तावदानय।
करोम्यन्यैर्नृपैर्धर्मं नैवाप्तं नोपपादितम् ॥'
'पितुर्नियोगादहमागतो वनं
न वत्स दर्पान्न भयान्न विभ्रमात्।
कुलं च नः सत्यधनं ब्रवीमि ते
कथं भवान् नीचपथे प्रवर्तते ॥'
'किन्त्वेतन्नृपतेर्वचस्तदनृतं कर्तुं न युक्तं त्वया।
किञ्चोत्पाद्य भवद्विधं भवतु ते मिथ्याभिधायी पिता ॥'

इत्यादि पिता की आज्ञा के पालन में तत्परता दिखाने वाली उक्तियाँ अनुभाव हैं। धैर्य संचारी भाव है। वात्सल्य, करुणा आदि पोषक रस हैं।

प्रतिमानाटक के प्रमुख पात्र

राम

प्रतिमानाटक में राम के चरित्र का समुचित विकास नहीं हुआ है। सीता को वल्कल-वस्त्र पहने देखकर वे स्वयं भी वल्कल वस्त्र धारण करने के लिए उत्सुक हो उठते हैं। इससे उनके गौरव में न्यूनता आ गई है। वन को जाने से पहले वे महाराज दशरथ को नहीं मिलते। रावण से सुनते हैं कि हिमालय पहाड़ पर हेम-मृग रहते हैं तो सहसा उस पर विश्वास कर लेते हैं, मानो वे कोई अबोध बालक हों। एक ओर राम की अलोक-

सामान्य त्यागशीलता है, पिता के प्रति अगाध श्रद्धा है, कैकेयी—सर्वथा उनके अहित की योजना करने वाली क्रूर-हृदया कैकेयी—के प्रति असीम औदार्य; दूसरी ओर यह स्वावमानना, यह धृष्टता और पर-प्रत्यय-नेय बुद्धि! अस्तु। राम के चरित्र में आत्म-त्याग है, पितृभक्ति है, भ्रातृप्रेम है, महानुभावता है, कर्तव्य की कठोर साधना है; किन्तु इसके लिए—इस मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा करने में—नाटककार को स्वयं कोई विशेष प्रयास नहीं करना पड़ा है। महर्षि वाल्मीकि शताब्दियों पहले अपनी आर्यवाणी में उसे अमर कर चुके थे। भास की कल्पना उसके उत्कर्ष को बढ़ा नहीं सकी। हाँ, उस उत्कर्ष में न्यूनता अवश्य ले आई है। इतने बड़े चरित्र में कविकल्पित केवल एक स्थल हृदयहारी है—'दिष्ट्या स एवास्मि रामः, महाराज एव महाराजः'।

सीता

सीता के स्वभाव में सरलता है, नारी-हृदय का अनन्त माधुर्य है। वह पति-परायणा है। दशरथ के प्रति उसकी श्रद्धाभक्ति राम की अपेक्षा कुछ कम नहीं है। वह विधि के विधान को सानन्द शिरोधार्य करती है। अभिषेक की उषा में वनवास के वज्रपातोपम समाचार को कुसुमकलिका की भाँति आँखों से लगाती है। उसके स्वात्मविषयक विषाद में हर्ष-पुलक है, शोक में परिणत हृदय की गम्भीरता है। लक्ष्मण कैकेयी के कुटिल कुचक्र से आग-बबूला हो रहा है—संसार को तरुण स्त्रियों से शून्य करने की चिन्ता में आत्म-विस्मृत हो रहा है। सीता कहती हैं—'आर्यपुत्र, रोदितव्ये काले सौमित्रिणा धनुर्गृहीतम्।' वृद्ध महाराज के प्राण संशय में पड़े हुए हैं और इन्हें इधर धनुष उठाने की सूझी है। सीता सुख में, दुःख में, सम्पत्ति में, विपत्ति में राम की सहधर्मिणी है; उसका सतीत्व उसके जीवन का एकमात्र साधन है।

भरत

भरत का चरित्र आदर्श चरित्र है। राम के प्रति उनका प्रेम, उनकी श्रद्धा, उनका भक्तिभाव अपूर्व है। जब उन्हें यह ज्ञात होता है कि माता कैकेयी सारे अनर्थों की जड़ है, उसीने राम को वन भेजने की व्यवस्था की है, उसीके कारण दशरथ की मृत्यु हुई है और सम्पूर्ण अयोध्या को एक साथ ही शोक के दिन देखने पड़े हैं तो वे रोष और लज्जा से विह्वल हो जाते हैं। सुमन्त्र उन्हें मातृ-चरणों में सिर टेकने को कहते हैं किन्तु वे उसे माता कहने में भी सकुचाते हैं; वे एक नये नियम का विधान करने

वाले हैं—'आज से पति से विद्रोह करनेवाली स्त्री मातृत्व के आसन पर प्रतिष्ठित न रह सकेगी'। भरत का आत्मत्याग अतुलनीय है। उनकी साधना राम की तपस्या से कम नहीं है। वे स्वयं अपने अन्तःकरण की प्रेरणा से राम के साथ जंगल में रहना चाहते हैं और जब राम की अनुमति नहीं मिलती तो अयोध्या को ही तपोवन बनाकर वनवास के चौदह वर्ष बिता देते हैं। भरत सचमुच योगिराज हैं, मूर्तिमती कर्तव्यनिष्ठा हैं।

लक्ष्मण

लक्ष्मण के चरित्राङ्कन का उपक्रम नाटककार ने सचमुच बड़े कौशल के साथ किया है। ऐसी सजीवता, इतनी स्वाभाविकता, इतनी वास्तविकता नाटक भर में अन्यत्र न पाइएगा। राम के अकारण वनवास से वह इतना संक्षुब्ध है कि वह दुनिया से स्त्रीत्व को ही मिटा देना चाहता है। वह राम को धनुष उठाने के लिए उकसाने की चेष्टा करता है—

'क्रमप्राप्ते हृते राज्ये भुवि शोच्यासने नृपे।
इदानीमपि सन्देहः किं क्षमा निर्मनस्विता॥'

राम के प्रति लक्ष्मण का प्रेम जितना गहरा है, उतना ही हार्दिक भी। वह अयोध्या के सुखोपभोगों को ठुकराकर राम के साथ ही जंगलों की धूल छानता है। लक्ष्मण मनस्वी है, राम के अस्तित्व में अपने अस्तित्व को भुला देनेवाला सच्चा सेवक है। किन्तु नाटककार ने इस चरित्र के मार्मिक स्थलों से पूरा लाभ नहीं उठाया है। सीता के अपहरण के अवसर पर लक्ष्मण को पहले ही अन्यत्र भेजकर उसके चरित्र के विकास के एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सुयोग को हाथ से खो दिया है। भास की नाटकीय प्रतिभा यहाँ पर बहुत ही कुण्ठित हो गई है। शायद सीता के चरित्र को ऊँचा रखने के लिए यह भद्दी कल्पना की गई है।

कैकेयी

भास ने कैकेयी के चरित्र को बचाने का बहुत भारी प्रयास किया है, रामायण की कथा को एकदम नया रूप दे दिया है। किन्तु यहाँ भी उनकी कल्पना पर-कटे परिन्दे के मानिंद फड़फड़ाकर ही रह गई है। चरित्र ऊँचा तो क्या उठता, उल्टा अस्वाभाविकता के दलदल में फँसकर और भी विकृत हो गया है। दशरथ को ऋषि का शाप था कि तुम्हारी मृत्यु पुत्रवियोग के शोक से होगी। इस वियोग की व्यवस्था करनेवाली हुई हैं उनकी रानी कैकेयी! रही वियोग की दीर्घ अवधि, सो उनका इसमें भी

कोई दोष नहीं रहा, दैवात् जीभ फिसल गई, चौदह दिन के बदले चौदह वर्ष कह गई! वसिष्ठ, वामदेव आदि महर्षि उसके इस आयोजन से पहले ही से सहमत थे! बस, क्षण भर में कैकेयी का समग्र कल्मष धुल गया! वह एक ही छलांग में फिर से मातृत्व के उच्च आसन पर जा विराजी! दशरथ-मरण, सीता-हरण, भरत की आत्म-ग्लानि, राम-लक्ष्मण का वनवास-जनित दुःख, यह सब-कुछ जैसे कुछ भी नहीं है! कैसी बालिश कल्पना है!

नाटकीय कथावस्तु

प्रतिमानाटक की कथा भास ने रामायण से ली है। इसमें कवि ने बरसों की बात घंटों में और वह भी बड़ी खूबी से कह देने में कमाल कर दिया है। प्रस्तुत नाटक में राम के राज्याभिषेक से लेकर उनके वन जाने और चौदह बरस के वनवास की अवधि समाप्त कर अयोध्या को लौट आने तक की कथा वर्णित है। कथा इस प्रकार है—महाराज दशरथ की इच्छा राम को राजतिलक करने की हुई। बड़े समारोह से राम का राज्याभिषेक किया जाने लगा। राज्याभिषेक की सारी तैयारियाँ हुईं। राज-दरबार लगा था। ठीक समय पर मंगल बाजों और वेदमन्त्रों की ध्वनि के साथ राम का राज्याभिषेक हो ही रहा था कि कैकेयी के कुचक्र से वह होते होते रह गया। राम ने चौदह बरस के वनवास का आदेश पा सीता और लक्ष्मण के साथ वन की राह ली। महाराज को बहुत शोक हुआ। पुत्र-बिछोह-शोक में ही उन्होंने प्राण त्याग दिये। सर्वत्र सन्नाटा छा गया। भरत भी ननिहाल में था। ज्यों ही उस तक महाराज के अस्वस्थ होने की सूचना पहुँची, वह शीघ्र ही अयोध्या को चल पड़ा। ननिहाल जाते उसने भरा पूरा समृद्ध परिवार देखा था। बहुत समय के पश्चात् अहा! आज अयोध्या पहुँच सब से मिलूँगा, इन्हीं सुख-स्वप्नों में वह मस्त हुआ जा रहा था। अयोध्या के समीप पहुँचा तो प्रतिमागृह दीख पड़ा, जिसमें इक्ष्वाकुवंशज मृत राजाओं की प्रतिमाएँ स्थापित थीं। इनमें एक प्रतिमा दशरथ की भी थी। उसने बारी बारी सब देखीं। उसकी दृष्टि उस पर भी पड़ी, जिसका उसे स्वप्न में आभास भी नहीं था। बस, देखते ही हक्काबक्का रह गया। कुछ पल यों ही बीते। साहस करके उसने प्रतिमा के विषय में पुजारी से पूछा तो उत्तर मिला—'दशरथ की'। भरत पर अनभ्रवज्रपात हुआ। राम, लक्ष्मण, सीता के वनवास को सुन उसका रहा सहा धैर्य भी जाता रहा। अचेत हो जमीन पर गिर पड़ा। इसी अवसर पर प्रतिमागृह

में कौसल्या, सुमित्रा आदि का आना हुआ। भरत कुछ सचेत हुए। उनके राज्याभिषेक की सब तैयारी हुई पड़ी थी। वे सब कुछ ठुकरा कैकेयी को दुतकार वहीं से राम के पास वन को चल दिये। राम, सीता और लक्ष्मण सहित आश्रम में निवास किये हुए थे। भरत को आया देख उसके भ्रातृप्रेम से चकित रह गये। भरत ने राम से अयोध्या चल राज्य सँभालने का आग्रह किया। राम पिता के वचनों पर अटल रहे और भरत को बहुतेरा समझा-बुझा राज्य सँभालने के लिए राजी किया। भरत ने इस शर्त पर अयोध्या जाकर राज्य सँभालना स्वीकार किया कि चौदह बरस बाद राम भरत के हाथ धरोहर रक्खा हुआ अपना राज्य सँभाल लेंगे। अयोध्या जाते समय भरत श्रीराम की खड़ाउँओं पर राज्याभिषेकजल छिड़ककर प्रसादरूप में उन्हें लेते गये। एक समय राम पितृश्राद्ध करने की सोच में पड़े हुए सीता से बातचीत कर रहे थे कि अतिथि का वेष बनाकर रावण उनके पास आया। राम ने उसे विद्वान् अतिथि समझकर श्राद्ध के विषय में उससे चर्चा की तो उसने श्राद्ध करने के लिए हिमालय के काञ्चनमृगों को सर्वोत्तम बताया। लक्ष्मण इस समय आश्रम से बाहर गये हुए थे। सीता को अतिथि-सेवा के लिए छोड़ राम भी मृग लेने चले गये। रावण ने मौका पाया और अपना असल रूप धारण कर वह सीता को हर ले चला। लङ्का जाते रावण से दशरथ के मित्र जटायु का बड़ा युद्ध हुआ और सीता को छुड़ाने के लिए युद्ध करते करते वह रावण के हाथों मारा गया। अयोध्या में भरत को जब यह हाल मालूम हुआ तो भाई की सहायतार्थ जाने के लिए वह भी ससैन्य तैयार हुआ। इधर श्रीराम रावण को मारकर सीता आदि सहित अयोध्या को जाते हुए पुनः उसी आश्रम में टिके। इतने में माताओं को साथ लिये अमात्यों तथा प्रजावर्ग सहित भरत का भी वहीं पहुँच उनसे मिलाप हो गया। वहीं राम का राज्याभिषेक हुआ और तदनन्तर वे सब पुष्पक विमान में बैठ अयोध्या को चले गये।

प्रतिमानाटक-संक्षिप्त-कथा

पहला अंक

श्रीराम के राज्याभिषेक की तैयारियाँ हो रही थीं। महाराज दशरथ के आदेश से कहीं छत्र, चमर, मंगलकलश आदि सारे साज सजाये जा रहे थे। कहीं राज्याभिषेक के उपलक्ष्य में अच्छे अच्छे नाटक खेलने का प्रबन्ध हो रहा था। राम राजा होगा, इससे प्रजा के हर्ष की सीमा नहीं थी। सीता सहेलियों के साथ बैठी थी, अचानक उसने अवदातिका के हाथ

में वल्कल देख लिये। जी में पहनने की हुई। होनहार थी, वल्कल पहन लिये। उसे क्या मालूम था कि लेने के देने पड़ेंगे, इन वल्कलों ने वनवास की भूमिका बनना है। आखिर, परिणाम क्या रहा, कैकेयी को ठीक मौके पर वरदानों की सुध हो आई। उसने सत्यसन्ध महाराज को वर देने के लिए विवश किया। एक में राम को चौदह बरस का वनवास और दूसरे में भरत को राजगद्दी। राम का राज्याभिषेक होते होते रह गया। राम को चौदह बरस के वनवास का आदेश हुआ। वह वल्कल पहन लगे वन को जाने। सीता भी संग हो ली। लक्ष्मण से न रहा गया, वह भी भाई के पीछे हो लिया।

दूसरा अंक

तब क्या था, बूढ़े महाराज का बुढ़ापे का बना बनाया घर उजाड़ हो चला। उन्होंने शोकशय्या की शरण ले ली। पुत्र-बिछोह-शोक से अपने आपे को खो बैठे। लगे तरह तरह से विलाप करने और कैकेयी के कुकृत्य पर धिक्कार दे-देकर छटपटाने। रनवास में कुहराम मच गया। रानियाँ—कौसल्या और सुमित्रा लगीं महाराज को धीरज बँधाने, परिचारक परिचर्या करने, अमात्य लोग बहुत बहुत तरह समझाने-बुझाने। कुछ न हुआ। हाय पुत्र ! हाय पुत्र ! विलाप करते करते ही महाराज चल बसे।

तीसरा अंक

भरत ननिहाल में थे। महाराज के बीमार होने की सूचना पा तेज़ी के साथ रथ में बैठे अयोध्या की ओर भागे जा रहे थे। बहुत समय के पश्चात् अयोध्या जाने का अवसर मिला था। बन्धु-बान्धवों, पिता-माताओं को मिलने की उमंगें हिलोरे मार रही थीं। कब अयोध्या पहुँचूँ, कब महाराज के चरणों मस्तक झुकाऊँ, कब हमजोली के भाइयों से गले लगकर लिपटूँ—इस प्रकार तरह तरह के सुख-स्वप्नों में तल्लीन हुए जा रहे थे। नगरी के पास पहुँचे। सूचना मिली कि अभी मुहूर्त ठीक नहीं, कुछ देर ठहर राजकुमार राजधानी में प्रवेश करें। इतनी देर विश्राम-स्थान की खोज करते संयोगवश पास ही एक स्थान में जा पहुँचे। यह सूर्यवंशी मृत राजाओं की स्मारक मूर्तियों का प्रासाद बना हुआ था। भरत की दृष्टि एकाएक उन मूर्तियों पर जा पड़ी। एक एक कर देखने लगे। पूछने पर विदित हुआ कि ये दिलीप, रघु, अज की मूर्तियाँ हैं। कुलगौरव से हृदय उछला। पर ज्यों ही दशरथ की मूर्ति पर दृष्टि पड़ी। पूछा—'यह

किसकी मूर्ति है'। उत्तर मिला—'दशरथ की'। उनका तो हृदय धक रह गया। एकदम सन्नाटा छा गया। होनहार होकर रही, महाराज मर गये, आर्य राम सीता लक्ष्मण सहित चौदह बरस के लिए वन को चले गये, यह सब मालूम कर उसके पैरों-तले की मिट्टी सरक चली। उसने अपने को एक भयावने युग में असहाय पड़ा पाया। उस बेचारे को क्या मालूम था कि उस पर ऐसी बीतेगी। मूर्च्छित होकर ज़मीन पर पछाड़ खाकर धड़ाम से गिर पड़ा। इसी अवसर पर संयोगवश आवश्यक रीति पूरा करने उस दिवंगत-मूर्ति-मन्दिर में कौसल्या आदि का आना हुआ। पुत्र की दशा देख हाहाकार मच गया। भरत सँभला। माताओं की करुणाजनक दशा से उसका हृदय दहल पड़ा। कैकेयी को दुतकार और राज्याभिषेक का किया कराया सारा साज ठुकराकर राम को लिवा लाने वह वन को चल दिया।

चौथा अंक

भरत श्रीराम के आश्रम में पहुँचे। आर्य राम को सूचना दी गई। उनके दर्शन देने में कुछ विलम्ब होता देख सोचने लगे कि कहीं 'कैकेयी का पुत्र कहकर मिलना न चाहें'। इतने में लक्ष्मण आये और भरत को देख बहुत गद्गद हो उन्हें राम के पास ले चले। राम भरत के इस भ्रातृप्रेम से बहुत प्रभावित हुए। बड़े प्रेम से एक-दूसरे को सब गले लगकर मिले। भरत राम से अयोध्या को लौट चलने के लिए बहुत अनुनय-विनय करने लगे। जब राम ने देखा कि भरत उनके साथ वन में रहने का हठ किये हुए है तो उन्होंने पिता की प्रतिज्ञा और अपने कर्तव्य का स्मरण दिलाकर और तरह तरह से समझा-बुझाकर भरत को राजधानी को लौटने के लिए विवश किया। भाई के बहुत कहने पर भरत इस शर्त पर राजधानी को लौटने के लिए राजी हुए कि चौदह बरस बीतने पर राम अपना राज्य स्वयं सँभाल लेंगे। श्रीराम को स्वीकार करना पड़ा। भरत रामचन्द्र जी का प्रसाद—उनकी पादुकाएँ लिये हुए अयोध्या की ओर चल पड़े।

पाँचवाँ अंक

महाराज दशरथ का श्राद्धदिवस समीप था। राम इसी सोच में पड़े थे कि किस प्रकार पितृश्राद्ध किया जाय? सीता के पास गये। वह आश्रम की सफ़ाई-सिंचाई में संलग्न थी। श्रीराम के चेहरे पर चिन्ता की झलक भाँपकर लगी उसका कारण टटोलने। मालूम होने पर बोली—आर्यपुत्र

का चिन्ता करना वृथा है। जैसा अ ने से बन पड़ेगा, पिता जी का श्राद्ध फल-जल से कर लीजिएगा। पिता जी इस अवस्था में आपसे यही ग़नीमत हुआ समझेंगे। राजसी ठाठ से भरत अपने आप कर तो लेंगे। राम बोले—जब अपने इन हाथों दाभों पर वन के फलों को परोसे हुए पिता जी देखेंगे तो वनवास की याद हो आने पर वहाँ भी रो पड़ेंगे। यही चर्चा छिड़ी हुई थी कि संन्यासी का भेस बदले हुए रावण का आना हुआ। स्वागत-सत्कार की बात हो जाने पर जब उसने श्रीराम को अपना परिचय दिया कि मैं श्रुति-स्मृति आदि वेदशास्त्रों तथा श्राद्धकल्प का जानने वाला ब्राह्मण हूँ तो पिता का श्राद्ध किया चाहते हुए राम को श्राद्धविषयक जिज्ञासा पैदा हुई। रावण को अच्छा अवसर मिला। सीता को राम से पृथक् किया चाहते हुए उसने श्रीराम को पितृश्राद्ध करने के लिए काञ्चनपार्श्व मृग उत्तम बताया। लक्ष्मण कुलपति को लिवा लेने पहले ही बाहर गये हुए थे। अतः राम को ही काञ्चनपार्श्व मृगों को लाने सुदूर जाना पड़ा। अब क्या चाहिए था, सीता को अकेली पा रावण ने अपना असली रूप धारण किया। उसे देख सीता थर्रा उठी। क्या हो सकता था, वह अनार्य बिलखती हुई उस आर्यबाला को बलपूर्वक लंका की ओर हर ले चला।

छठा अंक

सीता के हरे जाने पर दो तपस्वी रक्षा के लिए लगे पुकारने। उनकी पुकार सुन तत्काल जटायु का आना हुआ। उसने सीता को छुड़ाने के लिए रावण से भीषण युद्ध किया और उसे अपनी तेज़ चोंचों से मार-मारकर लहूलुहान कर दिया किन्तु बहुत युद्ध करने के पश्चात् खिसियाये हुए रावण द्वारा वह बेचारा मारा गया। दोनों तपस्वी तब इसकी सूचना राम तक पहुँचाने गये। इधर राम आदि का कुशल-समाचार लेने आश्रम को आया हुआ सुमन्त्र जब वहाँ उन्हें न पाकर वापस अयोध्या जाकर भरत से मिला तो बातचीत करते हुए सीता-हरण की बात अचानक उसके मुँह से निकल पड़ी। भरत बहुत पछताये और लगे कैकेयी को दुतकारने। भरत को जब महाराज दशरथ को हुए शाप की बात मालूम हुई तो कैकेयी के कुकृत्य से उत्पन्न हुई उनके हृदय की उथल-पुथल कुछ शान्त हुई और दलबल सहित बड़े समारोह से राम की सहायतार्थ कूच करने के लिए तैयार हुए। अन्तःपुर में सर्वत्र इस घटना को मालूम कर हाहाकार मच गया। कौसल्या मूर्च्छित हो गई।

सातवाँ अंक

रावण का संहार कर अनार्यों पर विजय प्राप्त कर सीता को लिये हुए राम लक्ष्मण ने अपने लङ्कासमर के सहायकों समेत अयोध्या को जाते हुए आश्रम में ठहरना है। मुनि लोग आश्रम में उनके स्वागत की तैयारियाँ किये हुए हैं। उनके लिए आश्रम-सुलभ पदार्थ इकट्ठे किये हैं। श्रीराम आश्रम में आ पहुँचे। सब ने हर्ष मनाया। सीता को देख ऋषिपत्नियाँ प्रमुदित हुईं। राम और सीता को बहुत पहले के देखे हुए आश्रम की पुरानी बातें एक एक कर याद आने लगीं। राम सीता को एक एक बात की याद दिलाने लगे। यह जनस्थान है, जहाँ पहले रहते थे। ये कितने बड़े बड़े वृक्ष हो गये, जो नन्हे नन्हे पौधे देखे थे। यहाँ पर भरत को आया देख मृग बिदककर चौकड़ियाँ भरते हुए कूदने-फाँदने लगे थे। इस तरह अतीत की सारी घटनाएँ मस्तिष्क में ताज़ी हो-होकर बारी बारी याद आने लगीं। काञ्चनपार्श्व मृग की भी याद आई। उसे यादकर सीता थर्रा उठी तो इस चर्चा को छोड़ दिया। थोड़ी ही देर में भरत भी माताओं को लिये हुए सेनासहित यहीं आ पहुँचे। दुःखद समय का अवसान हुआ। राम ने चौदह बरस के वनवास को पूरा बिताया। प्रबल शत्रु से सामना हुआ था। राम की विजय हुई। भरत को अब विलम्ब न सुहाया। झट से वहीं अपना राज्य सँभालने को कहा। कैकेयी आदि माताओं ने भी राज्यग्रहण करने के लिए राम को विवश किया। वहीं राम का राज्याभिषेक किया गया। जंगल में मंगल हुआ। शोक प्रसन्नता में बदल गया। तत्पश्चात् वे सब पुष्पक विमान में बैठ अयोध्या की ओर चल पड़े। राम-राज्य का श्रीगणेश हुआ।

परमेश्वरानन्द शर्मा शास्त्री
विजयानन्द खण्डूड़ी शास्त्री

नाटकीयपात्रपरिचयः ।

पुरुषाः—

सूत्रधारः—प्रयोगस्य प्रवर्तकः ।

राजा—दशरथो नाम अयोध्याधिपः ।

रामः—दशरथज्येष्ठतनयः कौसल्यासूनुः, नायकः ।

लक्ष्मणः—रामस्य भ्राता सुमित्रातनयः ।

भरतः—रामस्य भ्राता, कैकेयीतनयः ।

शत्रुघ्नः—लक्ष्मणानुजः सुमित्रातनयः ।

सुमन्त्रः—दशरथमन्त्री ।

सूतः—भरतस्य सारथिः ।

रावणः—लङ्कापतिः, प्रतिनायकः ।

वृद्धतापसौ—रावणजटायुयुद्धदर्शकौ ।

देवकुलिकः—प्रतिमागृहप्रबन्धकः ।

तापसः—रामवनवास्तव्यस्तपस्वी ।

नन्दिलकः—तापसपरिजनः ।

भटः—राजपुरुषः ।

सुधाकारः—प्रतिमागृहे सुधालेपकर्ता ।

काञ्चुकीयः—बालाकिर्नाम अन्तःपुरचरो वृद्धः ।

स्त्रियः—

नटी—सूत्रधारपत्नी ।

कौसल्या—दशरथस्य प्रथमपत्नी राममाता ।

कैकेयी—दशरथस्य द्वितीयपत्नी भरतमाता ।

सुमित्रा—दशरथस्य तृतीयपत्नी लक्ष्मणशत्रुघ्नयोर्माता ।

सीता—जनकतनया रामभार्या, नायिका ।

अवदातिका—सीतायाः सखी, वल्कलापहारिणी ।

चेटी—सीतायाः परिचारिका ।

प्रतिहारी—दशरथराजभवने द्वारपालिका ।

विजया—कैकेय्याः अन्तःपुरे प्रतिहारी ।

नन्दिनिका—कैकेय्याश्चेटी ।

तापसी—सीताया उटज-सहचरी रामवनतपस्विनी ।

नाटकमध्यदृष्टनाम्नां रङ्गभूम्यामनवतीर्णानां पात्राणां नामोल्लेखः ।

वसिष्ठः—दशरथकुलपुरोहितः ।
वामदेवः—एतन्नामा महर्षिः ।
पुरोहिताः—
उपाध्यायाः—
वैखानसाः—वानप्रस्थाः ।
वालखिल्याः—अङ्गुष्ठप्रमाणा ऋषिभेदाः ।
नैमिषीयाः—शौनकादिमहर्षयः ।
कुलपतिः—अत्रिर्नामाश्रमस्वामी ।
तपस्विनः—जनस्थानवासिनः ।
ऋषिपत्न्यः—जनस्थानवासिमुनिभार्याः ।
दिलीपः—दशरथप्रपितामहः ।
रघुः—दशरथपितामहः ।
अजः—दशरथपिता ।
अमात्याः—अयोध्याराजमन्त्रिणः ।
प्रकृतयः—अयोध्याराज्यान्तर्वर्तिनो जनाः ।
पौराः—अयोध्यानगरवासिनः ।
भिषजः—अयोध्यायां राजवैद्याः ।
भृत्याः—दशरथराजभवने किङ्कराः ।
सज्जनाः—राज्ये प्रतिष्ठितपुरुषाः ।
अन्धमुनिः—श्रवणपिता ।
मुनितनयः—अन्धमुनिसुतः श्रवणो नाम ।
जटायुः—पक्षिराजः ।
शूर्पणखा—रावणभगिनी ।
वालिः—कपीश्वरः सुग्रीवज्येष्ठभ्राता ।
सुग्रीवः—कपीश्वरः वालिभ्राता लङ्कासमरे रामसहायकः ।
नीलः—, **मैन्दः**— } लङ्कासमरे रामसहायकौ ।
जाम्बवान्—ऋक्षराजः लङ्कासमरे रामसहायकः ।
हनुमान्—रामानन्यभक्तः ।
विभीषणः—रावणभ्राता रामभक्तः ।
खरदूषणौ—रावणभ्रातरौ ।
संभवकः—दशरथराजभवने परिचारकः ।
सारसिका—दशरथराजभवने परिचारिका ।
रेवा—नेपथ्यरक्षाधिकृता ।
नाटकीयाः—सङ्गीतशालायामभिनयकर्तारः ।
मन्थरा—कैकेय्याः परिचारिका ।

श्रीः ।

प्रतिमानाटकम् ।

[नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः]

सूत्रधारः—

सीताभवः पातु सुमन्त्रतुष्टः सुग्रीवरामः सहलक्ष्मणश्च ।
यो रावणार्यप्रतिमश्च देव्या विभीषणात्मा भरतोऽनुसर्गम् ॥१॥

श्रीप्रतिमाव्याख्या ।

जयन्ति वचसां देव्याः कृपादन्तुरदृक्कराः ।
यानालम्ब्य विजृम्भन्ते प्रतिभाकैरवाकराः ॥१॥
यत्कृपाकणमात्रानामनिरुद्धा सरस्वती ।
हृदि तिष्ठतु मे नित्यं सानिरुद्धसरस्वती ॥२॥
व्यासवाल्मीकिकल्पस्य क्व भासस्य गिरां चयः ।
क्व वाहमल्पधीसम्पन्मितशब्दार्थसञ्चयः ॥३॥
तथाप्येष चतुर्वेदगुरोरासाद्य सत्कृपाम् ।
प्रतिमानाटकव्याख्यां कर्तुमस्मि कृतक्रमः ॥४॥

प्रतिमानाटक

[नान्दी के अन्त में सूत्रधार का प्रवेश]

सूत्रधार—सीता के मङ्गल-मोद के हेतु, अच्छी मन्त्रणा (अथवा सारथि सुमन्त्र) से प्रसन्नचित्त रहने वाले, जगत् का भरण (पालन) करने वाले, शोभाशाली कण्ठवाले (अथवा सुग्रीव-सखा) लक्ष्मण सहित मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् राम—जिन्होंने महारानी सीता (को हर ले जाने) के कारण (दुराचारी) रावण का संहार किया था और जो अनुपम वीर तथा शत्रुओं के लिए सदा भयकारी (वा अपने अभिन्न-हृदय सखा विभीषण से विशेष अनुराग करने वाले) थे—जन्म जन्म में तुम्हारी (अथवा हमारी) रक्षा करें ॥१॥

अथ कविभिः कविताकामिनीहासतया स्मृतस्तत्रभवान् महाकविर्भासः प्रतिमाख्यं नाटकं चिकीर्षुस्तदादौ रङ्गविघ्नोपशान्तयेऽभिनेयकथावस्त्वंशसूचनाय च मङ्गलं कर्तुं पूर्वं सूत्रधारं प्रवेशयति—**नान्द्यन्त** इत्यादिना । **नान्द्यन्ते** नान्दी दुन्दुभिनामकं वाद्यम् ['दुन्दुभिस्त्वानको भेरी भम्भा नासूश्च नान्द्यपि' इति वैजयन्ती], तस्या अन्ते अवसाने, अभिनयारम्भसूचके दुन्दुभिवाद्यवादनेऽवसित इत्यर्थः । अथवा नन्दनं नन्द आनन्द इत्यर्थः [भावे घञ्], तस्येयमिति नान्दी [शैषिकाण्णन्ताद् ङीप्] प्रयोगारम्भे सामाजिकानामावर्जनाय क्रियमाणा गीतवाद्यवादनक्रिया, तस्या अन्ते इत्यर्थः । मङ्गलश्लोकरूपा नान्दी तु रङ्गे सूत्रधारपठनीयत्वादितो भिन्नैव बोध्या । तदुक्तं भरतेन—'सूत्रधारः पठेन्नान्दीम्' इति । सूत्रधारपठनीयाया नान्द्या लक्षणं यथा—'आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते । देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥' इति । **ततः** नान्दीसमाप्त्यनन्तरमेव । **सूत्रधारः** सूत्रं नाट्यानुष्ठानं धारयति प्रवर्तयतीति सूत्रधारः, अभिनेतॄणां नेता प्रधाननट इत्यर्थः । तदुक्तम्—'नाट्यस्य यदनुष्ठानं तत्सूत्रं स्यात् सबीजकम् । रङ्गदैवतपूजाकृत् सूत्रधारः स उच्यते ॥ वर्णनीयकथासूत्रं प्रथमं येन सूच्यते । रङ्गभूमिं समाक्रम्य सूत्रधारः स उच्यते ॥' इति ।

प्रविष्टः सूत्रधारो मङ्गलश्लोकरूपां नान्दीं पठति—"**सीताभव**" इति । **यः, सीताभवः** सीताया जनकनन्दिन्याः, भवो भद्राप्तिः, तद्धेतुरिति यावत् । अस्तीति सर्वत्राध्याहर्तव्यम् । यो रावणेन हृतां सीतां ततो विमोचनेनातूतुषदिति भावः । **सुमन्त्रतुष्टः** सुमन्त्रेण सुमन्त्रनाम्ना मन्त्रिणा तुष्टः प्रीतः । अथवा शोभनो मन्त्रो मन्त्रणा यस्य स सुमन्त्रः, स चासौ तुष्टश्चेत्येवं व्याख्येयम् । किं **च सहलक्ष्मणः** लक्ष्मणेन सह वर्तत इति सहलक्ष्मणः स्वानुजेन लक्ष्मणेन सहितः ['तेन सहेति तुल्ययोगे' इत्यनेन समासः, 'वोपसर्जनस्य' इति विकल्पेन सहस्य सः], अपि **च** यः, **रावणार्यप्रतिमः** [रावणस्यारी रावणारिः, न प्रतिमा यस्य सोऽप्रतिमः, रावणारिश्चासावप्रतिमश्चेति विग्रहः] रावणस्य स्वकर्मभिर्लोकान् रावयितुस्तन्नामकस्य दैत्यस्य, अरिः शत्रुर्हन्तेति भावः, अप्रतिमः नयपराक्रमाभ्यामनुपमः । **देव्या** सीतया सहितः [विनापि तद्योगं तृतीया] । **विभीषणात्मा** विभीषणः शत्रूणां भयोत्पादकः, आत्मा स्वरूपं यस्य तादृशः, **भरतः** भरं पृथिव्या भारं तस्यति उपक्षयति दूरीकरोतीति तादृशः प्रजापीडकदुष्टनृपतिशासनेन पृथ्वीभारहारक इति भावः [भरोपपदात्तसेः

[नेपथ्याभिमुखमवलोक्य]

आर्ये ! इतस्तावत् ।

[प्रविश्य]

नटी—अय्य ! इअह्मि । आर्य ! इयमस्मि ।

क्विप्, अधातोरित्युक्तेः 'अत्वसन्तस्य' इति न दीर्घः]। अथवा 'विभीषणात्माभरत' इत्येकं पदम् । विभीषणे तन्नामके रावणभ्रातरि, आत्माभे सदृशसुखदुःखतया स्वतुल्ये, रतोऽनुरक्तः, विभीषणमित्रतामुपगत इति भाव इति श्रीमद्‌गणपतिशास्त्रिणः । सः [यत्तदोर्नित्यसम्बन्धात्स इत्यध्याहृतः], **सुग्रीवरामः** शोभना ग्रीवा यस्य स सुग्रीवः सुकण्ठः, स चासौ रामो रामाभिधानो भगवान् हरिः, **अनुसर्गम्** सर्गं सर्गमन्वित्यनुसर्गम्, जन्मनि जन्मनीत्यर्थः । **पातु** पालयतु युष्मानस्माँश्चेति शेषः ।

अत्र कविना मङ्गलाचरणमुद्रया सीता-सुमन्त्र-सुग्रीव-राम-लक्ष्मण-रावण-विभीषण-भरताख्यानि प्रकृतनाटकपात्राणि सूचितानि । रावणारिपदेन रामकर्तृको रावणवधः, तथा प्रतिमपदेन प्रतिमानाटकमित्येतन्नाटकाभिधानं तृतीयाङ्कस्थितं दशरथप्रतिमावृत्तं च सूचितम् । अतोऽत्र मुद्रालङ्कारः । तदुक्तं कुवलयानन्दे—'सूच्यार्थसूचनं मुद्रा प्रकृतार्थपरैः पदैः' इति । प्रथमत्रितये इन्द्रवज्रायाश्चतुर्थे चोपेन्द्रवज्राया लक्षणस्य सन्निवेशादुपजातिश्छन्दः । तदुक्तम्—'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः । उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ । अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ॥' इति ॥१॥

अथ सूत्रधारमुखेन स्थापनामवतारयितुमाह—**नेपथ्ये**ति । नेपथ्यम् नटानां वेषप्रसाधनभूमिः ['नेपथ्यं स्याज्जवनिका रङ्गभूमिः प्रसाधनम्' इत्यजयः] । सूत्रधारो नटीमाह्वयति—**आर्ये** इति । आर्ये इति सूत्रधारस्य स्वभार्यां प्रति संबोधनम् । **इतस्तावदि**त्यस्य 'आगम्यताम्' इति शेषः । तावच्छब्दश्च प्राथम्यबोधकः । तथा च प्रथममिहागम्यतामिति वाक्यार्थः । अथवा तावदिति वाक्यालङ्कारे । नट्या उक्तौ '**इयमस्मि**' इत्यस्य उपस्थितेति शेषः ।

[नेपथ्य की ओर देखकर]

आर्ये ! इधर आइए ।

[नटी का प्रवेश]

नटी—आर्य ! यह आ गई हूँ ।

सूत्रधारः—आर्ये ! इममेवेदानीं शरत्कालमधिकृत्य गीयतां तावत्।

नटी—अय्य ! तह । [गायति] आर्य ! तथा ।

सूत्रधारः—अस्मिन् हि काले,

चरति पुलिनेषु हंसी काशांशुकवासिनी सुसंहृष्टा ।

[नेपथ्ये]

अय्य ! अय्य ! आर्य ! आर्य !

इमम् नवप्रवृत्तम् । **शरत्कालम्** शरदृतुम् । **अधिकृत्य** प्रस्तुत्य । नट्या उक्तौ **तथे**त्यस्य 'अस्तु' इति शेषः । भवदाज्ञया शरत्कालसम्बन्धिगीतं गायामीति भावः । सूत्रधारः स्वयमपि शरदं वर्णयति—**अस्मिन् हि काले** इति । एतत् पदकदम्बमुत्तरपद्यान्वयि बोध्यम् ।

"**चरती**"ति—**अस्मिन् हि काले** अस्यां शरदि, **काशांशुकवासिनी** काशवत् काशकुसुमवच्छुभ्राणि, अंशुकानि पक्षरूपाणि वस्त्राणि, वस्ते धारयति तच्छीला, काशकुसुमवच्छुभ्रपक्षधारिणीति भावः [श्रीमद्गणपतिशास्त्रिणस्तु—काशवत् काशकुसुमवद्, अंशुः प्रभा यस्यास्तादृशी, के जले वसतीति कवासिनी, काशांशुश्चासौ कवासिनी चेति कर्मधारयः इत्येवं व्याख्यातवन्तः], **हंसी** वरटा, **सुसंहृष्टा** हर्षातिशयं प्राप्ता सती, **पुलिनेषु** नदीसैकतेषु, **चरति** विहरति ।

नेपथ्य इति—सूत्रधारोपक्रान्तायां शरद्वर्णनायामसमाप्तायामेव प्रतिहारी नेपथ्यान्तरिता ब्रवीतीत्यर्थः । किं ब्रवीतीत्याह—**आर्य आर्ये**ति । द्विरुक्तिः संभ्रमसूचनार्था ।

सूत्रधार—आर्ये ! इसी शरद् ऋतु के विषय में इस समय कुछ गाया जाय ।

नटी—आर्य ! अच्छा गाती हूँ । [गाती है]

सूत्रधार—(शरद् की) इस सुहावनी मौसिम में,

—काश के फूलों के समान धवल प्रभा वाली (अथवा काश के फूलों से आच्छादित हुए नदीतीर के) जल में रहने वाली हंसी अति प्रमुदित हो पुलिनों में इस तरह पग-सञ्चार कर रही है...

[नेपथ्य में]

आर्य ! आर्य !

[आकर्ण्य]

सूत्रधारः—भवतु, विज्ञातम् ।

मुदिता नरेन्द्रभवने त्वरिता प्रतिहाररक्षीव ॥२॥

[निष्क्रान्तौ]

स्थापना ।

आकर्ण्य आर्ये आर्येति संबोधनं श्रुत्वा । **भवत्विति—भवतु** कामं संबोधयतु इति भावः । **विज्ञातम्** मया पुनः स्वरपरिचयेन ज्ञातं कस्यायं शब्द इति । नेपथ्ये स्थिता प्रतिहारी कमपि ससंभ्रममार्य आर्येति समबूबुधत् । तां च स्वरानुसन्धानेन सूत्रधारः पर्यचिनोत् ।

अथ स 'नासूचितस्य प्रवेशः' इति नाट्यनियमानुरोधेन तस्या एव प्रतिहार्याः प्रवेशसूचनाय स्वोपक्रान्तशरद्वर्णनपूर्तिव्याजेन तां प्रतिहारीमुपमानीकृत्योपक्षिपति—"**मुदिता**"इति। हंसी पुलिनेषु चरतीति पूर्वमुक्तम्। केव चरति–इति चेत्, **मुदिता** हृष्टा, **त्वरिता** कार्यवशात् कृतत्वरा, **नरेन्द्रभवने** नरेन्द्रस्य राज्ञो दशरथस्य, भवने प्रासादे, **प्रतिहाररक्षीव** प्रतिहारम् द्वारम् रक्षतीति प्रतिहाररक्षी [कर्मण्यण्, ततो ङीप्],द्वाराधिकृता दासीवेत्यर्थः। पूर्वार्धोक्तं काशांशुकवासिनीति विशेषणमपि प्रतिहार्यां योज्यम्। उपमालङ्कारः । आर्या वृत्तम् ॥२॥

एवं प्रतिहारीप्रवेशसूचनया कथावस्त्वंशं स्थापयित्वा नटीसूत्रधारयोर्निष्क्रमणमाह—**निष्क्रान्ता**विति । तदुक्तम्—'एषामन्यतमेनार्थं पात्रं वाक्षिप्य सूत्रभृत्। प्रस्तावनान्ते निर्गच्छेत् ततो वस्तु प्रपञ्चयेत्॥' इति । **स्थापने**ति—कथावस्त्वंशस्य स्थापनाद् 'आर्ये ! इतस्तावद्' इत्यारभ्य 'प्रतिहाररक्षीव' इति यावत् स्थापनाग्रन्थो बोध्य इति भावः। स्थापना प्रस्तावना आमुखं चेत्यनर्थान्तरम् । तल्लक्षणं यथा—'सूत्रधारो नटीं ब्रूते मारिषं वा विदूषकम् । स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम् ॥' इति । अस्याश्च स्थापनायाः पञ्च विधा भवन्ति । तासु चेयं प्रयोगातिशयनाम्नी स्थापना विज्ञेया । तदुक्तं

[सुनकर]

सूत्रधार—अच्छा, जान लिया ।

—जैसे कि (काश-कुसुम के समान सूक्ष्म मृदुल धवल वसन धारण किये) मोद-भरी द्वारपालिका जल्दी (महाराज दशरथ के) राज-महल में ॥२॥

[दोनों का प्रस्थान]

प्रस्तावना

अथ प्रथमोऽङ्कः ।

[प्रविश्य]

प्रतिहारी—अय्य ! को इह कञ्चुईआणं सण्णिहिदो ।

आर्य ! क इह काञ्चुकीयानां सन्निहितः ।

[प्रविश्य]

काञ्चुकीयः—भवति ! अयमस्मि किं क्रियताम् ।

प्रतिहारी—अय्य ! महाराओ देवासुरसङ्गामेसु अप्पडिहद-

दर्पणे—'यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते । तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तदा ॥' इति ।

स्थापनायां सूचितप्रवेशा प्रतिहारी विश्य काञ्चुकीयमाह्वयति—**आर्येति**। काञ्चुकीयानामिति निर्धारणे षष्ठी । **काञ्चुकीयानां** मध्ये **क इह** स्वनियोगे, **सन्निहितः** उपतिष्ठत इत्यर्थः । काञ्चुकीयलक्षणं यथा—'ये नित्यं सत्त्वसम्पन्नाः कामदोषविवर्जिताः । ज्ञानविज्ञानकुशलाः काञ्चुकीयास्तु ते स्मृताः ॥' इति । अयमेव काञ्चुकीयः कञ्चुकिशब्देनापि प्रायो व्यपदिश्यते । तदुक्तम्—'अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः । सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते ॥' इति ।

आर्य इति—**देवासुरसंग्रामेषु** देवानामसुराणां च परस्परं संग्रामेषु युद्धेषु, **अप्रतिहतमहारथः** अप्रतिहतः परैरवारितप्रसरः, स चासौ महारथः एक एव दशसहस्रसंख्याकैर्योद्धृभिर्युद्धं कर्तुं समर्थः । तदुक्तम्—'एको दश सहस्राणि योधयेद् यस्तु धन्विनाम् । शस्त्रशास्त्रप्रवीणश्च स महारथ उच्यते ॥' इति ।

पहला अंक

[प्रतिहारी का प्रवेश]

प्रतिहारी—आर्य ! कंचुकियों में से यहाँ पर कौन हाज़िर है ?

[कंचुकी का प्रवेश]

कंचुकी—आर्य ! यह मैं हूँ । कहिए, क्या काम है ?

प्रतिहारी—आर्य ! देवता और असुरों के संग्रामों में दुर्वार महारथ वाले

महारहो दसरहो आणवेदि—सिग्घं भट्टिदारअस्स रामस्स रज्जप्पहावसञ्जोअकारआ अहिसेअसम्भारा आणीअन्तु त्ति ।

आर्य ! महाराजो देवासुरसङ्ग्रामेष्वप्रतिहतमहारथो दशरथ आज्ञापयति—शीघ्रं भर्तृदारकस्य रामस्य राज्यप्रभावसंयोगकारका अभिषेकसंभारा आनीयन्तामिति ।

काञ्चुकीयः—भवति ! यदाज्ञप्तं महाराजेन, तत् सर्वं सङ्कल्पितम् । पश्य,

छत्रं सव्यजनं सनन्दिपटहं भद्रासनं कल्पितं
न्यस्ता हेममयाः सदर्भकुसुमास्तीर्थाम्बुपूर्णा घटाः ।

अथवा—अप्रतिहतो महान् रथो यस्येति बहुव्रीहिः । **महाराजः** महाँश्चासौ राजा । ['सन्महत्–' इत्यादिना समासः, टच् समासान्तः], **दशरथः** दशरथाख्यो नृपतिः, **आज्ञापयति** अनुशास्ति । यत् **शीघ्रम्** अविलम्बितम्, **भर्तृदारकस्य** राजकुमारस्य, **रामस्य, राज्यप्रभावसंयोगकारकाः** राज्यम् राजत्वम्, प्रभावः तदुत्पन्नस्तेजोविशेषः, तयोः संयोगः संबन्धः, तस्य कारकाः उत्पादकाः, **अभिषेकसंभाराः** अभिषेकस्य राज्याभिषेकस्य, **संभाराः** उपकरणानि, छत्रचामरादीनि, **आनीयन्ताम्** उपस्थाप्यन्ताम् । **भवती**ति—**सङ्कल्पितम्** सम्यक् कल्पितम् सज्जितम् । तामेव स्वसज्जिताम् अभिषेकसामग्रीं वर्णयितुमाह—**पश्ये**ति ।

"**छत्रमि**"ति—**सव्यजनम्** व्यजनेन चामरेण सहितम्, **छत्रम्** श्वेतातपत्रम्, **सनन्दिपटहम्** नन्दयतीति नन्दी आनन्दसूचकः, स चासौ पटहः

(समरविजयी) महाराज दशरथ आज्ञा देते हैं कि शीघ्र ही राजकुमार के राजसी प्रभाव (प्रभुत्व) को सूचित करने वाले राज्याभिषेक के सा[illegible] साज सजाये जायँ ।

कंचुकी—आर्ये ! महाराज की आज्ञा के अनुकूल सब कुछ सुसज्जित कर लिया गया है । देखिए,

—छत्र और चँवर (चौरी) तैयार हैं, माङ्गलिक ढोल और सिंहासन

युक्तः पुष्यरथश्च मन्त्रिसहिताः पौराः समभ्यागताः
सर्वस्यास्य हि मङ्गलं स भगवान् वेद्यां वसिष्ठः स्थितः ॥३॥

प्रतिहारी—जइ एव्वं, सोहणं किदं। यद्येवम्, शोभनं कृतम्।

काञ्चुकीयः—हन्त भोः!

इदानीं भूमिपालेन कृतकृत्याः कृताः प्रजाः।
रामाभिधानं मेदिन्यां शशाङ्कमभिषिञ्चता ॥४॥

आनकाख्यो वाद्यविशेषः, तेन सहितम्, **भद्रासनम्** भद्रं च तदासनम् राजोचितसिंहासनं चेत्यर्थः, **कल्पितम्** सज्जितम्। **हेममयाः** हेम्नो विकाराः सुवर्णघटिताः, **सदर्भकुसुमाः** दर्भैः कुशैः, कुसुमैः पुष्पैश्च, सहिताः, **तीर्थाम्बुपूर्णाः** तीर्थानाम् गङ्गादिपवित्रसरिताम्, अम्बुभिः जलैः, पूर्णाः पूरिताः, **घटाः** कलशाः, **न्यस्ताः** यथास्थानं स्थापिताः। किं **च**, **पुष्यरथः** यात्रोत्सवादौ नगरभ्रमणार्थो रथविशेषः, **युक्तः** युक्ताश्वः कृतः। **मन्त्रिसहिताः** मन्त्रिभिः सचिवैः, सहिताः, **पौराः** पुरवासिनश्च, **समभ्यागताः** उपस्थिताः, रामराज्याभिषेकदर्शनार्थमिति शेषः। अपि च, **सर्वस्य** समग्रस्य, **अस्य** महोत्सवस्य, **मङ्गलम्** निर्विघ्नतासम्पादनहेतुः, **सः** सूर्यवंशनृपतिकुलगुरुतया प्रसिद्धः, **भगवान् वसिष्ठः**, अपि, **वेद्याम्** राज्याभिषेकवेद्याम्, **स्थितः** उपस्थित एवास्ति। **हिः** पादपूर्तौ। उदात्तालङ्कृतिः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥३॥

हन्त भो इति हर्षसूचको निपातसमुदायः।

अथ हर्षहेतुं वक्ति—"**इदानीमि**"ति। **इदानीम्** अस्मिन् काले स्ववृद्धा-

---

(राजगद्दी) प्रस्तुत है, दाभ और फूलों सहित मङ्गल तीर्थजलों से भरे हुए सोने के कलस (यथास्थान) रख दिये गये हैं, क्रीडा-रथ (घोड़ों से) जुता खड़ा है, मय राजमन्त्रियों के नगर के सब लोग (ठीक समय पर) आ पधारे हैं और इस सारी चहल-पहल के मंगल-स्वरूप वह भगवान् वसिष्ठ भी वेदी पर विराजमान हो गये हैं ॥३॥

प्रतिहारी—यदि ऐसा है तो बहुत अच्छा किया।

कंचुकी—अहा! बड़े आनन्द की बात है।

—पृथ्वी पर चाँद के समान प्यारे राम का राज्याभिषेक करने से तो अब महाराज ने प्रजावर्ग को सचमुच कृतकृत्य कर दिया ॥४॥

प्रतिहारी—तुवरदु तुवरदु दाणिं अय्यो ।
त्वरतां त्वरतामिदानीमार्यः ।

काञ्चुकीयः—भवति ! इदं त्वर्यते । [निष्क्रान्तः]

प्रतिहारी—[परिक्रम्यावलोक्य] अय्य संभवअ ! संभवअ ! गच्छ, तुवं पि महाराअवअणेण अय्यपुरोहिदं जहोपआरेण तुवारेहि । [अन्यतो गत्वा] सारसिए ! सारसिए ! सङ्गीदसालं गच्छिअ नाडईआणं विण्णवेहि—कालसंवादिणा णाडएण सज्जा होह त्ति । जाव अहं वि सव्वं किदं त्ति महाराअस्स णिवेदेमि । [निष्क्रान्ता]

वस्थायाम्, इत्यर्थः, **मेदिन्याम्** पृथिव्याम्, **रामाभिधानम्** राम इत्यभिधानं यस्य तम्, **शशाङ्कम्** चन्द्रसमम्, **अभिषिञ्चता** यौवराज्येऽधिरोहयता, **भूमिपालेन** राज्ञा दशरथेन, **प्रजाः** प्रकृतयः, **कृतकृत्याः** कृतं कृत्यं याभिस्ताः सफलमनोरथाः, **कृताः** । सर्वाः प्रजा रामं यौवराज्ये द्रष्टुमिच्छन्ति । तत्तथा कुर्वता राज्ञा प्रजानां मनोरथः फलेग्रहिः कृत इति भावः । रामे शशाङ्कारोपाद् रूपकम् । रामस्य सकललोकाह्लादकरत्वं च शशाङ्कारोपहेतुः । प्रजानिष्ठो रामविषयको रतिभावश्च व्यङ्ग्यः ॥४॥

त्वरताम् इति—**आर्यः** कञ्चुकीत्यर्थः । **आर्येति—संभवकेति** द्वितीयस्य कञ्चुकिनो नाम । **महाराजवचनेन** महाराजस्य दशरथस्याज्ञया, **आर्यपुरोहितम्** आर्यम् पूजनीयम्, पुरोहितम् पुरोधसम्, विधिबोधिताभिषेकेतिकर्तव्यताभिज्ञं ब्राह्मणम्, **यथोपचारेण** उपचारः सत्कारः, तमनतिक्रम्य यथोचितं सत्कृत्येत्यर्थः [यथार्थेऽव्ययीभावः, तृतीयासप्तम्योर्बहुलमिति बाहुलकादमभावः], **त्वरय** सत्वरमागमनाय प्रेरय । **नाटकीयानाम्** अभिनयोपजीविनां नटानाम् [नाटकशब्दाद् 'वृद्धाच्छ' इति शैषिकश्छः, कर्मणि शेषत्वविवक्षया षष्ठी] **कालसंवादिना** कालं कालेन वा संवदतीति कालसंवादि,

---

प्रतिहारी—आर्य ! जल्दी करो, जल्दी करो ।
कंचुकी—आर्ये ! यह जल्दी ही लो । [प्रस्थान]
प्रतिहारी—[घूमकर तथा देखकर] आर्य संभवक ! ओ संभवक ! जाओ, तुम भी महाराज के आदेशानुसार पूज्य पुरोहित जी को उचित शिष्टाचार-पूर्वक जल्दी ही लिवा लाओ । [दूसरी ओर जाकर]

आर्य संभवक ! संभवक ! गच्छ, त्वमपि महाराजवचनेनार्यपुरोहितं यथोपचारेण त्वरय । सारसिके ! सारसिके ! सङ्गीतशालां गत्वा नाटकीयानां विज्ञापय—कालसंवादिना नाटकेन सज्जा भवतेति । यावदहमपि सर्वं कृतमिति महाराजाय निवेदयामि ।

[ततः प्रविशत्यवदातिका वल्कलं गृहीत्वा]

अवदातिका—अहो ! अच्चाहिदं । परिहासेण वि इमं वक्कल उवणअन्तीए मम एत्तिअं भअं आसी, किं पुण लोभेण परधणं हरन्तस्स । हसिदुं विअ इच्छामि । ण खु एआइणीए हसिदव्वं ।

तेन राज्याभिषेककालोचितेन, **नाटकेन** तादृशं नाटकमभिनेतुमिति भावः । करणत्वविवक्षया तृतीया। अथवा नाटकपदं नाटकसामग्रीपरम्। सहार्थे चेयं तृतीया। राज्याभिषेकोत्सवोचितनाटकाभिनयसामग्र्या सहेत्यर्थः । **सज्जाः** अभिनयकरणाय सन्नद्धाः। यावन्निवेदयामीत्यत्र 'यावत्पुरानिपातयोर्लट्' इति भविष्यति लट्।

अवदातिका—सीतायाः सखी। **अहो** इति—**अत्याहितम्** जीवनानपेक्षि कर्म, साहसमिति यावत् ['अत्याहितं महाभीतिः कर्म जीवानपेक्षि च' इत्यमरः] । परकीयं वल्कलं हरन्त्या मयाऽनुचितं साहसं कृतमिति भावः । [गणपतिशास्त्रिणस्तु—अहो कष्टम्, अत्याहितम्, महाभयम्, उपस्थितमिति शेषः, इति व्याचख्यु] । **परिहासेति—परिहासेनापि** विनोदहेतुनापि, न तु वस्तुतो लोभेन स्वायत्तीकरणेच्छया, **इमम्** मद्धस्ते वर्तमानम्, **वल्कलम्** अन्यस्वामिकां वृक्षत्वचम्, **उपनयन्त्याः** आनयन्त्या, **मम**

सारसिका ! ओ सारसिका ! संगीत-शाला में जाकर नाटक खेलने वालों से कहो कि वे आज एक सुन्दर समयोचित नाटक खेलने के लिए सु-सज्जित हो जायँ। इतने में मैं भी, सब कुछ तैयार है—इसकी महाराज को सूचना दिये देती हूँ।

[प्रस्थान]

[वल्कल लिये अवदातिका का प्रवेश]

अवदातिका—ओह ! बहुत बुरा हुआ । हँसी में भी इस वल्कल (तरुछाल) को उठा ले आने से जब मैं इतनी सहम गई तो फिर लोभ से

अहो ! अत्याहितम् । परिहासेनापीमं वल्कलमुपनयन्त्या ममैतावद् भयमासीत्, किं पुनर्लोभेन परधनं हरतः । हसितुमिवेच्छामि । न खल्वेकाकिन्या हसितव्यम् ।

[ततः प्रविशति सीता सपरिवारा]

सीता—हञ्जे ! ओदादिआ परिसङ्किदवण्णा विअ दिस्सइ । किंणुहु विअ एदं ।

हञ्जे ! अवदातिका परिशङ्कितवर्णेव दृश्यते किन्नु-खल्विवैतत् ।

अवदातिकायाः, **यदि, एतावद्** इयदधिकम्, **भयम्**, **आसीत्** उदपद्यत । तर्हि **लोभेन, परधनम्** परकीयं द्रव्यम्, **हरतः** चोरयतः पुरुषस्य, **किं पुनः** कियदधिकं भयं भवेत्, अत्यन्तं भयं भवेदिति भावः । एतेन परधनहरण-तत्फलभूतमहाभयोपस्थितिवचनेन वक्ष्यमाणं कैकेयीकर्तृकं राज्याधिकारिणो रामस्य राज्यहरणाय वनप्रवासनं तत्फलभूतं दशरथप्रयाणरूपं महद् भयं च सूचितम् । **हसितुमिवे**त्यादि—विनोदकामास्मि, न चैकया विनोदः सुघट इति द्वितीयां काञ्चिदन्विष्यामीत्यभिप्रायः ।

तत इत्यादि—**सपरिवारा** परिवारेण चेट्यादिपरिजनेन सहिता । **हञ्जे** इति—हञ्जे इति चेटीं प्रति संबोधनम् ['हण्डे हञ्जे हलाह्वाने नीचां चेटीं सखीं प्रति' इत्यमरः] । **परिशङ्कितवर्णा** परिशङ्कितायाः [शङ्का सञ्जाता अस्या इति शङ्किता, तारकादित्वादितच्, परितः शङ्किता परिशङ्किता, तस्याः] अतिभीतायाः, वर्ण इव आकार इव, वर्णो यस्यास्तादृशीव, **दृश्यते** लक्ष्यते । अस्या अवदातिकाया आकृतिस्तथा लक्ष्यते यथेयमतिभीतास्तीति भावः । **किन्न्विति**—अस्या भीतेः किं कारणं भवेदिति भावः ।

पराया धन हरने का तो कहना ही क्या ? हँसना-सा चाहती हूँ । पर अकेले तो हँसना ही न चाहिए ।

[सपरिकर सीता का प्रवेश]

सीता—हञ्जे ! अवदातिका की मुखाकृति कुछ शङ्काकुल-सी दीखती है । क्या बात है ?

चेटी—**भट्टिणि ! सुलहावराहो परिअणो णाम । अवरज्झा भविस्सदि ।**

भट्टिनि ! सुलभापराधः परिजनो नाम । अपराद्धा भविष्यति ।

सीता—**णहि णहि, हसिदुं विअ इच्छदि ।**

नहि नहि, हसितुमिवेच्छति ।

अवदातिका—[उपसृत्य] **जेदु भट्टिणी । भट्टिणि ! ण खु अहं अवरज्झा ।**

जयतु भट्टिनी । भट्टिनि ! न खल्वहमपराद्धा ।

सीता—**का तुमं पुच्छदि । ओदादिए ! किं एदं वामहत्थपरिग्गहिदं ।**

का त्वां पृच्छति । अवदातिके ! किमेतद् वामहस्तपरिगृहीतम् ।

भट्टिनीति—सीताया अद्याप्यनभिषेकाद् भट्टिनीपदेन संबोधनम् ['राज्ञी कृताभिषेकायामितरासु तु भट्टिनी' इत्यमरः]। **सुलभे**त्यादि—**परिजनः** सेवकजनः, **सुलभापराधः** सुलभः अपराधो यस्य तादृशः, भवतीति शेषः । **नामे**ति प्रसिद्धौ । स्वल्पेऽपि स्खलिते सेवकजनः कृतापराधोऽयमित्युद्घोष्यत इति प्रसिद्धम् इति भावः । अथवा नैककार्यव्यग्रस्य सेवकजनस्य कस्मिँश्चित् कार्ये प्रमादो न खल्वसंभवीति सुलभापराधत्वं तस्य । **अपराद्धा** कृतापराधा [राध्यतेः कर्तरि क्तान्तम्], **भविष्यति** भवेदित्यर्थः [संभावनायां लृडयमपाणिनीयः]। तदनयाऽपि कश्चनापराधः कृतो भवेत्, येनेयं शङ्कितेव लक्ष्यत इति समस्तार्थः । **नही**ति—नेयं वस्तुतः शङ्किता, केवलं परिहासनिमित्तं तथात्मानं दर्शयतीति हृदयम् । **का त्वामिति**—त्वयापराधः

चेटी—महारानी जी ! अनुचरों से कोई-न-कोई अपराध हो ही जाया करता है । बेचारी से कुछ अपराध हो गया होगा ।

सीता—नहीं, नहीं । वह तो हँसना-सा चाहती है !

अवदातिका—[पास आकर] जय हो महारानी जी की । महारानी जी ! मुझसे किसी प्रकार का भी अपराध नहीं हुआ ।

सीता—तुझे कौन पूछती है ? अवदातिका ! अरी ! यह बाँये हाथ में क्या है ?

अवदातिका—भट्टिणि ! इदं वक्कलं । भट्टिनि ! इदं वल्कलम् ।

सीता—वक्कलं किस्स आणीदं । वल्कलं कस्मादानीतम् ।

अवदातिका—सुणादु भट्टिणी । णेवच्छपालिणी अय्यरेवा णिव्वुत्तरङ्गप्पओअणं असोअरुक्खस्स एक्कं किसलअं अह्मेहि जाइदा आसि । ण अ ताए दिण्णं । तदो अरिहदि अवराहो त्ति इदं गहिदं । शृणोतु भट्टिनी । नेपथ्यपालिन्यार्यरेवा निर्वृत्तरङ्ग-प्रयोजनमशोकवृक्षस्यैकं किसलयमस्माभिर्याचितासीत् । न च तया दत्तम् । ततोऽर्हत्यपराध इतीदं गृहीतम् ।

कुतो नवेति कया त्वं पृष्टासि ? अपृष्टैवात्मापराधं निषेधसि । तदयमपृष्टायास्ते निषेधः 'चौरकूर्चके तृणमिति' न्यायेन तव सापराधत्वं स्पष्टयतीति हृदयम् । तमेवापराधं स्फोरयितुं प्रश्नयति—**अवदातिके** इत्यादि ।

वल्कलमिति—कस्मात् कस्मात् कारणादित्यर्थः । कारणं निर्दि-शति—**शृणोत्वित्यादि** । **नेपथ्यपालिनी** नेपथ्यम् रङ्गभूमेरलङ्करण-सामग्री, तां पालयति रक्षतीति तादृशी, **आर्यरेवा** आर्या रेवा रेवानाम्नी, **निर्वृत्तरङ्गप्रयोजनम्** निर्वृत्तम् सम्पन्नम्, रङ्गस्य रङ्गभूमेः, प्रयोजनम् अलङ्करणरूपं प्रयोजनं यस्य तादृशम्, अत एवेदानीं निष्प्रयोजनमिति भावः, **ततः** याचितस्यापि किसलयस्य अदानाद् हेतोः, **अपराधः** अस्या नेपथ्य-पालिकाया अपराधः, अर्हति दण्डमिति शेषः, **इति** हेतोः, **इदम्** वल्कलम्, **गृहीतम्** तयाऽदत्तमेव मया स्वयमेवोपनीतम् । सा याचितापि किसलयं नादात्, अतोऽदक्षिणायास्तस्या अपराधस्य दण्डरूपेण इदं वल्कलं तयाननु-ज्ञातमेव मयानीतमिति भावः ।

अवदातिका—महारानी जी ! यह वल्कल है ।

सीता—वल्कल कहाँ से उठा लाई ?

अवदातिका—महारानी जी ! सुनिए—नेपथ्य की रखवाली करने वाली आर्या रेवा से हमने अशोक वृक्ष का एक कोमल पत्ता, जो कि नाटक के काम में आ चुका था, माँगा था । किन्तु उसने नहीं दिया । इसी लिए उसके बदले मैं यह वल्कल उठा लाई ।

सीता—पावअं किदं । गच्छ, णिय्यादेहि ।
पापकं कृतम् । गच्छ, निर्यातय ।
अवदातिका—भट्टिनि ! परिहासणिमित्तं खु मए एदं आणीदं ।
भट्टिनि ! परिहासनिमित्तं खलु मयैतदानीतम् ।
सीता—उम्मत्तिए ! एव्वं दोसो वड्ढइ । गच्छ, णिय्यादेहि णिय्यादेहि ।
उन्मत्तिके ! एवं दोषो वर्धते । गच्छ, निर्यातय निर्यातय ।
अवदातिका—जं भट्टिणी आणवेदि । [प्रस्थातुमिच्छति]
यद् भट्टिन्याज्ञापयति ।
सीता—हला ! एहि दाव । हला ! एहि तावत् ।
अवदातिका—भट्टिणि ! इअह्मि । भट्टिनि ! इयमस्मि ।
सीता—हला ! किंणुहु मम वि दाव सोहदि ।
हला ! किन्नुखलु ममापि तावत् शोभते ।

पापकमिति—निर्यातय प्रत्यर्पय । तामिति शेषः ['निर्यातनं वैर-शुद्धौ दाने न्यासार्पणेऽपि च' इत्यमरः]। **भट्टिनीति—परिहासनिमित्तम्** परिहासहेतुना, न तु लोभेन । **उन्मत्तिके** इति—**उन्मत्तिके** उन्मादवति अविवेकिनि । **एवम्** परिहासेनापि क्रियमाणः, **दोषः** परद्रव्यहरणादिदोषः, **वर्धते** वृद्धिं गच्छति । अद्य परिहासेन चौर्यं करोषि, श्वः परमार्थतः कर्तासि । तथाचाकार्याभ्यासः परिहासहेतुनापि न श्लाघनीय इति भावः । इत्थं स्वाज्ञया नेपथ्यपालिन्यै वल्कलं प्रत्यर्पयितुं प्रस्थानोन्मुखीमवदातिकां सीता संबोधयति—**हलेति । हलेति** सख्याः संबोधनम् । **तावदिति** प्राथम्यबोधको निपातः, प्रथममित्यर्थः । नेपथ्यपालिकायाः पार्श्वे गमनात् पूर्वम् इति भावः । **एहि** मत्पार्श्वे आगच्छ । **ममापीत्यस्य** शरीरे इति शेषः । इदं वल्कलं ममापि शरीरे धार्यमाणम्, **शोभते** शोभिष्यते किमिति भावः ।

सीता—ओह ! बहुत बुरा किया । जा, लौटा आ ।
अवदातिका—महारानी जी ! मैं तो इसे मज़ाक के तौर पर ले आई ।
सीता—पगली ! इसी प्रकार बुराई बढ़ती है । जा लौटा दे, लौटा दे ।
अवदातिका—जो महारानी जी की आज्ञा । [जाना चाहती है]
सीता—अरी ! ज़रा इधर तो आ ।
अवदातिका—महारानी जी ! लो, यह आ गई ।
सीता—अरी ! (पहनकर देखूँ तो) क्या यह मुझ पर भी सजता है ।

अवदातिका—भट्टिणि ! सव्वसोहणीअं सुरूवं णाम । अलङ्करोदु भट्टिणी ।

भट्टिनि ! सर्वशोभनीयं सुरूपं नाम । अलङ्करोतु भट्टिनी ।

सीता—आणेहि दाव । [गृहीत्वालङ्कृत्य] **हला ! पेक्ख, किं दाणिं सोहदि ।**

आनय तावत् । हला ! पश्य, किमिदानीं शोभते ।

अवदातिका—तव खु सोहदि णाम । सोवण्णिअं विअ वक्कलं संवुत्तं ।

तव खलु शोभते नाम । सौवर्णिकमिव वल्कलं संवृत्तम् ।

सीता—हञ्जे ! तुवं किञ्चि ण भणासि ।

हञ्जे ! त्वं किञ्चिन्न भणसि ।

भट्टिनीति—**सुरूपम्** स्वभावसुन्दरं शरीरम्, **सर्वशोभनीयम्** सर्वैः सुन्दरैरसुन्दरैर्वा वस्तुभिः, **शोभनीयम्** शोभयितुं शक्यम्, **नामे**ति प्रसिद्धौ । सर्वविदितोऽयमर्थ इति भावः । तदुक्तं कविकुलगुरुणा—'किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्' इति । **अलङ्करोतु** भूषयतु, स्वशरीरमिति शेषः । **आनये**ति—**इदानीम्** धारणानन्तरम्, **शोभते** रोचते, **किम्** ? वल्कलमिति शेषः, अथवा शरीरमिति शेषः । **तवे**ति—काकूक्तिरियम्. अनेन धृतेन तव शरीरं शोभत इत्यत्र किमु वक्तव्यम् । स्वयं **वल्कलमिदं** तव देहप्रभया **सौवर्णिकमिव** सुवर्णघटितमिव **संवृत्तम्** सञ्जातम् इति तात्पर्यम् । **हञ्जे त्वम्** इति—शोभते न शोभते वेत्यत्र त्वया स्वसम्मतिर्न प्रकाशितेति भावः ।

अवदातिका—महारानी जी ! सुन्दर रूप पर सब कुछ सज जाता है । महारानी जी सिंगार कर पहन देखें तो ।

सीता—अच्छा, ला । [लेकर तथा पहनकर] **अरी ! देख तो, क्या अब अच्छा विराज रहा है ?**

अवदातिका—आप पर अच्छा तो विराज ही रहा है । अहा ! उल्टा वल्कल ही सोने का सा बना जैसा जगमगा रहा है ।

सीता—हञ्जे ! तू नहीं कुछ बोल रही !

चेटी—णत्थि वाआए पओअणं । इमे पहरिसिदा तणूरुहा मन्तेन्ति । [पुलकं दर्शयति]

नास्ति वाचा प्रयोजनम् । इमानि प्रहर्षितानि तनूरुहाणि मन्त्रयन्ते ।

सीता—हञ्जे ! आदंसअं दाव आणेहि ।

हञ्जे ! आदर्शं तावदानय ।

चेटी—जं भट्टिणी आणवेदि । [निष्क्रम्य प्रविश्य] भट्टिणि ! अअं आदंसओ ।

यद् भट्टिन्याज्ञापयति । भट्टिनि ! अयमादर्शः ।

सीता—[चेटीमुखं विलोक्य] चिट्ठदु दाव आदंसओ । तुवं किं वि वत्तुकामा विअ ।

तिष्ठतु तावदादर्शः । त्वं किमपि वक्तुकामेव ।

नास्ति वाचेति—**वाचा** वचनेन स्वसम्मतिप्रकाशनस्य, **नास्ति प्रयोजनम्**। **इमानि** प्रत्यक्षाणि, **प्रहर्षितानि** उद्गतानि, **तनूरुहाणि** रोमाणि, **मन्त्रयन्ते** अप्रकाशं मत्सम्मतिं सूचयन्ति, यद् भवत्याः शरीरे धार्यमाणं वल्कलमिदं साधु शोभत इति । अयमभिप्रायः—शरीरे रोमोद्गमः खल्वानन्दादुपजायते, सोऽयमानन्दो भवत्या वल्कलपरिधानोत्पन्नशोभातिशयोपलब्धिजन्य एवेति, उपायान्तरेण प्रकाशितेर्थे व्यर्थो वाचां प्रयोग इति । **पुलकम्** रोमाञ्चम् । **हञ्जे** इति—**आदर्शम्** दर्पणम् । आदर्शग्रहणात् प्राक् चेटीमुखे दृष्टेनाधरस्फुरणेन तस्या यत्किञ्चिद्विवक्षामनुमायाह सीता—**तिष्ठत्विति**। **वक्तुकामा** वक्तुं कामो यस्यास्तादृशी । 'तुं काममनसोरपि' इति तुमुनो मलोपः ।

चेटी—बोलने की आवश्यकता ही नहीं । ये रोमाञ्च ही सब कुछ बता रहे हैं । [रोमाञ्च दिखाती है]

सीता—हञ्जे ! अच्छा, दर्पण ला (ताकि स्वयं ही देख लूँ) ।

चेटी—जो महारानी जी की आज्ञा । [जाकर तथा आकर] महारानी जी ! लीजिए, यह रहा दर्पण ।

सीता—[चेरी के मुँह की ओर देखकर] दर्पण तो रहने दें । अच्छा, पहले बता, तू क्या-कुछ कहा चाहती है ?

चेटी—भट्टिणि ! एवं मए सुदं । अय्यबालाई कञ्चुई भणादि—अहिसेओ अहिसेओ त्ति ।

भट्टिनि ! एवं मया श्रुतम् । आर्यबालाकिः कञ्चुकी भणति—अभिषेकोऽभिषेक इति ।

सीता—को वि भट्टा रज्जे भविस्सदि ।

कोऽपि भर्ता राज्ये भविष्यति ।

[प्रविश्यापरा]

चेटी—भट्टिणि ! पिअक्खाणिअं पिअक्खाणिअं ।

भट्टिनि ! प्रियाख्यानिकं प्रियाख्यानिकम् ।

सीता—किं किं पडिच्छिअ मन्तेसि । किं किं प्रतीष्य मन्त्रयसे ।

चेटी—भट्टिदारओ किल अहिसिञ्चीअदि ।

भर्तृदारकः किलाभिषिच्यते ।

भट्टिनीति—एवम् यत्सत्यमस्मि किञ्चिद् वक्तुकामेति भावः । किं तदिति जिज्ञासायामाह—**मयेति** । **बालाकिरिति** कञ्चुकिनो नाम । **अभिषेकोऽभिषेक** इति द्विरुक्तिरानन्दजन्यसंभ्रमद्योतिका । कस्याभिषेकः, कुत्राभिषेक इति विशेषस्यावचनाद्, दशरथे जीवति रामस्य स्वभर्तुस्तदसंभवाच्च सीता ताटस्थ्येनोत्तरति—**कोऽपीति** । कस्मिंश्चिद् **राज्ये कोऽपि** भर्तृपदेऽभिषेक्ष्यते, काममभिषिच्यताम्, किं तेनास्माकमिति भावः । **भट्टिनीति—प्रियाख्यानिकम्** प्रियस्याख्यानमस्मिन्नस्ति तत् । प्रियाख्यानसंयुक्तं वृत्तम् इत्यर्थः [प्रियाख्यानशब्दाद् 'अत इनिठनौ' इति ठन्] । द्विरुक्तिरानन्दातिशयसूचनार्था । **किं किमिति—प्रतीष्य** उपलभ्य, **मन्त्रयसे** भणसि, त्वया प्रियाख्यानिकं किं दृष्टं श्रुतं वा येनैवमानन्दनिर्भरा भणसि । **भर्तृदारक** इति—**भर्तृदारकः** भर्तुः स्वामिनो दारकः सुतः, राजकुमारो रामः, **अभिषिच्यते** अभिषेकेण राजपदवीमारोप्यत इति भावः ।

चेटी—महारानी जी ! मैंने ऐसा सुना है । आर्य बालाकि कंचुकी कह रहे हैं—राजतिलक है, राजतिलक है ।

सीता—हाँ, होता होगा किसी का राजतिलक ।

[दूसरी चेरी का प्रवेश]

चेटी—महारानी जी ! शुभ समाचार है, शुभ समाचार है ।

सीता—क्या क्या शुभ समाचार मालूम कर बोल रही हो ?

चेटी—सुना है, राजकुमार का अभिषेक हो रहा है ।

सीता—अपि तादो कुसली। अपि तातः कुशली ?

चेटी—महाराएण एव्व अहिसिश्चीअदि।

महाराजेनैवाभिषिच्यते।

सीता—जइ एव्वं, दुदीअं मे पिअं सुदं। विसालदरं उच्छङ्गं करेहि।

यद्येवम्, द्वितीयं मे प्रियं श्रुतम्। विशालतरमुत्सङ्गं कुरु।

चेटी—भट्टिणि! तह। [तथा करोति] भट्टिनि! तथा।

सीता—[आभरणान्यवमुच्य ददाति]

चेटी—भट्टिणि! पटहसद्दो विअ। भट्टिनि! पटहशब्द इव।

सीता—सो एव्व। स एव।

सीता रामस्याभिषेकवृत्तान्तं श्रुत्वा पितरि जीवति कथमभिषेक इति महाराजदशरथस्यामङ्गलमाशङ्कमाना पृच्छति—**अपी**ति। **तातः** महाराजदशरथः। **यद्येव**मिति—**यदि एवम्** महाराज एवाभिषेचनकर्ता, तर्हि, **मे** मयेत्यर्थः [सम्बन्धसामान्ये षष्ठी, तृतीयार्थेऽव्ययं वेदम्], **द्वितीयम्** महाराजकुशललक्षणम्, **प्रियम्** सुखकरं वृत्तम्, **श्रुतम्**। रामाभिषेकरूपमेकं प्रियम्, तातकुशललक्षणं तु द्वितीयं प्रियमिति भावः। अथ प्रियवृत्तान्तश्राविकायै चेट्यै पारितोषिकमर्पयन्ती सीता तामाह—**विशाले**ति। **उत्सङ्गम्** अङ्कम् परिधानवस्त्रप्रान्तं वा। **विशालतरम्** अतिविस्तृतम्। **अवमुच्य** गात्रादवतार्य। **पटहशब्दे**ति—पटहशब्द इव, श्रूयत इति शेषः। **स एवे**ति—नायं पटहशब्दसदृशोऽन्यः शब्दः, अपि तु पटहशब्द एवेति भावः।

सीता—पिता जी स-कुशल तो हैं न ?

चेटी—महाराज ही तो अभिषेक करा रहे हैं।

सीता—यदि ऐसा है तो मैंने अपना दूसरा शुभ समाचार सुना। ले, अपना आँचल (झोली) खूब फैला।

चेटी—महारानी जी! यह रहा। [आँचल—पल्ला फैलाती है]

सीता—[आभूषण उतारकर देती है]

चेटी—महारानी जी! ढोल बजने की-सी आवाज़ हो रही है!

सीता—हाँ, ढोल ही बज रहे हैं।

चेटी—एक्कपदे ओघट्टिअतुह्णीओ पटहसद्दो संवुत्तो ।

एकपदे अवघट्टिततूष्णीकः पटहशब्दः संवृत्तः ।

सीता—कोणुखु उग्घादो अहिसेअस्स । अहव बहुवुत्तन्ताणि राअउलानि णाम ।

कोनुखलूद्घातोऽभिषेकस्य । अथवा बहुवृत्तान्तानि राजकुलानि नाम ।

चेटी—भट्टिणि ! एवं मए सुदं—भट्टिदारअं अहिसिञ्चिअ महाराओ वणं गमिस्सदि त्ति ।

भट्टिनि ! एवं मया श्रुतम्—भर्तृदारकमभिषिच्य महाराजो वनं गमिष्यतीति ।

सीता—जइ एव्वं, ण सो अहिसेओदओ मुहोदअं णाम ।

यद्येवम्, न तदभिषेकोदकं मुखोदकं नाम ।

एकपद इति—**एकपदे** सद्य एव, **अवघट्टिततूष्णीकः** पूर्वम् अवघट्टितः अवघट्टनया ताडनयोत्पन्नः, तदनु तूष्णीकः विरतो विनष्टः ['पूर्वकालैकसर्वजरत्–' इत्यादिना समासः], सद्य एवोत्पन्नो विरतश्च सञ्जात इति भावः । **को** न्विति—**नु**रत्र वितर्के । **उद्घातः** विघ्नः । **अथवे**ति—**राजकुलानि** राजभवनानि, **बहुवृत्तान्तानि** बहवो वृत्तान्ताः अवसराः, प्रवृत्तयो वा यत्र तादृशानि । अलमनया विघ्नचिन्तया । राजभवनेषु प्रायो नैकविधा अवसरा उपतिष्ठन्ते, घटना वा घटिता भवन्ति, यैरन्यथा निश्चितं कार्यमन्यथा कर्तुमापतति । एवमयं रामाभिषेकनिमित्तमचिरनादितः पटहः कदाचित् कार्यान्तरवशात् तूष्णीकतां गतो भवेदिति भावः । चेटी सीतोक्तं समर्थयते—**भट्टिनि एवमि**ति । पूर्वं रामराज्याभिषेकोत्सवेन हेतुना प्रणादितोऽपि पटहः कदाचिद् इदानीं महाराजवनगमननिश्चयदुःखेन न प्रणाद्यत इति भावः । **यद्येवमि**ति—**यद्येवम्** चेद् महाराजेनास्मान् परित्यज्य वनगमननिश्चयः कृतः । **मुखोदकम्** महाराजवियोगजनितदुःखाश्रुक्लिन्नमुखक्षालकम् ।

चेटी—ढोलों की आवाज़ बजते ही सार जल्दी ही थम गई ।

सीता—अभिषेक में कौन-सी अड़चन (विघ्न-बाधा) हो पड़ी । अथवा, राज-घरानों का क्या कहना ! यहाँ तो बहुत-सी घटनाएँ होती ही रहती हैं ।

चेटी—महारानी जी ! मैंने ऐसा सुना है—राजकुमार का अभिषेक करके महाराज वन को चले जायँगे ।

सीता—यदि ऐसा हुआ, तब तो यह अभिषेक का जल नहीं, आँसू पखारने का ही जल होगा !

[ततः प्रविशति रामः]

रामः—हन्त भोः !

आरब्धे पटहे स्थिते गुरुजने भद्रासने लङ्घिते
स्कन्धोच्चारणनम्यमानवदनप्रच्योतितोये घटे ।
राज्ञाहूय विसर्जिते मयि जनो धैर्येण मे विस्मितः
स्वः पुत्रः कुरुते पितुर्यदि वचः कस्तत्र भो! विस्मयः ॥५॥

अभिषेकजनितहर्षः महाराजवियोगजन्यदुःखापनोदकं न भविष्यतीति भावः। न तदुदकमभिषेकाय भविष्यति, अपितु पितृवियोगाश्रुक्षालनायेति भाव इति केचित्। मशकार्थो धूमो मशकधूम इतिवद् मुखार्थमुदकं मुखोदकमिति विग्रहः।

हन्त भो इति हर्षसूचको निपातसमुदायः। स च हर्षो वक्ष्यमाण-पित्राज्ञापालनलक्षणधर्मानुष्ठानावसरलाभजन्यो बोध्यः।

"आरब्ध" इति—**पटहे** आनके, **आरब्धे** अभिषेकोत्सवमङ्गलोद्देशेन ताडिते सति, **गुरुजने** माननीयजनसमूहे, **स्थिते** अभिषेकोत्सवदर्शनार्थ-मुपस्थिते सति, **भद्रासने** राजोचितसिंहासने, **लङ्घिते** मयारूढे सति, **घटे** तीर्थजलपूर्णे कलशे, **स्कन्धोच्चारणनम्यमानवदनप्रच्योतितोये** स्कन्धोच्चारणे स्कन्धाद् अंसप्रदेशाद्, उच्चारणे ऊर्ध्वं नयने सति, स्कन्धा-दूर्ध्वं नीत्वेत्यर्थः, नम्यमानाद् जलनिपतनाय नीचैः क्रियमाणाद्, वदनात् मुखात्, प्रच्योति प्रच्यवमानं तोयं जलं यस्य तादृशे सति, **राज्ञा** महाराजेन मत्पित्रा दशरथेन, **आहूय** संबोध्य, मामिति शेषः, **मयि, विसर्जिते** राज्यं परित्यज्य गम्यतामित्येवमादिष्टे सति, **जनः** तदानीमुप-

[राम का प्रवेश]

राम—ओह ! ओ !

—माङ्गलिक बाजे (ढोल) बजने लग गये थे, गुरु-जन भी (चहल-पहल देखने) यथास्थान विराज गये थे, मैं सिंहासन पर बैठ चुका था, (अभिषेक की सुविधा के लिए) कलसों को कन्धों के ऊपर ऊपर तक उठा उठा कर उनसे (सिर पर) तीर्थ-जल डाला जा रहा था कि इतने ही में महाराज से बुलाये जाकर राजगद्दी से उतरकर वन जाने का आदेश पाकर (उनकी आज्ञा को सिर-माथे रख) मैंने बिदा ली तो मेरे इस धैर्य पर सारा जन-समाज हैरान हो (वाह वाह कर) रहा है। किन्तु (मैं नहीं समझता कि) सच्चा पुत्र यदि पिता के वचन का पालन कर दे तो भला इसमें हैरान होने की ऐसी कौन-सी अपूर्व बात है ? ॥५॥

विश्रम्यतामिदानीं पुत्रेति स्वयं राज्ञा विसर्जितस्याप-नीतभारोच्छ्वसितमिव मे मनः । दिष्ट्या स एवास्मि रामः, महाराज एव महाराजः । यावदिदानीं मैथिलीं पश्यामि ।

स्थितो जनसमूहः, **मे** मम, **धैर्येण** धीरतया, विकारहेतावपि सर्वथा विकाराभावेनेत्यर्थः, **विस्मितः** आश्चर्यान्वितो जातः [विस्मयतेरकर्मकात् कर्तरि क्तः । एतस्मिन् प्रसङ्गे रामायणेऽपि भगवतो रामस्य धैर्यं वसिष्ठेन स्तुतम् । तद्यथा—'आहूतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य वनाय च । न मया लक्षितो रामे स्वल्पोऽप्याकारविभ्रमः ॥' इति] । **भोः ! यदि, स्वः** स्वकीयः, **पुत्रः, पितुः, वचः** वचनम् आज्ञामिति यावत्, **कुरुते** पालयतीत्यर्थः, **तत्र** पुत्रस्य पित्राज्ञापालने, **को विस्मयः ?** किमाश्चर्यम् ? न कोऽपीत्यर्थः ।

पुत्रस्य पित्राज्ञापालनं नाश्चर्यविषयः, एष तु पुत्रस्य सनातनो धर्मो यत् पित्राज्ञापालनं नामेति भावः । अभिषेकार्थमाहूय विसर्जनम् अधैर्यहेतुरस्ति । तस्मिन् सत्यप्यधैर्याभावेन विशेषोक्तिरलङ्कारः । पुत्रस्य स्व इति विशेषणं स्वपित्राज्ञापालनौचित्याभिप्रायगर्भमिति परिकरोऽपि । पुत्रेण पित्राज्ञापालनस्यावश्यकर्तव्यत्वरूपेण कारणेन धैर्यस्य कार्यस्य समर्थनात् कारणेन कार्यसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासश्च । रामनिष्ठो पितृविषयो रतिभावश्चात्र प्राधान्येन चर्वणाविषयः । वृत्तं शार्दूलविक्रीडितम् ॥५॥

विश्रम्यतामिति—**पुत्र, इदानीम्** अस्मिन् काले, त्वया **विश्रम्यताम्** राज्यभारग्रहणाद् विरम्यताम्, यौवराज्यं त्यज्यतामिति भावः । **इति** इत्युक्त्वा, **स्वयम्** आत्मनैव, **राज्ञा, विसर्जितस्य** राज्यभाराद् दत्तावकाशस्य, **मे, मनः, अपनीतभारोच्छ्वसितमिव** अपनीतः दूरीकृतः, भारः, यस्य तादृशम्, अत एव भारापगमाद् लाघवानुभवेन उच्छ्वसितमिव गृहीतसुखोच्छ्वासमिव, संवृत्तम् इति शेषः । यथा भाराक्रान्तो भारापगमे आत्मानं सुखिनमिवानुभवति, तथैव यौवराज्याद् विनिवर्तितोऽहं

वास्तव में 'पुत्र ! इस समय राजगद्दी को रहने दो' इस प्रकार स्वयं महाराज से ही बिदा पाकर अपने ऊपर से एक प्रकार का भार टल जाने से मेरा मन अब कुछ छुटकारे की ठण्डी साँस-सा ले रहा है । परमात्मा ने बड़ी कृपा की, जो मैं (अब भी) वही राम बना रह पाया हूँ और महाराज ही महाराज के पद पर बने रह गये । अच्छा, तो अब चलकर सीता से मिलें ।

अवदातिका—भट्टिणि ! भट्टिदारओ क्खु आअच्छइ । णाव-णीदं वक्कलं !

भट्टिनि ! भर्तृदारकः खल्वागच्छति । नापनीतं वल्कलम् !

रामः—मैथिलि ! किमास्यते ।

सीता—हं ! अय्यउत्तो । जेदु अय्यउत्तो ।

हम् ! आर्यपुत्रः । जयत्वार्यपुत्रः ।

रामः—मैथिलि ! आस्यताम् । [उपविशति]

सीता—जं अय्यउत्तो आणवेदि । [उपविशति]

यद् आर्यपुत्र आज्ञापयति ।

अवदातिका—भट्टिणि ! सो एव्व भट्टिदारअस्स वेसो । अलिअं विअ एदं भवे ।

राज्यभारापगमेन सुखिनमिवात्मानमनुभवामीति भावः । **दिष्ट्ये**त्यव्ययं हर्षे । **स एव** अभिषेकात् पूर्वं निरुपपदरामशब्देन व्यपदिश्यमानः, न तु महाराजोपपदेन रामशब्देन । **महाराजः** दशरथः, एव, महाराजः महाराजपदवाच्यः । यद्यपि महाराजस्यापि इदानीं महाराजत्वं न संभवि, महाराजेन कैकेय्यै भरताभिषेकस्य प्रतिश्रुतत्वाद्, तथाप्येतद्वृत्तमजानत एव रामस्येयमुक्तिर्विज्ञेया । **मैथिलीम्** सीताम् [मिथिला खलु जनकवंश-धराणां राज्ञां राजधानी । ततः शैषिकोऽण्, ततो ङीप्] ।

नापनीतम् नावतारितम् । वल्कलपरिधानां त्वां कदाचिन्न रोचयेद् राजकुमार इति भावः । **हमिति** संभ्रमसूचकमव्ययम् ।

अवदातिका—महारानी जी ! राजकुमार आ रहे हैं । अभी तक वल्कल नहीं उतारा ।

राम—मैथिली ! कैसे बैठी हो ?

सीता—ऊँह ! आर्यपुत्र हैं ? जय हो आर्यपुत्र की !

राम—मैथिली ! बैठो । [बैठता है]

सीता—जो आर्यपुत्र की आज्ञा । [बैठती है]

अवदातिका—महारानी जी ! राजकुमार का वेश तो (अब भी) वही (सादा) है । वह बात झूठ-सी लगती है !

भट्टिनि ! स एव भर्तृदारकस्य वेषः । अलीकमिवैतद् भवेत् ।

सीता—तादिसो जणो अलिअं ण मन्तेदि । अहव बहुवुत्त-न्ताणि राअउलाणि णाम ।

तादृशो जनोऽलीकं न मन्त्रयते । अथवा बहुवृत्तान्तानि राजकुलानि नाम ।

रामः—मैथिलि ! किमिदं कथ्यते ।

सीता—णखु किञ्चि । इअं दारिआ भणादि—अहिसेओ अहिसेओ त्ति ।

नखलु किञ्चित् । इयं दारिका भणति—अभिषेकोऽभिषेक इति ।

रामः—अवगच्छामि ते कौतूहलम् । अस्त्यभिषेकः । श्रूयताम् । अद्यास्मि महाराजेनोपाध्यायामात्यप्रकृतिजनसमक्षमेकप्रकारसंक्षिप्तं कोसलराज्यं कृत्वा बाल्याभ्यस्तमङ्कमारोप्य मातृगोत्रं स्निग्धमाभाष्य पुत्र ! राम ! प्रतिगृह्यतां राज्यम् इत्युक्तः ।

अवदातिकोक्तौ **स एवेति** । **स एव** अभिषेकपौर्वकालिक एव, नत्वभिषिक्तोचितः । **अलीकमिति**—**एतत्** पूर्वश्रुतं राजकुमाराभिषेकवृत्तम्, **अलीकमिव** अनृतमिव । **तादृश** इति—**तादृशः** आर्यबालाकिसदृशः । **अवगच्छामीति**—**अवगच्छामि** जानामि । **कौतूहलम्** अभिषेकवृत्तान्तजिज्ञासाम् । **अद्येत्यादि**—**अद्य महाराजेन उपाध्याया-**

सीता—वैसे लोग झूठी खबर नहीं चलाते । अथवा, राज-घरानों का क्या कहना ! यहाँ तो बहुत-सी घटनाएँ होती ही रहती हैं ।

राम—मैथिली ! यह क्या कह रही हो ?

सीता—कुछ नहीं । यह लड़की अभिषेक अभिषेक कह रही थी ।

राम—तुम्हारी उत्सुकता को भाँप (समझ) गया । हाँ, आज सचमुच अभिषेक था । सुनो, आज महाराज ने आचार्य, मन्त्री और मित्र तथा पुरवासिओं के सामने, एक प्रकार से छोटा सा कोसल-राज-दरबार करके, मुझे अपनी उसी बचपन की हिली-मिली स्नेहमयी गोद में बैठाकर बड़े प्यार से मेरे मातृ-कुल का उच्चारण कर ('कौसल्यानन्दन ! ' नाम से पुकारकर) कहा—'बेटा राम ! राज्य स्वीकार करो' ।

सीता—तदाणीं अय्यउत्तेण किं भणिदं ।

तदानीमार्यपुत्रेण किं भणितम् ।

रामः—मैथिलि ! त्वं तावत् किं तर्कयसि ।

सीता—तक्केमि अय्यउत्तेण अभणिअ किञ्चि दिग्घं णिस्ससिअ महाराअस्स पादमूलेसु पडिअं ति ।

तर्कयाम्यार्यपुत्रेणाभणित्वा किञ्चिद् दीर्घं निःश्वस्य महाराजस्य पादमूलयोः पतितमिति ।

मात्यप्रकृतिजनसमक्षम् उपाध्यायाः [उपेत्य एभ्योऽधीयत इति विग्रहः] सकलशास्त्रपारदृश्वानः वसिष्ठादयः, अमात्याः सुमन्त्राद्यो मन्त्रिणः, प्रकृतिजनाः प्रजाजनाः, एतेषाम्, समक्षम् प्रत्यक्षम्, **कोसलराज्यम्** कोसलाख्यं राज्यम्, **एकप्रकारसंक्षिप्तम्** एकप्रकारेण प्रकारान्तरेण, संक्षिप्तम् एकत्र संहृतम् [अयं भावः—राज्याभिषेकदर्शनार्थं कोसलदेशवासिनस्तथा बाहुल्येनोपस्थिता आसन्, यथा समग्रो देश एकत्र संहृत इव लक्ष्यते स्मेति], **कृत्वा, बाल्याभ्यस्तम्** बाल्ये शैशवे, अभ्यस्तम् पुनःपुनरारोहणेन परिचितम्, **अङ्कम्** उत्सङ्गम्, **आरोप्य**, मामिति शेषः, **मातृगोत्रम्** मातृनाम ['गोत्रं च नाम्नि च' इत्यमरः], **स्निग्धम्** स्नेहपूर्वम्, **आभाष्य** सङ्कीर्त्य हे कौसल्यामात इत्येवं मातृनामपुरस्कारेणाकार्येत्यर्थः । **पुत्र ! राम ! राज्यम्, प्रतिगृह्यताम्** स्वीक्रियताम्, **इत्युक्तः** इत्यादिष्टः, अस्मीत्यन्वयः ।

मैथिलीति—प्रत्युत्तरे मया किं भणितं भवेदित्यत्र किं तवानुमानमिति भावः । **तर्कयामीति**—पित्राज्ञाया निर्विचारं पालनीयतैव किञ्चिदभणने हेतुः । राज्यव्यग्रतायां पितृचरणशुश्रूषणानन्दलाभानवसरजन्यदुःखसंभावनैव दीर्घनिःश्वासे हेतुः । एवंविधे पितृचरणशुश्रूषावैमुख्योत्पादके राज्यभारे मा मां नियुङ्क्था इति स्वपितरं प्रति प्रार्थना च पादपतनेन सूचिता ।

सीता—उस समय आर्यपुत्र ने क्या उत्तर दिया ?

राम—मैथिली ! तुम्हीं बताओ । तुम क्या अनुमान करती हो ?

सीता—मैं तो यही अनुमान करती हूँ कि उस समय आर्यपुत्र कुछ न बोल, लम्बी साँस ले, महाराज के चरणों पर लुढ़क पड़े होंगे !

रामः—सुष्ठु तर्कितम् । अल्पं तुल्यशीलानि द्वन्द्वानि सृज्यन्ते । तत्र हि पादयोरस्मि पतितः ।

समं बाष्पेण पतता तस्योपरि ममाप्यधः ।
पितुर्मे क्लेदितौ पादौ ममापि क्लेदितं शिरः ॥६॥

सुष्ठु इति—यथा त्वया तर्कितं तथैव मयाचरितमिति भावः । स्वाचरणस्य सीतातर्कानुसारित्वेन तस्याः स्वसमानशीलतां विज्ञाय प्रसीदन् रामः स्तौति—**अल्पमिति** । **तुल्यशीलानि** समानस्वभावानि, **द्वन्द्वानि** दम्पतिमिथुनानि, **अल्पम्** न्यूनं यथा स्यात् तथा, **सृज्यन्ते** उत्पाद्यन्ते, ब्रह्मणेति शेषः । दम्पत्योरैकमत्यमत्यल्पमुपलभ्यते, तत् समानस्वभावावावां यत् सत्यं धन्यौ स्व इति भावः । **तत्रेति—तत्र** पित्रा राज्यं प्रतिग्रहीतुमादेशावसरे, राज्यभारादात्मानं मोचयितुम्, **पितुः**, **पादमूलयोः** चरणयोः, **पतितोऽस्मि** प्रणतोऽभूवमिति भावः ।

पादपतनावसरे किं जातमित्याकाङ्क्षायामाह—"**सममि**"ति । **उपरि** ममोपरि, **तस्य** पितुः दशरथस्येति यावत्, **अधः** नीचैः पितृपादयोरुपरीत्यर्थः, **ममापि** मम रामस्य च [तस्य ममेति च षष्ठ्यौ बाष्पसम्बन्धे], **समम्** युगपत्, **पतता** गलता, **बाष्पेण** अश्रुणा, क्रमशः पुत्रवात्सल्यजेन पितृभक्तिजेन चेति शेषः । **मम** रामस्य, **शिरः** उत्तमाङ्गम्, **क्लेदितम्** सिक्तम्, **मे** मम, **पितुः** जनकस्य महाराजदशरथस्य, **पादौ अपि** चरणौ च, **क्लेदितौ** मदस्रैः पितुश्चरणौ क्लेदितौ, पितुरस्रैश्च मम शिरः क्लिन्नमिति भावः ।

अत्र पूर्वार्धस्योत्तरार्धेन सह व्युत्क्रमेणान्वयोऽतो न यथासंख्यम् । यदि तु 'समं बाष्पेण पतता ममाधस्तस्य चोपरि' इति पूर्वार्धपाठः क्रियते तदा यथासंख्यमन्वयेन भवत्येव तत् । अन्योऽन्योपकरणादन्योन्यालङ्कृतिः । औपाधिकभेदमादाय क्लेदनक्रियासमुच्चयोऽपि । दशरथनिष्ठो रामविषयः, रामनिष्ठो दशरथविषयश्च रतिभावः प्राधान्येन व्यङ्ग्यः । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥६॥

राम—ठीक अनुमान किया । एक-जैसे स्वभाव वाले दम्पती विरले ही होते हैं । सचमुच, वहाँ मैं महाराज के चरणों पर लुढ़क पड़ा ।

—(उस समय) हम दोनों के, उनके (आँसू तो) ऊपर—मेरे सिर पर; और मेरे (आँसू) नीचे—उनके चरणों पर, एक साथ आँसू बह पड़ने से मेरा सिर भीग गया और उनके चरण धुल गये ॥६॥

सीता—तदो तदो। ततस्ततः।

रामः—ततोऽप्रतिगृह्यमाणेष्वनुनयेषु आसन्नजरादोषैः स्वैः प्राणैरस्मि शापितः।

सीता—तदो तदो। ततस्ततः।

रामः—ततस्तदानीम्,

शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटेऽभिषेके
छत्रे स्वयं नृपतिना रुदता गृहीते।
सम्भ्रान्तया किमपि मन्थरया च कर्णे
राज्ञः शनैरभिहितं च न चास्मि राजा ॥७॥

ततस्तत इति—तदनन्तरं किं वृत्तमिति भावः। **तत** इति—अहं राज्यमङ्गीकुर्यामित्येतदर्थं पित्रा क्रियमाणेषु **अनुनयेषु** सान्त्वनेषु, **अप्रतिगृह्यमाणेषु** मयाऽस्वीक्रियमाणेषु सत्सु, **आसन्नजरादोषैः** आसन्ना प्राप्ता या जरा वार्धक्यम्, तस्या दोषैः तज्जनितैः कार्याऽक्षमत्वादिभिर्दोषैः, हेतुभिः, **स्वैः, प्राणैः** जीवितैः, **शापितोऽस्मि**। यदि तव मम जीवितमिष्टं तर्हि मया दीयमानं राज्यं प्रतिगृह्णीष्वेत्येवमुक्त इति भावः। **ततस्तदानीमिति**—तदानीमिति वक्ष्यमाणश्लोकान्वयि।

"शत्रुघ्ने"ति—**शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटे** शत्रुघ्नलक्ष्मणाभ्यां गृहीतः धारितः, घटः तीर्थजलपूर्णाभिषेककलशः, यत्र तादृशे, **अभिषेके** आभिषेककर्मणि प्रक्रान्ते, **छत्रे** श्वेतातपत्रे, **रुदता** आनन्देनाश्रूणि मुञ्चता, **नृपतिना** राज्ञा दशरथेन, **स्वयम्** आत्मनैव, **गृहीते** धारिते सति,

सीता—तब फिर ?

राम—उसके पश्चात् जब मैं महाराज की (राज्य ग्रहण करने की) अनुनय-विनय को स्वीकार करने में आगा-पीछा करने लगा तब उन्होंने मुझे अपने जरा-जीर्ण प्राणों की शपथ दी।

सीता—तब फिर ?

राम—तब, उस समय,

—शत्रुघ्न और लक्ष्मण ने तीर्थजल के घड़े को थामा, महाराज ने (वात्सल्यजनित) आँसू बहाते हुए स्वयं छत्र सँभाला और इस प्रकार अभिषेक होना आरम्भ हुआ ही था कि इतने में हाँपती हुई मन्थरा ने आ महाराज के कान में कुछ फूँक दिया और बस मैं राजा बनने से रह गया ॥७॥

सीता—पिअं मे । महाराओ एव्व महाराओ, अय्यउत्तो एव्व अय्यउत्तो ।

प्रियं मे । महाराज एव महाराजः, आर्यपुत्र एवार्यपुत्रः ।

रामः—मैथिलि ! किमर्थं विमुक्तालङ्कारासि ।

सीता—ण खु दाव आवज्झामि । न खलु तावदाबध्नामि ।

रामः—न खलु । प्रत्यग्रावतारितैर्भूषणैर्भवितव्यम् । तथाहि—

कर्णौ त्वरापहृतभूषणभुग्नपाशौ
संस्रंसिताभरणगौरतलौ च हस्तौ ।

सम्भ्रान्तया त्वरितमुपस्थितया, **मन्थरया** मन्थरानाम्न्या कैकेयीदास्या, **राज्ञः कर्णे, शनैः** मन्दमन्यैरश्रूयमाणम्, **किमपि, अभिहितम्** उक्तं च । **अहम्, राजा, नास्मि च** न भवामि च, मम राज्याभिषेक उपक्रान्त एव निवृत्त इति भावः । अभिधानाभिषेकनिवृत्त्योर्यौगपद्यात् समुच्चयालङ्कृतिः । 'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः' इति वसन्ततिलका छन्दः ॥७॥

प्रियमित्यादि—**महाराज एव** नतु महाराजत्वादपेतः । **आर्यपुत्रः** रामः, **आर्यपुत्र एव** नतु महाराजपदं रूढः । सीतामलङ्कारशून्यां निरीक्ष्य प्रश्नयति—**मैथिलीति** । **विमुक्तालङ्कारा** विमुक्ताः शरीराद् अवतारिताः, अलङ्काराः, यया तादृशी । **न खल्विति**—**आबध्नामि** धारयामि । धारितस्यैव विमोचनं भवति, न च मयालङ्कारा धृताः, कुतस्त्यस्तेषां विमोक इति भावः । **न खल्विति**—**न खलु** 'न अवबध्नामि' इति भवदुक्तं न सङ्गतमिति भावः । **प्रत्यग्रावतारितैः** प्रत्यग्रम् अवतारितैः तत्कालविमुक्तैरित्यर्थः । तथा प्रतीयते यथा भूषणानां विमुक्तानां नातिचिरं जातम्, अतो नावबध्नामीति भवदुत्तरमसंलग्नमिति भावः । भूषणानां तत्कालविमुक्तत्वं हेतुभिः समर्थयते—**तथाहीति** ।

"**कर्णावि**"ति—**कर्णौ** श्रोत्रे, **त्वरापहृतभूषणभुग्नपाशौ** त्वरया संभ्रमेण, अपहृतम् अपनीतम् भूषणम् अलङ्कारः, याभ्यां तादृशौ, अतएव

सीता—अच्छा हुआ, जो महाराज ही महाराज के पद पर बने रह गये और आर्यपुत्र वही आर्यपुत्र बने रह पाये ।

राम—मैथिली ! गहने क्यों उतार डाले ?

सीता—नहीं, पहना नहीं करती ।

राम—नहीं तो । गहने अभी के उतारे जान पड़ते हैं । जैसे कि—

—जल्दी में (कर्णफूल आदि) आभूषण उतारने से कानों के छेद

एतानि चाभरणभारनतानि गात्रे
स्थानानि नैव समतामुपयान्ति तावत् ॥८॥

सीता—पारेदि अय्यउत्तो अलिअं पि सच्चं विअ मन्तेदुं ।
पारयत्यार्यपुत्रोऽलीकमपि सत्यमिव मन्त्रयितुम् ।

भुग्नः वक्रतां गतः, पाशः भूषणधारणस्थानं यत्र तथाभूतौ, स्त इति शेषः [द्वयोर्बहुव्रीह्योः कर्मधारयः, त्वरयाऽपहृतेन भूषणेन भुग्नपाशाविति वा], कर्णयोर्भुग्नपाशत्वमद्याप्यनिवर्तमानं भूषणावतारणस्य रभसकृतत्वमचिरनिर्वृत्तत्वं च ज्ञापयतीति भावः । किं **च, हस्तौ** करौ, **संस्रंसिताभरणगौरतलौ** संस्रंसितानि सम्यक् प्रसह्य, स्रंसितानि अवतारितानि आभरणानि भूषणानि, याभ्यां तादृशौ अत एव गौरं श्वेतवर्णम्, तलम्, ययोस्तादृशौ, भवत इति शेषः [अत्रापि पूर्ववत् समासप्रकारः] । हस्तयोराभरणावतारणजन्यं गौरतलत्वमिदानीमप्यनिवर्तमानमाभरणावतारणस्य नवजातत्वमनुमापयतीति भावः, **गात्रे** तव देहे, **आभरणभारनतानि** आभरणानाम् भारेण, नतानि निम्नतां गतानि, **एतानि** प्रत्यक्षं दृश्यमानानि, **स्थानानि च तावद्** अद्यापीति भावः, **समताम्** समतलताम्, भारजनितनिम्नत्वपरिहारेण स्वाभाविकीं स्थितिमिति यावत्, **नैव, उपयान्ति** प्राप्नुवन्ति । शरीरे भूषणभारावनतप्रदेशा भूषणाभावेऽपि तथैवानुवर्तन्ते । तदेतदपि भूषणापगमस्य सद्योनिर्वृत्तत्वं गमयतीति हृदयम् । प्रस्तुतं भूषणावतारणस्याचिरजातत्वरूपं कारणमवर्णयित्वा, तत्कार्यस्य भुग्नपाशत्वानुवृत्तिरूपस्याप्रस्तुतस्य वर्णनाद् अप्रस्तुतप्रशंसा । अथवा पूर्वोक्तस्य भूषणानां प्रत्यग्रावतारितत्वस्य कारणस्य तथाहीत्युपक्रम्य कार्योक्त्या समर्थनात् कार्येण कारणसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासः । भूषणाद्यपगमे कर्णादीनां भुग्नपाशतादिः स्वभाव एवेति स्वभावोक्तिरपि । वसन्ततिलका छन्दः । लक्षणमुक्तं प्राक् ॥८॥

(भूषणस्थान) अब भी कुछ नीचे की ओर झुके हुए हैं, (कड़े आदि) आभरण उतारने में होने वाले दबाव के कारण हथेलियाँ (कलाइयाँ) अब भी (कुछ लाली लिये हुए) गोरी दीख पड़ती हैं, और आभरणों के भार से लचके हुए तुम्हारे शरीर के अवयव अभी तक एक-समान (स्वाभाविक स्थिति में) नहीं हो पाये हैं ॥८॥

सीता—आर्यपुत्र चाहें असत्य को भी सत्य-सा बता सकते हैं ।

रामः—तेन हि अलङ्क्रियताम् । अहमादर्शं धारयिष्ये । [तथा कृत्वा निर्वर्ण्य] **तिष्ठ ।**

आदर्शे वल्कलानीव किमेते सूर्यरश्मयः ।
हसितेन परिज्ञातं क्रीडेयं नियमस्पृहा ॥९॥

अवदातिके ! किमेतत् ।

अवदातिका—भट्टा ! किण्णुहु सोहदि ण सोहदि त्ति कोदूहलेण आबज्झा ।

पारयतीति—आर्यपुत्रः भवानिति यावत्, **अलीकमपि** सर्वथा मिथ्याभूतमप्यर्थम्, **सत्यमिव** सत्यवदित्यर्थः, **मन्त्रयितुम्** कथयितुम् साधयितुमिति भावः, **पारयति** शक्नोति । किं पुनर्वस्तुतः सत्यम् । **तेने**ति—**अलङ्क्रियताम्** स्वशरीरमलङ्कारैर्भूष्यताम् । **तथा कृत्वा** दर्पणं धारयित्वा **तिष्ठ** आदर्शाभिमुखं स्थिता भवेत्यर्थः ।

"आदर्शे" इति—**आदर्शे** दर्पणे, **वल्कलानीव** वल्कलवत् प्रतीयमानाः, **एते** पुरःप्रत्यक्षीक्रियमाणाः, **सूर्यरश्मयः** सूर्यकिरणाः **किम् ? हसितेन** तव हासेन, **परिज्ञातम्** परितो ज्ञातम्, निश्चितम्, नेमे सूर्यरश्मयः किन्तु वल्कलान्येवेति भावः । **इयम्** वल्कलपरिधानरूपा, **क्रीडा** मनोविनोदो वा अस्ति ? उत, **नियमस्पृहा** नियमस्य तपश्चरणस्य, स्पृहा इच्छा वा अस्ति ? । मनोविनोदार्थं वा वल्कलधारणं त्वया कृतम् ? तपश्चरणेच्छया वा तथानुष्ठितमिति भावः । अनुष्टुप् छन्दः ॥९॥

सीतायां मौनमास्थितायामवदातिकां पृच्छति—**अवदातिके** इति । अवदातिकोत्तरति—**भर्त**रिति । मया धार्यमाणानि शोभन्ते न वा शोभन्त इति जिज्ञासया धृतानि नतु तपश्चरणेच्छयेति भावः ।

राम—अच्छा तो तुम गहने पहनो । मैं दर्पण पकड़ूँगा । [दर्पण उठाकर ग़ौर से देखकर] **ठहरो ।**

—दर्पण में ये कुछ वल्कल-जैसे दिखाई पड़ रहे हैं । कहीं ये सूरज की किरणें तो नहीं ? अच्छा, अब मैं तुम्हारे हँसने (हास्य-किरणों) से सारा भेद जान गया । सचमुच बताओ, तपस्वियों के योग्य ये वल्कल तुमने केवल हँसी-खेल में पहने हैं अथवा मन में साधना करने की ही ठानी है ? ॥९॥

अवदातिका ! यह बात क्या है ?

अवदातिका—भर्ता जी ! सजते भी हैं या नहीं, यह देखने के लिए यों ही खेल में पहने हैं ।

भर्तः! किन्नु खलु शोभते न शोभते इति कौतूहलेनावद्धास्मि।

रामः—मैथिलि! किमिदम्। इक्ष्वाकूणां वृद्धालङ्कारस्त्वया धार्यते। अस्त्यस्माकं प्रीतिः। आनय।

सीता—माखु माखु अय्यउत्तो अमङ्गलं भणादु।

माखलु माखल्वार्यपुत्रोऽमङ्गलं भणतु।

रामः—मैथिलि! किमर्थं वारयसि।

सीता—उज्झिदाहिसेअस्स अय्यउत्तस्स अमङ्गलं विअ मे पडिहादि।

उज्झिताभिषेकस्यार्यपुत्रस्यामङ्गलमिव मे प्रतिभाति।

मैथिलीति—**किमिदम्** इदं त्वया किं क्रियत इत्यर्थः। **इक्ष्वाकूणाम्** इक्ष्वाकुकुलोत्पन्नानां राज्ञाम्, **वृद्धालङ्कारः** वृद्धे वयसि धारणीयः, अलङ्कारः वल्कलरूपं भूषणम्, **त्वया, धार्यते**। **अस्माकम्** तवेव ममापीत्यर्थः ['अस्मदो द्वयोश्च' इति बहुवचनम्], **प्रीतिः** वल्कलधारणे कौतुकम्, **अस्ति** उत्पद्यते। सीता निवृत्तराज्याभिषेकस्य भर्तुर्वल्कलधारणेच्छया भविष्यदनिष्टमाशङ्कमानाऽऽह—**मा खल्विति**। **अमङ्गलम्** वल्कलानयनाज्ञारूपम्। **उज्झितेति**—**उज्झिताभिषेकस्य** उज्झितः प्रसह्य त्याजितः [उज्झतेर्ण्यन्तात् क्तः], अभिषेकः राज्येऽभिषेचनम् येन [प्रयोज्यकर्तरि तृतीया], तादृशस्य, **अमङ्गलमिव** अनिष्टमिव, **मे** मम [सम्बन्धसामान्ये षष्ठी], **प्रतिभाति** प्रतीयत इत्यर्थः। राज्याभिषेकाद् वञ्चितस्य भवतो वनवासिजनोचितमिदं वल्कलधारणकौतुकम् 'भ्रष्टराज्येन भवता किं वने वस्तव्यमापतिष्यति' इत्यमङ्गलाशङ्कां जनयति इति भावः।

राम—मैथिली! यह बात क्या है? तुम इक्ष्वाकुओं के बुढ़ापे का अलंकार पहने हुई हो? अच्छा, मुझे भी इन्हें पहनने का कौतुक हो रहा है। लाओ (मैं भी पहन देखूँ)।

सीता—नहीं, नहीं। आर्यपुत्र ऐसा अमङ्गल वचन मुँह से मत निकालें।

राम—मैथिली! किसलिए रोक रही हो?

सीता—अभी अभी आर्यपुत्र का अभिषेक होते होते रह गया। (उसके बाद ही अब फिर वल्कल पहनने की इच्छा प्रकट करने लगे!) इससे मुझे अमंगल-सा दृष्टिगोचर हो रहा है।

रामः—

मा स्वयं मन्युमुत्पाद्य परिहासे विशेषतः ।
शरीरार्धेन मे पूर्वमाबद्धा हि यदा त्वया ॥१०॥

[नेपथ्ये]

हा हा महाराजः ।

स्वस्य वल्कलानयनादेशेन स्वविषयेऽमङ्गलमाशङ्कमानां सीतां रामः सान्त्वयति—"**मा स्वयम्**" इति । **परिहासे** परिहासनिमित्तं वल्कले याच्यमाने, **स्वयम्** आत्मनैव, **मन्युम्** खेदम् खेदजनकामङ्गलसंभावनाम्, **मा उत्पाद्य** न कुरु [अलंखल्वोर्योगे विधीयमानः क्त्वाप्रत्ययो माशब्दयोगेऽपाणिनीयः] । **यदा, मे** मम, **शरीरार्धेन** मत्पत्नीत्वेन मद्देहार्धभूतया, **त्वया, पूर्वम्** मत्तः पूर्वम्, **आबद्धाः** धारिताः वल्कला इति शेषः ['वल्को वल्कलमस्त्रियाम्' इत्यमरः] । तदा **हि, विशेषतः** विशेषेण, सुतरामित्यर्थः, मन्युर्नोत्पादनीय इति शेषः । प्रथमतः परिहासार्थेषु वचनेषु स्वयमेव खेदो न कर्तव्यो भवति, मया धारणार्थं वल्कलेषु याच्यमानेषु तु सुतरां न कर्तव्यः । तथा हि—पत्नी खलु पुरुषस्य देहार्धम् 'अर्धो ह वा एष आत्मनो यत् पत्नी' इति श्रुतेः । त्वं पूर्वं शरीरस्यैकमर्धं वल्कलधारणं कारयित्वेदानीं द्वितीयार्धस्य वल्कलधारणममङ्गलाशंसया शोचसि, तदेतदनुचितम् । यदि देहस्यैकस्मिन्नर्धे वल्कलस्य धारणमशोचनीयं भवति तर्हि तद् द्वितीयस्मिन्नर्धे धार्यमाणं कथं शोचनीयं भवितुमर्हति । यदि वस्तुतो वल्कलधारणं ममामङ्गलं सूचयति, तर्हि तदमङ्गलं मद्देहार्धभूतया त्वयैव मदपेक्षया पूर्वं वल्कलधारणं कृतवत्या सूचितमितीदानीं खेदोऽनवसरग्रस्त इति भावः । खेदाकरणस्य हेतुना समर्थनात् काव्यलिङ्गम् । अनुष्टुप् छन्दः ॥१०॥

अथ सीताशङ्कितममङ्गलमवतारयितुमुपक्रमते—**नेपथ्य** इति । श्रूयत इति शेषः । किं श्रूयत इत्यत आह—**हा हे**ति । **हे**ति शोकसूचको निपातः ।

राम—अपने आप अमंगल-शंका मत करो, विशेषकर हँसी-दिल्लगी के प्रसंग में। क्योंकि जब मेरी अर्धाङ्गिनी तुम्हींने पहले भी पहन ही लिये तो समझ लो, मैंने भी पहन लिये ॥१०॥

[नेपथ्य में]

हाय ! हाय !! महाराज !!!

सीता—अय्यउत्त ! किं एदं । आर्यपुत्र ! किमेतत् ।

रामः—[आकर्ण्य]

नारीणां पुरुषाणां च निर्मर्यादो यदा ध्वनिः ।
सुव्यक्तं प्रभवामीति मूले दैवेन ताडितम् ॥११॥
तूर्णं ज्ञायतां शब्दः ।

[प्रविश्य]

काञ्चुकीयः—परित्रायतां परित्रायतां कुमारः ।

रामः—आर्य ! कः परित्रातव्यः ।

महाराज इत्यस्य कष्टतरां दशामापन्न इति शेषः । अतएव 'अभितः परितः—' इत्यादिना हाशब्दयोगे द्वितीया न ।

"**नारीणाम्**" इति—**यदा** यतः, यस्मात् कारणात्, **नारीणाम्** स्त्रीणाम्, **पुरुषाणां च, निर्मर्यादः** मर्यादाया निष्क्रान्तः अत्युच्च इति यावत् ['निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या' इति समासः], **ध्वनिः** आक्रन्दितमिति भावः, उत्तिष्ठतीति शेषः, ततः [यत्तदोर्नित्यसंबन्धात् तत इत्यध्याहियते], **सुव्यक्तम्** सुस्पष्टम्, अस्ति, यत्, **प्रभवामि** अहं सर्वं कर्तुं समर्थोऽस्मि, **इति** इत्यभिमानाद् हेतोः, **दैवेन** नियत्या, **मूले** सर्वप्रधाने महाराजदशरथ एव, नान्यत्र, **ताडितम्** आघातः कृतः । गगनभेदिना प्रजानामाक्रन्दितेनानुमीयते यन्महाराजस्यैव किञ्चिदनिष्टमुत्पादितं दुरभिमानेन दैवेनेति भावः । साधनेन साध्यानुमानादनुमानालङ्कृतिः ॥११॥

तूर्णमिति—तूर्णम् शीघ्रम् । **शब्दः** शब्दस्य कारणमित्यर्थः ।

सीता—आर्यपुत्र ! यह क्या हो गया !

राम—[सुनकर]

—जो यह स्त्रियों और पुरुषों का बहुत ऊँचा भयंकर कोलाहल सुनाई पड़ रहा है तो निश्चित ही 'मैं सर्वसामर्थ्यशाली हूँ' इस अहङ्कार से दैव ने जड़ पर कुल्हाड़ा चला दिया ! ॥११॥

शीघ्र कोलाहल का कारण मालूम करना चाहिए ।

[कंचुकी का प्रवेश]

कंचुकी—कुमार ! रक्षा करो, रक्षा करो ।

राम—आर्य ! किसकी रक्षा करनी है ?

काञ्चुकीयः—महाराजः ।

रामः—महाराज इति । आर्य ! ननु वक्तव्यम् एकशरीरसंक्षिप्ता पृथिवी रक्षितव्येति । अथ कुत उत्पन्नोऽयं दोषः ।

काञ्चुकीयः—स्वजनात् ।

रामः—स्वजनादिति । हन्त नास्ति प्रतीकारः ।

शरीरेऽरिः प्रहरति हृदये स्वजनस्तथा ।
कस्य स्वजनशब्दो मे लज्जामुत्पादयिष्यति ॥१२॥

महाराज इति—महाराजः परित्रातव्य इति चेत्तेऽभिप्राय इति भावः । **नन्विति**—तर्हि वस्तुतो महाराजः परित्रातव्य इत्यनुक्त्वा, **एकशरीर-संक्षिप्ता** एकस्मिन् केवले, शरीरे महाराजशरीरे, संक्षिप्ता तदाश्रिततया तस्मिन् स्वस्वरूपं संक्षिप्य संहृत्य स्थितेव, **पृथिवी** इयमतिविस्तृता भूमिः, **रक्षितव्या** परित्रातव्या, इति वक्तव्यम्, **ननु** निश्चयेन । महाराजाभावे महाराजाश्रिता पृथिवी निराश्रिता स्यात्, तथा च महाराजो रक्षणीय इत्यनुक्त्वा महाराजाश्रिता पृथिवी रक्षणीयेति वक्तव्यमिति भावः । महाराजस्यानिष्टोत्पत्तिहेतुं जिज्ञासते—**अथेति**। **दोषः** महाराजानिष्टोत्पत्तिरूपः । **स्वजनादिति**—उत्पन्न इति शेषः । **स्वजनादितीति**—स्वजनाद् उत्पन्न इति चेदुच्यते, तर्हि, **हन्तेति** खेदमत्र सूचयति । **प्रतीकारः** उपायः, स्वजनादुत्पन्नस्यानिष्टस्येति शेषः । **नास्ति** न विद्यते । अन्यश्चेत् कश्चिदनिष्टमुत्पादयति, शक्यः स दण्डेन शमयितुम् । स्वजनस्तु न भवति तादृश इति तत्कृतोऽपकारोऽप्रतिसमाधेय एव ।

स्वजनोत्पादितस्यापकारस्याप्रतिकार्यत्वेऽसह्यत्वे वा हेतुं निर्दिशति—"**शरीरेऽरि**"रिति—**अरिः** शत्रुः, **शरीरे** देहे, **प्रहरति** प्रहारं करोति । **स्वजनः** आत्मीयजनस्तु, **हृदये** मनसि, **तथा** तथाकरोति प्रहरतीत्यर्थः ।

कंचुकी—महाराज की ।

राम—महाराज की ? आर्य ! तो यह कहिए न कि एक शरीर में संक्षिप्त-रूप से स्थित समस्त पृथिवी की ही रक्षा करो । अच्छा, यह विपत्ति कहाँ से आ पड़ी ?

कंचुकी—स्व-जन ही से ।

राम—क्या स्व-जन ही से ? हा शोक ! तब तो इसका निवारण (रोकथाम) नहीं हो सकता ।

—बाहरी शत्रु तो केवल शरीर ही पर चोट कर पाता है (जिसे सहारा भी जा सकता है), किन्तु स्व-जन ठीक मर्म हृदय पर चोट कर डालता है (जिसका सहारना अत्यन्त दुष्कर हो जाता है)। न जाने, (पिता जी

काञ्चुकीयः—तत्रभवत्याः कैकेय्याः ।
रामः—किमम्बायाः । तेन हि उदर्केण गुणेनात्र भवितव्यम् ।
काञ्चुकीयः—कथमिव ।

देहपीडा कथञ्चित् सोढुं शक्या, हृदयाघातस्तु सर्वथा दुःसह एवेति तम-सहमानो महाराजो विपन्न इति युज्यत इति भावः । अथवा रसासृगादिधातु-विनिर्मिते स्थूले देहे प्रहारक्षतानि व्रणविरोपणाद्योषधिभिः शक्यचिकित्सि-तानि । मनस्त्वत्यन्तमणु । तत्र क्रियमाणं क्षतं तु दुश्चिकित्स्यं भवतीति विपन्नो महाराज इति भावः । आत्मीयस्याप्यनिष्टोत्पादनेन लज्जाहेतुः कोऽयं स्वजनो भवेदिति जिज्ञासयाह—**कस्ये**ति । **कस्य** एवमनिष्टं कृतवतः कस्य कृते प्रयुज्यमान इत्यर्थः, **अयम्**, **स्वजनशब्दः** स्वजन इति शब्दः, **मे** मम, **लज्जाम्** त्रपाम्, **उत्पादयिष्यति** जनयिष्यति । कः स स्वजनो येनेद-मनिष्टमुत्पादितम्, किञ्चानिष्टोत्पादकस्य तस्य कृते स्वजनशब्दोऽप्युच्चार्यमाणो लज्जामुत्पादयेदिति भावः । स्वजनोत्पादितानिष्टस्यासह्यत्वमप्रतिकार्यत्वं वा प्रस्तुतम्, तत्कारणभूतो हृदयप्रहारस्तु वर्णित इत्यप्रस्तुतप्रशंसा ॥१२॥

कस्येत्यादिरामप्रश्नं काञ्चुकीय उत्तरति—**तत्रभवत्या** इति । **तत्रभवत्याः** पूज्याया इत्यर्थः । **कैकेय्या** इति षष्ठी । कैकेय्याः कृते प्रयुज्यमानः स्वजन-शब्द इत्यर्थः । पूज्या कैकेय्येव स स्वजनो येन महाराजस्यानिष्टमुत्पादितमिति भावः । **किमम्बाया** इति—अम्बा माता चेत् स स्वजनः, तर्हि, **अत्र** महा-राजविपत्तौ, **उदर्केण** परिणामेन, **गुणेन** गुणवता, **भवितव्यम्** । नहि मे विदुषी मध्यमा माता परिणाममविचार्य महाराजविपत्तेर्हेतुर्भवितुमर्हति । अवश्यमस्य केनचिद् बहुफलेन परिणामेन भवितव्यम् इति । दोषस्यापि गुण-त्वेन ग्रहणाद् लेशालङ्कारः । 'लेशः स्याद् दोषगुणयोर्गुणदोषत्वकल्पनम्' इति तल्लक्षणम् । रामस्य धीरोदात्तत्वमत्र साधु कविना व्यञ्जितम् । अम्बोत्पादितस्यानिष्टस्य कथं सुखोदर्कतेति जिज्ञासते—**कथमिवे**ति ।

की विपत्ति के कारणभूत, हमारे परिवार-मध्ये) किसका 'स्व-जन' यह शब्द (किस स्व-जन का गर्हित करतब) मुझे लज्जा पैदा करायगा? ॥१२॥
कंचुकी—महारानी कैकेयी का ।
राम—क्या कहा? मेरी माता जी का? तब तो अवश्य ही इसका परिणाम में बहुत अच्छा फल होगा ।
कंचुकी—सो कैसे?

रामः—श्रूयताम्,

यस्याः शक्रसमो भर्ता मया पुत्रवती च या ।
फले कस्मिन् स्पृहा तस्या येनाकार्यं करिष्यति ॥१३॥

काञ्चुकीयः—कुमार ! अलमुपहतासु स्त्रीबुद्धिषु स्वमार्जवमुपनिक्षेप्तुम्। तस्या एव खलु वचनाद् भवदभिषेको निवृत्तः ।

"यस्या" इति—यस्याः तत्रभवत्या मध्यमाया मातुः, भर्ता पतिः, शक्रसमः शक्रेण इन्द्रेण, समः तुल्यः, अथवा शक्रेण समाना मा लक्ष्मीर्यस्य स शक्रतुल्यलक्ष्मीक इत्यर्थः, किं च, या, मया रामेण [प्रकृत्यादित्वात् तृतीया], पुत्रवती पुत्रयुक्ता, सर्वदा तदाज्ञापालनतत्परोऽहं यस्याः पुत्र इति भावः, तस्याः, कस्मिन् आवाभ्यां भर्तृपुत्राभ्यामप्राप्ये, फले स्पृहणीयवस्तुनि, स्पृहा इच्छा भवेत्, येन यदुद्देशेन, सा, अकार्यम् स्वभर्तुर्विपत्प्रापणरूपं दुष्टं कर्म, करिष्यति । नास्ति किञ्चिद् जगत्येतादृशं वस्तु यन्मन्मातुर्भर्ता शक्रतुल्यलक्ष्मीको महाराजो दशरथः, विषमेष्वपि तदाज्ञापालनतत्परोऽहं तत्पुत्रश्च तस्याः कृत आनेतुं न शक्नुवः । तथाच स्वभर्तृपुत्रवशात् सर्वदुर्लभवस्त्वास्पदीभूतायास्तस्याः स्वभर्तृविपत्त्युत्पादने न कश्चन स्वार्थः संभवति । अहं तु मन्ये परोपकृतिरेव मातुस्तथा करणे बीजमिति भावः । कैकेय्या भर्तृव्यसनोत्पादो न स्वार्थमूलक इति प्रस्तुते तद्धेतोर्वर्णनादप्रस्तुतप्रशंसा । अर्थापत्त्या परार्थमूलक एवेति काव्यार्थापत्तिश्च । अनुष्टुप् ॥१३॥

कुमारेति—उपहतासु स्वभावतः कौटिल्यादिदोषदुष्टासु, स्त्रीबुद्धिषु स्त्रीणां हृदयेषु, स्वम् स्वकीयम्, आर्जवम् सारल्यम् निर्व्याजतामिति भावः, उपनिक्षेप्तुम् आरोपयितुम्, अलम् नारोपणीयमिति भावः । त्वं स्वयं

राम—सुनिए,

—जिसके पतिदेव इन्द्र के समान हों और जो मुझसे पुत्रवती कहाती हो। भला उसे किस फल की चाह हो सकती है, जिसके लिए कि वह (ऐसा) अकार्य करने को ठानेगी ? ॥१३॥

कंचुकी—राजकुमार ! स्वभाव ही से दूषित हुई स्त्री-बुद्धियों पर अपने सीधेपन का आरोपण मत करो। उसी के कहने से तो आपका अभिषेक भी होते होते रुक गया !

रामः—आर्य ! गुणाः खल्वत्र ।
काञ्चुकीयः—कथमिव ।
रामः—श्रूयताम्,

वनगमननिवृत्तिः पार्थिवस्यैव ताव-
न्मम पितृपरवत्ता बालभावः स एव ।
नवनृपतिविमर्शे नास्ति शङ्का प्रजाना-
मथच न परिभोगैर्वञ्चिता भ्रातरो मे ॥१४॥

निर्व्याजहृदय इति स्वमध्यमां मातरमपि निर्व्याजां पश्यसि । वस्तुतस्तु स्त्रियः स्वभावकुटिलाः, न तत्र मात्रयाप्यार्जवं विद्यत इति भावः । उपनिक्षेप्तुमलमिति निषेधार्थकालमो योगे तुमुन् प्रत्ययोऽपाणिनीयः । कैकेय्या अनार्जवं समर्थयितुमाह—**तस्या एवे**ति ।

आर्येति—**अत्र** ममाभिषेकनिवर्तने । **गुणाः** लाभाः ।

गुणान् दर्शयति—"**वनगमने**"ति । **तावत्** प्रथमम्, **पार्थिवस्यैव** महाराजस्यैव, **वनगमननिवृत्तिः** वनगमनाद्, निवर्तनम्, भवतीति शेषः । ममाभिषेकनिवृत्तौ महाराजो प्रजापालनाय राज्य एव तिष्ठेत्, न वनं गच्छेद् । स एष पितुर्विपिनवासक्लेशपरिहारलक्षणः प्रथमो गुणो ममाभिषेकनिवृत्ताविति भावः । **मम, पितृपरवत्ता** पित्रधीनता भवतीति शेषः । पितरि राज्ये विद्यमाने सर्वदा तदाज्ञानुष्ठानतत्परत्वं मम नापेयादिति द्वितीयो गुणः । पितरि वने प्रस्थिते तु मम सर्वदाभिलषणीयं तदाज्ञापालनतत्परत्वं विनश्येदिति भावः । **स एव**

राम—आर्य ! इसमें निश्चय ही बहुत-सी भलाइयाँ हैं ।
कंचुकी—सो कैसे ?
राम—सुनिए,

—इससे [सब से पहला लाभ जो हुआ, वह यह कि—] महाराज का वन को जाना रुक गया, [दूसरा यह कि—] (अपने ऊपर से एक प्रकार का उत्तरदायित्व का भार टल जाने से) मेरे लिए पिता जी की छत्रच्छाया में रहने का, और [तीसरे—] वही बचपन के आनन्द लूटने का सौभाग्य (सुयोग) बना रह गया, [चौथे—] प्रजावर्ग का, नया राजा भला होगा या बुरा, इस विचार की शंका से छुटकारा हो गया, और [पाँचवें—] मेरे (भरत आदि) भाई भी इच्छानुकूल राजसुखोपभोगों से वञ्चित नहीं हुए, उनके अधिकार पूर्ववत् सुरक्षित बने रह गये ॥१४॥

काञ्चुकीयः—अथ च तयानाहूतोपसृतया भरतोऽभिषिच्यतां राज्य इत्युक्तम् । अत्राप्यलोभः ।

प्राक्स्थितः, **बालभावः** बाल्यम् ,अनुवर्तेतेति शेषः । पितरि राज्यं पालयति तत्सन्निधौ मम स एव निश्चिन्ततापूर्ण आनन्दबहुलो बालभावोऽनुवर्तेतेति तृतीयो गुणः । मयि राज्येऽभिषिक्ते तु चिन्ताबहुलं राज्यचक्रं शिरस्यापतेदिति भावः । **नवनृपतिविमर्शे** नवस्य नूतनस्य, नृपतेः राज्ञः [कर्तरि षष्ठी], विमर्शे राज्यचिन्तने, नूतनराजकर्तृकराज्यसञ्चालनविषय इति भावः, **प्रजानाम्** प्रकृतीनाम्, **शङ्का** साधु प्रजां पालयिष्यति नवेति सन्देहः, **नास्ति** नोदयिष्यते । नवे नृपतौ राज्यारूढे प्रजाः प्रायः शङ्कन्ते यदयं प्रजापालनं न्यायेनान्यायेन वा करिष्यति । ममाभिषेकनिवृत्तौ तु महाराज एव महाराज इति नैतस्याः शङ्काया अवसर इति चतुर्थो गुणः । **अथ च** किञ्च, **मे** मम, **भ्रातरः** भरतादयः, **परिभोगैः** महाराजविद्यमानतायां सुलभैरैश्वर्यैः, **वञ्चिताः** रहिताः, **न** भवन्ति, इति शेषः । महाराज एव सिंहासनारूढे वयं सर्वेऽपि भ्रातरस्तुल्यमैश्वर्यभोगिनः स्मः इति पञ्चमो गुणः । मय्यभिषिक्ते त्वहमेव राजा भवेयम्, इति ममैव सर्वातिशायि ऐश्वर्यं स्यात्, मद्भ्रातरश्च ततो वञ्चिताः स्युरिति भावः ।

एकां रामाभिषेकनिवृत्तिमुत्पादयन्त्या कैकेय्या महाराजवनगमननिवृत्त्यादयोऽनेके गुणा उत्पादिता इति विशेषालङ्कारः । 'किञ्चिदारम्भतोऽशक्यवस्त्वन्तरकृतिश्च सः' इति तल्लक्षणम् । अनेकेषां गुणानां समुच्चयात् समुच्चयालङ्कृतिः स्पष्टैव । रामाभिषेकनिवृत्तिदोषेणान्येषां गुणोल्लासाद् उल्लासश्च 'एकस्य गुणदोषाभ्यामुल्लासोऽन्यस्य तौ यदि' इति तल्लक्षणं कुवलयानन्दे । मालिनी वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' इति । द्वितीयपादे एववकारस्य लघुत्वेन छन्दोभङ्गस्तु न शङ्क्यः, 'पादान्तस्थं विकल्पेन' इत्यभियुक्तोक्त्या तस्य गुरुत्वेन स्वीकारात् ॥१४॥

काञ्चुकीयः कैकेय्या अपरं दोषमुद्घाटयति—**अथ चेति** । **अनाहूतोपसृतया** [अनाहूता चासावुपसृतेति विग्रहः । 'पूर्वकालैक—' इत्यादिना समासः] आह्वानं विनैव महाराजान्तिकमुपेतयेति भावः । **अत्रापि** स्वयं महाराजान्तिकमुपेत्य भरताय राज्यवरणेऽपि, **अलोभः** लोभस्याभावः ?

कंचुकी—तिस पर भी उसने जो बिना बुलाये ही महाराज के पास पहुँच 'भरत को राज-तिलक कर दो' ऐसा कहा, क्या इसमें भी उसका लोभ नहीं है ?

रामः—आर्य ! भवान् खल्वस्मत्पक्षपातादेव नार्थमवेक्षते । कुतः,

शुल्के विपणितं राज्यं पुत्रार्थे यदि याच्यते ।
तस्या लोभोऽत्र नास्माकं भ्रातृराज्यापहारिणाम् ॥ १५ ॥

प्रश्नकाकुरियम् । भवतु कैकेय्यास्त्वदभिषेकनिवृत्तिः परार्थत्वाददोषः । परं हठाद् महाराजान्तिकमुपेत्य स्वौरसाय भरताय राज्यवरणमपि किं परार्थमूलं लोभशून्यम् ? कं वात्र गुणं पश्यसि ? लोभवशीभूतयैव तया त्वदभिषेकनिवृत्तिर्भरताभिषेकवरणं चानुष्ठितमिति भावः । धीरोदात्तो रामोऽत्रापि गुणमवेक्षमाण आह—**आर्ये**ति । **अस्मत्पक्षपातात्** अस्मासु स्नेहात् । **अर्थम्** वस्तुतत्त्वम् ।

किमत्र तत्त्वमित्यत आह—"**शुल्क**" इति । **शुल्के** शुल्कनिमित्तम् शुल्करूपेणेत्यर्थः [विवाहकाले कन्यायै देयं यद् वरादिष्यते तच्छुल्कमिहाभिप्रेतम्, तन्निमित्तम् । 'चर्मणि द्वीपिनं हन्ती'तिवत् सप्तमी], **पुत्रार्थे** स्वपुत्राय, **विपणितम्** विशिष्य देयत्वेन प्रतिज्ञातम्, **राज्यम्, यदि, याच्यते** प्रार्थ्यते, कैकेय्येति शेषः । **अत्र** स्वपुत्राय प्रतिज्ञातराज्ययाचने, **तस्याः** मन्मातुः कैकेय्याः, **लोभः** लोलुपत्वम्, भवद्भिरस्मत्पक्षपातिभिः प्रतीयते इति शेषः । **भ्रातृराज्यापहारिणाम्** भ्रातुः भरतस्य, राज्यम्, अपहरन्ति स्वायत्तीकुर्वन्तीति तच्छीलानाम्, **अस्माकम्** ममेत्यर्थः, **लोभः न** प्रतीयत इति शेषः । सोल्लुण्ठोक्तिरियम् । अयं भावः—कैकेय्या विवाहकाले महाराजदशरथेन कैकेयीपुत्राय राज्यदानं प्रतिज्ञातमासीत् । तथाचेदं राज्यं

राम—आर्य ! हमारी ओर विशेष झुकाव होने के कारण आप वास्तविकता को नहीं देखते । क्योंकि,

—विवाह-शुल्क (वरपक्ष वालों से कन्यापक्ष को लेने लायक स्त्रीधन) में देना कहा गया राज्य यदि पुत्र के लिए माँगा जा रहा है तो इसमें तुम्हें उसका लोभ दीखता है किन्तु भाई के राज्य को हड़पने वाले हम लोगों की कु-प्रवृत्ति की ओर ध्यान नहीं देते ॥१५॥

---

१ यदा भरतो रामं प्रतिनिवर्तयितुं चित्रकूटं गतवान्, तदा तं प्रति रामेणैषा स्वपितुः प्रतिज्ञा स्मारिता । तद् यथा—

पुरा भ्रातः ! पिता नः स मातरं ते समुद्वहन् ।
मातामहे समाश्रौषीद् राज्यशुल्कमनुत्तमम् ॥
(अयो० कां १०७ सर्गः)

काञ्चुकीयः—अथ।

रामः—अतः परं न मातुः परिवादं श्रोतुमिच्छामि। महाराजस्य वृत्तान्तस्तावदभिधीयताम्।

काञ्चुकीयः—ततस्तदानीम्,

> **शोकादवचनाद् राज्ञा हस्तेनैव विसर्जितः।**
> **किमप्यभिमतं मन्ये मोहं च नृपतिर्गतः ॥१६॥**

वस्तुतः कैकेयीपुत्रस्य भरतस्यैव। यदि तन्मात्रा स्वपुत्राय तद् राज्यं याच्यते तर्हि कोऽत्र तस्या लोभः। न हि कुतश्चित् स्ववस्तु याचनं लोभशब्देन व्यपदिश्यते। प्रत्युत भरतराज्यापहर्तुर्ममैव लोभोऽत्र वर्णनीयः, योऽन्यराज्य आत्मानमभिषेक्तुमिच्छति इति भावः। अनुष्टुप् छन्दः ॥१५॥

काञ्चुकीयः कैकेय्या अपरं दोषं विवक्षति—**अथेति**। **अत** इति—**परिवादम्** निन्दाम्। **अभिधीयताम्** कथ्यताम्। **तत** इति—इदं पदद्वयमुत्तरपद्यान्वयि।

"**शोकाद्**"इति—**ततः** कैकेयीप्रार्थनानन्तरम्, **तदानीम्** तस्मिन् समये, **राज्ञा** दशरथेन, **शोकात्** कैकेयीप्रार्थनोत्पन्नाद् दुःखात् [अवचनहेतौ पञ्चमी], **अवचनात्** वचनशक्तेरभावात् [हस्तकरणकविसर्जनहेतौ पञ्चमी], **हस्तेनैव** हस्तसङ्केतेनैव, **विसर्जितः** गन्तुं प्रेरितः, अस्मीति शेषः। एवं हस्तसंज्ञया मां विसर्जितवतस्तस्य **किमपि** अविज्ञातम्, त्वय्येतद्वृत्तनिवेदनरूपं वा, **अभिमतम्** इष्टम्, आसीदिति, **मन्ये** तर्कयामि। किञ्च, न केवलं वचननिरोध एव राज्ञो जातः, अपि तु स तद्दुःखवशाद् मूर्च्छामप्यवापेत्याह—**मोहं चेति**। **नृपतिः** राजा, **मोहम्** मूर्च्छाम्, **गतश्च** प्राप्तश्च। अथवा मन्य इति संभावनार्थकं तिङ्विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम्, तथा च नृपतिः,

---

कंचुकी—तब फिर।

राम—इससे अधिक मैं माता जी की निन्दा नहीं सुना चाहता। महाराज का कुशल-समाचार ही कहिए।

कंचुकी—तब उस समय,

—शोक के कारण महाराज कुछ न बोल सके और उन्होंने हाथ के इशारे से ही मुझे (कैकेयी का वचन सुनाने) आपकी ओर पठाया ही कि महाराज मूर्च्छित हो गये। ऐसे शोक-समय में सचेत रहने की अपेक्षा मूर्च्छित अवस्था ही कुछ भली ॥१६॥

रामः—कथं मोहमुपगतः ।

[नेपथ्ये]

कथं कथं मोहमुपगत इति ।

यदि न सहसे राज्ञो मोहं धनुः स्पृश मा दया

रामः—[आकर्ण्य पुरतो विलोक्य]

अक्षोभ्यः क्षोभितः केन लक्ष्मणो धैर्यसागरः ।
येन रुष्टेन पश्यामि शताकीर्णमिवाग्रतः ॥१७॥

किमपि मनाग्, **अभिमतं मन्ये** इष्टत्वेन संभावनीयम्, मोहं गतश्च मोहावस्थायां दुःखस्याननुभवाद् आपेक्षिकमिष्टत्वं युज्यत एवेति योजना। अथवा 'किमप्यभिमतं मन्ये' एतत् पृथगेव वाक्यम्। राज्ञ एतद् मोहगमनं किञ्चिदिष्टम्, दुःखाननुभावकत्वादिति भावः। व्याख्यानस्यैतत् प्रकारद्वयमपि श्रीमद्गणपतिशास्त्र्यनुसारि बोध्यम्। अनुष्टुप् छन्दः ॥१६॥

ताहग्धीरस्वभावोऽपि नृपतिः कथं मोहमुपगत इत्याशङ्कते—**कथमिति।** **कथं कथमिति** नेपथ्ये क्रुद्धस्य लक्ष्मणस्योक्तिरियम्। 'कथं मोहमुपगतो महाराजः' इति कथं ब्रूषे। नायं महाराजशोकप्राप्त्यनुशोचनस्यावसरः, अपितु तत्प्रतीकारस्येति तद्धृदयम्।

"**यदि**"इति—**यदि, राज्ञः** पितुर्दशरथस्य, **मोहम्** शोकप्राप्तिहेतुकां मूर्च्छाम्, **न सहसे** न मृष्यसि, तर्हि, **धनुः** कोदण्डम्, **स्पृश** धारयेत्यर्थः, अपकर्तरि **दया** करुणा, **मा** न कर्तव्येत्यर्थः। न हि वीराः परकृतमपकारमनुशोचन्ति अपि तु कार्मुकेण प्रतिकुर्वन्ति तमिति भावः।

"**अक्षोभ्य**"इति—**अक्षोभ्यः** क्षोभयितुम् कोपलक्षणां विकृतिमापादयितुम्, अशक्योऽपि, **धैर्यसागरः** धैर्यस्य समुद्र इव स्थितः, **लक्ष्मणः**

राम—क्यों मूर्च्छित हो गये !

[नेपथ्य में]

क्या ? 'क्यों मूर्च्छित हो गये ?' यह !

—यदि महाराज का मूर्च्छित होना नहीं सहार सकते; उसका प्रतिकार चाहते हो तो धनुष पकड़ो। इस समय दया छोड़ो।

राम—[सुनकर, सामने देखकर]

—उत्तेजित न किये जाने वाले, धैर्य के सागर लक्ष्मण को किसने उभाड़ दिया ? जिस एक के क्रोधित होने से मैं अपने आगे को सैकड़ों जनों से व्याप्त हुआ-सा देख रहा हूँ ! ॥१७॥

[ततः प्रविशति धनुर्बाणपाणिर्लक्ष्मणः]

लक्ष्मणः—[सक्रोधम्] कथं कथं मोहमुपगत इति ।

यदि न सहसे राज्ञो मोहं धनुः स्पृश मा दया
स्वजननिभृतः सर्वोऽप्येवं मृदुः परिभूयते ।
अथ न रुचितं मुञ्च त्वं मामहं कृतनिश्चयो
युवतिरहितं लोकं कर्तुं यतश्छलिता वयम् ॥१८॥

सुमित्रानन्दनः, **केन** केन हेतुना, केन पुरुषेण वा, **क्षोभितः** कोपं प्रापितः, **रुष्टेन** कुपितेन, **येन** लक्ष्मणेन हेतुना, **अग्रतः** पुरःप्रदेशम्, **जनशताकीर्णमिव** जनानां शतेन शतशो जनैरित्यर्थः, आकीर्णम् व्याप्तमिव, **पश्यामि** उत्प्रेक्ष इत्यर्थः । एकाक्यपि लक्ष्मणः क्रोधेन तथा गर्जति यथायं पुरःप्रदेशो गर्जद्भिः शतशो जनैराकीर्ण इति प्रतीयते इति भावः ।

सागरत्वारोपाद् रूपकम् । पूर्णिमादितिथिषु क्षोभशीलस्य प्रसिद्धसागरस्यापेक्षयाऽस्याक्षोभ्यतावर्णनेन व्यतिरेकश्च । अक्षोभ्यस्यापि क्षोभ इति विरोधः । एकाकीर्णस्य शताकीर्णत्वसंभावनया चोत्प्रेक्षा । वृत्तमनुष्टुप् ॥१७॥

ततः प्रविशतीति—धनुर्बाणपाणिः धनुर्बाणश्चेति धनुर्बाणम् [सेनाङ्गत्वात् समाहारद्वन्द्वः], तत् पाणौ यस्य स इति विग्रहः ['प्रहरणार्थेभ्यः परे निष्ठासप्तम्यौ' इति सप्तम्याः परनिपातः]।

"**यदि**" इति—**यदि, राज्ञः, मोहम्, न, सहसे** तर्हि **धनुः, स्पृश,** वैरिणि, **दया, मा,** अस्तु [प्रथमपादोऽयं व्याख्यातपूर्वः]। **स्वजननिभृतः** स्वजने आत्मीयजने, निभृतः विनययुक्तः ['निभृत-विनीत-प्रश्रिताः समाः' इत्यमरः], **मृदुः** अकठोरहृदयः अपकारेऽप्यमर्षशून्य इति भावः, **सर्वोऽपि,** जनः, **एवम्,** यथा त्वमित्यर्थः, **परिभूयते** तिरस्कारमाप्नोति ।

[हाथ में धनुष-बाण लिये लक्ष्मण का प्रवेश]

लक्ष्मण—[क्रोध से] **क्यों ? 'मूर्च्छित क्यों हो गये ?' यह !**

—यदि महाराज का मूर्च्छित होना नहीं सहार सकते; उसका प्रतिकार चाहते हो तो धनुष पकड़ो । इस समय दया छोड़ो । स्व-जनों के किये को चुपचाप सहार क्षमा कर देने वाले सभी कोमल-हृदय पुरुषों का इस तरह तिरस्कार होता रहता है । यदि स्व-जनों के विषय में धनुष उठाना तुम्हें पसन्द नहीं तो मुझे छोड़ो (आज्ञा दो) । मैंने सम्पूर्ण संसार को युवति-रहित कर देने का निश्चय कर लिया है । क्योंकि एक युवती ने (अपने भर्ता को वश में कर) हम सब को छल लिया ॥१८॥

सीता—अय्यउत्त ! रोदिदव्वे काले सोमित्तिणा धणू गहीदं । अपुव्वो खु से आआसो ।

आर्यपुत्र ! रोदितव्ये काले सौमित्रिणा धनुर्गृहीतम् । अपूर्वः खल्वस्यायासः ।

रामः—सुमित्रामातः ! किमिदम् ।

अथ यदि, **न रुचितम्** नाभीष्टम्, यदि स्वजने स्वयं धनुःप्रयोगस्तुभ्यं न रोचते इति भावः । तर्हि, **त्वम्**, **माम्** स्वानुजम्, **मुञ्च** आज्ञापयेत्यर्थः, धनुर्व्यापारयितुमिति शेषः । **अहम्** त्वदनुजो लक्ष्मणः, **लोकम्** भुवनम्, **युवतिरहितम्** स्त्रीविवर्जितम्, **कर्तुम्** विधातुम्, **कृतनिश्चयः** कृतः निश्चयः निर्णयः येन तादृशः, अस्मीति शेषः । **यतः** यस्मात् कारणात्, **वयम्, छलिताः** वञ्चिताः, युवत्या कैकेय्येति शेषः । वैवाहिकशुल्कयाचन-मिषेण राज्यात् पितुश्च वञ्चिता इति भावः ।

अत्र लक्ष्मणनिष्ठः क्रोधः प्राधान्येन व्यज्यते । पितृमोहादिहेतुतया-पराधिनी कैकेय्यत्रालम्बनम्, तत्कृतोऽपराध उद्दीपकः, अपराधिवधाय स्वनिश्चयख्यापनादिरनुभावः, गर्वोग्रत्वादयः सञ्चारिणः । परमयं स्त्रीविषय-त्वादनुचित इति रसाभासतां गतः । तदुक्तं प्रकाशकृता—'तदाभासा अनौचित्य-प्रवर्तिताः' इति । 'रसयुगहयैर्न्सौ म्रौ स्लौ गो यदा हरिणी तदा' इति हरिणी॥१८॥

आर्यपुत्रेति—**रोदितव्ये** रोदनोचिते । रुदन्त्यस्मिन्निति रोदितव्यः । बाहुलकादधिकरणे तव्यप्रत्ययः । **सौमित्रिणा** सुमित्राया अपत्यमिति विग्रहः । बाह्वादित्वादिञ् । **अपूर्वः** अदृष्टपूर्वः । **आयासः** क्रोधः । एता-दृशः क्रोधोऽस्य पूर्वमस्माभिरदृष्ट इति भावः । **सुमित्रे**ति—**सुमित्रामातः** सुमित्रा माता यस्य स इति विग्रहः, सम्बोधने रूपम् । हे लक्ष्मणेत्यर्थः । 'मातज्मातृकमातृषु वा' इति बहुव्रीहौ मातृशब्दे ष्यङः संप्रसारणविधायके वार्त्तिके मातृमातृकशब्दयोर्ग्रहणाद् मातृशब्दान्तबहुव्रीहेः कपो वैकल्पिकत्व-बोधनाद् 'नद्यृतश्च' इति कब् न इति श्रीगणपतिशास्त्रिणः । वस्तुतस्तु 'सुमित्रामातः' इति सविसर्गपाठोऽपपाठः । किन्तु निर्विसर्गपाठ एव साधीयान् । अत्र हि सम्बुद्धौ 'नद्यृतश्च' इति कपं बाधित्वा 'मातृणां मातच् पुत्रार्थमर्हते' इत्यनेन वार्त्तिकेन मातृशब्दस्य मातजादेशः । तथाच अकारान्त-त्वाद् 'हे राम' इत्यादिवत् 'हे सुमित्रामात' इत्येव साधु । हे सुमित्रायाः श्लाघनीयपुत्र इति च तदर्थः । वार्त्तिकमिदं महाभाष्ये 'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः' इति सूत्रे व्याख्यातं 'गार्गीमात, वात्सीमात' इत्येवमुदाहृतं च । **किमिदम्**

सीता—आर्यपुत्र ! रोने के समय लक्ष्मण ने धनुष को उठाया है । इतना क्षुभित हुआ तो इन्हें कभी नहीं देखा !

राम—सुमित्रानन्दन ! यह क्या ?

लक्ष्मणः—कथं कथं किमिदं नाम ।

क्रमप्राप्ते हृते राज्ये भुवि शोच्यासने नृपे ।
इदानीमपि सन्देहः किं क्षमा निर्मनस्विता ॥१९॥

रामः—सुमित्रामातः ! अस्मद्राज्यभ्रंशो भवत उद्योगं जनयति । आः, अपण्डितः खलु भवान् ।

इदं त्वया किं क्रियते इति भावः । त्वं खलु सुमित्रायाः सुतोऽसि, तद्यथा ते जननी सुमित्रा तथा त्वयाऽपि सुमित्रेण भाव्यम् । अतो नायं धनुर्धूननावसर इति हृदयम् । सुमित्रामातरित्यस्य विशेषणस्य साभिप्रायतया परिकरालङ्कृतिः ।

कथं कथमिति—इदानीमपि किमिदमिति कथं पृच्छचते इत्यर्थः । किमिदमिति प्रश्नस्यानौचित्यमाह—"**क्रमप्राप्त**" इति । **क्रमप्राप्ते** क्रमेण ज्येष्ठानुक्रमेण, प्राप्ते उपस्थिते, त्वां प्रतीति शेषः, **राज्ये** राजपदे, **हृते** प्रसह्य अपहस्तिते सति, **नृपे** पितरि महाराजदशरथे, **भुवि** पृथिव्याम्, **शोच्यासने** शोच्यं शोकयोग्यम्, आसनम् अवस्थानं यस्य तादृशे, सिंहासनयोग्येऽपि भूमिशय्यामधिरूढे सतीति भावः, **इदानीमपि** अस्मिन्नसह्यापकारप्राप्तिसमयेऽपि, **सन्देहः** किमिदमिति अपकारप्रतीकाराय मदुद्योगं प्रति संशयः क्रियते इति शेषः । यद्युच्यते क्षम्यतामित्यत आह—**किमिति** । **निर्मनस्विता** हृदयशून्यता, आत्माभिमानराहित्यं वा, **क्षमा** क्षमापदार्थः, **किम्** ? स्वराज्यापहाराद्यपराधकर्तर्यपि वैरिणि विषये वीरस्य तव कर्तव्यसन्देहो नोचितः । यदि हृदयहीनता आत्माभिमानशून्यत्वं वा क्षमापदार्थः, तर्हि काममियं क्षमास्तु, वस्तुतस्तु नेयं ते क्षमा, अपितु हृदयशून्यत्वम्, येन क्रियासमभिहारेण क्रियमाणानपि परप्रहारान् नाववुध्यसे । अथवा किम्, इयं क्षमा, उत निर्मनस्विता, इति योज्यम् । अभिप्रायस्तु पूर्वोक्त एव । सन्देहाकर्तव्यतायाः पूर्वार्धेन समर्थनात् काव्यलिङ्गम् । अनुष्टुप् छन्दः ॥१९॥

लक्ष्मणोद्योगस्यासङ्गतिमुद्भावति—**सुमित्रामातरिति** । राज्यभ्रंशो मम जातः, त्वं च तत्प्रतिकाराय यतसे इत्यसङ्गतमिति भावः । आ इति क्रोधसूचकमव्ययम् । **अपण्डितः** विवेकशून्यः ।

लक्ष्मण—क्यों ? क्या अब भी पूछ रहे हो कि यह क्या ?

—वंश-परम्परा से प्राप्त हुआ राज्य छिन गया; और महाराज (मूर्च्छित हो) चिन्ता-जनक दशा में भूमि पर लोटे पड़े हैं । क्यों, अब भी आपको संशय है ? यह क्षमा है या आत्म-गौरव-शून्यता ? ॥१९॥

राम—सुमित्रानन्दन ! हमारा राज्य से च्युत होना तुम्हें इतना भड़का रहा है । अफ़सोस ! तुम, निश्चय ही, विवेक-शून्य हो ।

भरतो वा भवेद् राजा वयं वा ननु तत् समम् ।
यदि तेऽस्ति धनुःश्लाघा स राजा परिपाल्यताम् ॥२०॥

लक्ष्मणः—न शक्नोमि रोषं धारयितुम् । भवतु भवतु । गच्छामस्तावत् । [प्रस्थितः]

रामः—

त्रैलोक्यं दग्धुकामेव ललाटपुटसंस्थिता ।
भ्रुकुटिर्लक्ष्मणस्यैषा नियतीव[1] व्यवस्थिता ॥२१॥

"**भरत**" इति—**भरतो वा** कैकेय्या आत्मजो वा, **राजा** राज्यारूढः, **भवेद्**, **वयं वा** अहं वा राजा भवेयम्, **तत्** उभयोः कतरस्यापि राज्यारोहणम्, **समम्** त्वत्कृते निर्विशेषम्, **ननु** निश्चयेन । **यदि**, **ते** तव, **धनुःश्लाघा** धनुषि धनुर्विद्यायाम्, श्लाघा आत्मस्तुतिः, धनुर्विद्यायां निपुणोऽहमित्यभिमान इत्यर्थः, **अस्ति** विद्यते, **तर्हि सः** भरतो नाम, **राजा**, **परिपाल्यताम्** रक्षणीयः ।

मया वा राज्ञा भवितव्यम् भरतेन वा, उभयस्मिन्नपि पक्षे न ते कश्चिदपि लाभः । त्वया तु सर्वथा अस्मदधीनेनैव भाव्यम् । किञ्च भरतो वाहं वा तव भ्रातरावेव । न चैकतरस्मिन् त्वया पक्षपातिना भवितव्यम् । नाहं तुभ्यं किञ्चिद् ददामि, भरतो वा तव किञ्चिदपहरति । तथा चैकत्र स्नेहः, अपरत्र द्वेषस्तवानुचितः । तदेवमुभयस्मिन्नपि पक्षे तव पराधीनतायां निश्चितायां यद्यात्मानं धनुर्भृतां वरेण्यमभिमन्यसे तर्हि भरत एव त्वया रक्षणीयः, किमनेनाकाण्डसंरम्भेणेति भावः ॥२०॥

नेति—**धारयितुम्** निरोद्धुम् । **भवतु भवतु** भवदुक्तमुचितमनुचितं वा यथा भवतु तथा भवतु इति भावः ।

"**त्रैलोक्यम्**" इति—**त्रैलोक्यम्** भूर्भुवरादीन् त्रीन् लोकान् [चातु-

---

—चाहे भरत राजा हो; चाहे मैं; (तुम्हारे लिए) दोनों बातें एकसमान ही हैं । हाँ, यदि तुम्हें धनुर्धारी होने का दर्प है तो जाओ, नये राजा भरत के सहायक बनकर रक्षा करो ॥२०॥

लक्ष्मण—मैं रोष को रोक नहीं सकता । अच्छा, जो हो । जाता हूँ ।

[प्रस्थान]

राम—त्रि-भुवन को भस्म किया चाहती-सी, लक्ष्मण के विशाल भाल (मस्तक) पर अवस्थित हुई (नाच रही), यह प्रचण्ड भौंह, विधना की तरह स्थिर निश्चय किये हुए है ॥२१॥

---

1 वियतीव.

सुमित्रामातः ! इतस्तावत् ।
लक्ष्मणः—आर्य ! अयमस्मि ।
रामः—भवतः स्थैर्यमुत्पादयता मयैवमभिहितम् । उच्यतामिदानीम् ।

तातें धनुर्नमतु सत्यमवेक्षमाणे
मुञ्चानि मातरि शरं स्वधनं हरन्त्याम् ।

वर्ण्यादित्वात् स्वार्थे ष्यञ्], **दग्धुकामेव** दग्धुम् भस्मसात्कर्तुम्, कामः अभिलाषो यस्यास्तादृशीव लक्ष्यमाणा ['तुं काममनसोरपि' इति तुमुनो मलोपः], **ललाटपुटसंस्थिता** ललाटपुटे भालतले, संस्थिता विद्यमाना, **एषा** प्रत्यक्षीक्रियमाणा, **लक्ष्मणस्य, भ्रुकुटिः** भ्रूकौटिल्यम्, ललाटसङ्कोच इति यावत्, **नियतीव** विधिवद् [नियतिशब्दः क्तिजन्तस्ततः 'कृदिकाराद-क्तिनः' इति ङीप्], **व्यवस्थिता** कृतनिश्चया भातीति शेषः । उत्प्रेक्षा ॥२१॥

सुमित्रामातरिति—इतस्तावद्, आगम्यतामिति शेषः ।

भवत इति—**भवतः** नितरां क्षोभमाप्तस्य तव, **स्थैर्यम्** चित्तस्थैर्यम्, **उत्पादयता** उत्पादयितुमित्यर्थः ['लक्षणहेत्वोः क्रियायाः' इत्यभिधानक्रिया-हेतौ शतृप्रत्ययः], **एवम्** भरतो वेत्यादि पूर्वोक्तम्, **अभिहितम्** कथितम् । **इदानीम्** अस्मिन् समये यदा त्वं किञ्चित् स्थिरचित्तोऽसि, **उच्यताम्** वक्ष्यमाणस्य मत्प्रश्नस्योत्तरमभिधीयताम् ।

"तात" इति—**सत्यम्** वस्तुतत्त्वम्, **अवेक्षमाणे** अनुरुध्यमाने, विवाहकाले प्रतिश्रुतस्य राज्यस्य तदधिकारिणे भरताय प्रदानेन स्वप्रतिज्ञां पालयितुकाम इत्यर्थः, **ताते** पितरि विषये, तं हन्तुमित्यर्थः, **धनुः** कोदण्डम् **नमतु** सज्जीभवतु किम् ? **स्वधनम्** आत्मधनम् विवाहकाले स्वस्मै प्रतिश्रुतं

सुमित्रानन्दन ! ज़रा इधर तो आओ ।
लक्ष्मण—आर्य ! यह उपस्थित हुआ हूँ ।
राम—तुम्हारी क्रोध-शान्ति करने के लिए मैंने ऐसा कहा । अब तुम्हीं बताओ ।

—क्या अपनी सत्य-सन्धता का पालन करते हुए पिता के विरुद्ध धनुष उठाऊँ ? क्या अपने शुल्क-प्रतिज्ञात धन को लेती हुई माता को

---

१ क्वचित्तु 'नमतु' इत्यस्य स्थाने 'न मयि' इति पाठः । मयि विषयभूते, स्वविधेयं मामवलम्ब्येत्यर्थः, सत्यम् स्वप्रतिश्रुतभरताभिषेकानन्यथाभावम्, अवेक्षमाणे प्रतीक्षमाणे, ताते विषये, तातं प्रतीत्यर्थः, धनुर्न चापप्रयोगस्य कथैव

दोषेषु बाह्यमनुजं भरतं हनानि
किं रोषणाय रुचिरं त्रिषु पातकेषु ॥२२॥

राज्यरूपं धनमित्यर्थः, **हरन्त्याम्** गृह्णत्याम्, **मातरि** जनन्याम्, कैकेय्याम्, **शरम्** बाणम्, **मुञ्चानि** त्यजानि, किम्? **दोषेषु बाह्यम्** सर्वदोषविवर्जितम्, **अनुजम्** कनिष्ठम्, **भरतम्**, **हनानि** हिनसानि, किम्? एतेषु, **त्रिषु पातकेषु** पितृहननादिपापेषु, **किम्** कतमत् पापम्, **रोषणाय** क्रोधनाय, ते, **रुचिरम्** प्रीतिकरम्। त्वया 'यदि राज्ञो मोहं न सहसे तर्हि धनुः स्पृश' इति पूर्वमुक्तम्। तत् कस्य हननाय धनुर्धरणीयम्? यदि पितुर्हननायेत्युच्यते, तर्हि सत्यानुरोधेन भरताय तद् राज्यं ददानः पिता हननयोग्यः किम्? नह्यत्र पितुः कश्चनापराधः। मातरं चेद् हननीयां वदसि तदप्यसङ्गतम्। पूर्वं तु सापराधायामपि मातरि धनुःप्रहारो नोचितः, निरपराधायां तु सुतराम्। नहि कुतश्चित् स्वधनग्रहणमपराध उच्यते। स्वस्मै प्रतिश्रुतं राज्यमेव तया भरताय याचितम्, न परकीयम्, इति सापि हन्तव्यकोटौ नायाति। भरतं चेद् हन्तव्यमाचक्षे, तदप्यनुचितमेव। पूर्वं तु सापराधस्यापि तस्यानुजतयैव अहिंस्यता। सर्वदोषरहितस्य तु तस्य सुतराम्। न हि भरत इदानीमत्रोपतिष्ठते, न वा तेन महाराजः कथञ्चिदपि राज्याय प्रार्थितः, इति कथं स हन्तव्यो भवति। सर्व एवेमे निरपराधाः। तत् कस्य निरपराधस्य हननेन मां पातकिनं वाञ्छसि, स्वं वा प्रसादयितुं कामयस इति भावः। विशेषणानां विशेष्याणां च सर्वेषां निरपराधत्वादिव्यञ्जनद्वाराऽहननीयतायां साभिप्रायतया परिकर-परिकराङ्कुरौ। तल्लक्षणे यथा—'अलङ्कारः परिकरः साभिप्राये विशेषणे। साभिप्राये विशेष्ये तु भवेत् परिकराङ्कुरः॥' इति। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥२२॥

अपने शर का लक्ष्य बनाऊँ? क्या सब दोषों से दूर; निरपराध अनुज भरत का वध करूँ? (पिता, माता और भ्राता के वध रूप) इन तीन महापातकों में से कौन-सा तुम्हारे रोष को अभीष्ट है? ॥२२॥

नास्तीति तद्व्याख्यानं गणपतिशास्त्रिणः। कालेमहोदयस्तु 'नमयि' इत्येकं पदं मेने 'नमयै' इति तदर्थः इति व्याचख्यौ। ताते धनुर्नमयै किमिति योजना। परमेतस्मिन् मते च्युतसंस्कृतिदोषः। नहि नमयतेरुत्तमपुरुषे नमयीति रूपं जायते। किन्तु 'नमयै, नमयानि' वा। मन्ये तन्मतेन 'अपि माषं मषं कुर्याच्छन्दोभङ्गं न कारयेद्' इति न्यायेन नमयीति प्रयोगः कविना कृतः। अस्मिन् मते आत्मनेपदप्रक्रमभङ्गश्च। वस्तुतस्तु 'नमतु' इत्येव पाठः साधीयान् सरलश्च। भवतु पुरुषप्रक्रमभङ्गः, च्युतसंस्कृतिस्तु न भवति।

लक्ष्मणः—[सबाष्पम्] हा धिक् । अस्मान् अविज्ञायोपालभसे ।

यत्कृते महति क्लेशे राज्ये मे न मनोरथः ।
वर्षाणि किल वस्तव्यं चतुर्दश वने त्वया ॥२३॥

रामः—अत्र मोहमुपगतस्तत्रभवान् । हन्त निवेदितमप्रभुत्वम् । मैथिलि !

त्वदभिषेकनिवृत्तिर्भरताय वा राज्यप्रदानं न मे क्रोधस्य हेतुः, किन्त्वन्यदेव तदित्याह—**हा धिगिति** । **हा धिक्** कष्टम् इत्यर्थः । **अविज्ञाय** वस्तुतत्त्वम् अजानन्नित्यर्थः, **अस्मान्** मामित्यर्थः, **उपालभसे** शपसि । यदि वस्तुतत्त्वं जानीथा नैवं मामुपालभेथाः ।

तद् वस्तुतत्त्वं वर्णयितुमुपक्रमते "**यत्कृते**" इति—**यत्कृते** येन कारणेन, कृते समुत्पादिते, **महति** निरतिशये, **क्लेशे** महाराजमोहप्राप्तिरूपे दुःखे, सति, **राज्ये** राज्यविषये, **मे** मम, **मनोरथः** अभिलाषः, **न** नास्ति । तत् कारणम्, '**त्वया** रामेण, **चतुर्दश वर्षाणि** वत्सरान् [अत्यन्तसंयोगे द्वितीया], **वने** अरण्ये, **वस्तव्यम्** वासः कर्तव्यः **किल**' इत्यस्ति । त्वदभिषेकनिवृत्तिर्भरतराज्यप्राप्तिर्वा न मे रोषस्य हेतुः, किन्तु मे पितुर्मोहप्राप्तिहेतुः कैकेय्या तत्सकाशात्प्रार्थितस्तव चतुर्दशवर्षवनवास इति भावः । अनुष्टुप् ॥२३॥

अत्रेति—**तत्रभवान्** पूज्यस्तातः, **अत्र** अस्मिन् चतुर्दशवर्षाणि यावन्मम वनवासरूपेऽर्थे विषये, **उपगतः** प्राप्तः । कैकेय्या मम चतुर्दशवर्षवनवासवरणमेव पितुर्मोहप्राप्तेर्हेतुः, न पुनरभिषेकनिवृत्तिरिति भावः । **हन्तेति** खेदे । **अप्रभुत्वम्** भविष्यद्मद्वियोगजनितदुःखसहनासामर्थ्यम्, **निवेदितम्** सूचितम्, मोहमुपगतेन महाराजेनेति शेषः ।

लक्ष्मण—[आँसू भरकर] बड़े दुःख की बात है । बात जाने बिना आप हमें उपालम्भ देने लगे !

—जिस बात से उत्पन्न हुई (सामने आने वाली) दारुण विपत्ति का चिन्तन करते हुए, मेरी राजपाट में नाममात्र को भी अभिलाषा न रही; वह यह कि आर्य ! तुम्हें चौदह बरस तक वन में भी रहना होगा ॥२३॥

राम—क्या इसी पर महाराज मूर्च्छित हो गये ? शोक ! उन्होंने अपनी अधीरता प्रकट की । मैथिली !

मङ्गलार्थेऽनया दत्तान् वल्कलांस्तावदानय ।
करोम्यन्यैर्नृपैर्धर्मं नैवाप्तं नोपपादितम् ॥२४॥

सीता—गह्णदु अय्यउत्तो । गृह्णात्वार्यपुत्रः ।

रामः—मैथिलि ! किं व्यवसितम् ।

सीता—णं सहधम्मआरिणी क्खु अहं ।
ननु सहधर्मचारिणी खल्वहम् ।

रामः—मयैकाकिना किल गन्तव्यम् ।

"**मङ्गलार्थे**" इति—**अनया** अवदातिकया, **दत्तान्**, **वल्कलान्** वृक्षत्वचः, **मङ्गलार्थे** पित्राज्ञया वनगमनरूपमङ्गलकर्मानुष्ठानार्थम् इत्यर्थः, **आनय** प्रापय, **तावद्**, मह्यं देहीति भावः । **अन्यैः** मदितरैः, **नृपैः** राजपुत्रैः, **नैव आप्तम्** यौवने वयसि कर्तुमलब्धम्, **न उपपादितम्** नापि यौवने वयसि जातुचित् कृतम्, **धर्मम्** वनगमनेन पित्राज्ञापालनरूपं धर्मम्, **करोमि** अनुतिष्ठामि, अहमिति शेषः । शास्त्राज्ञया सर्वे नृपा राज्यादिकमुत्तराधिकारिणि संन्यस्य वनमगच्छन्, गच्छन्ति, गमिष्यन्ति च । परं पित्राज्ञया यौवने वयसि धृतवल्कलो नाद्यापि कश्चिद् राज्यं त्यक्त्वा वनं गतवान् । दूरं वनगमनं तदवसरमेव न लब्धवान् । तदहं पित्राज्ञापालनतत्परोऽन्यैर्दुश्चरं तपश्चरन् यत् सत्यं धन्योऽस्मीति भावः । भावार्थोक्तिरीत्या व्यतिरेकालङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥२४॥

मैथिलीति—**व्यवसितम्** निश्चितम् । पित्राज्ञया वनं प्रस्थातुकामे मयि त्वया किं निश्चितमिति भावः । **नन्विति**—**सहधर्मचारिणी** पत्या सह धर्माचरणशीला भवत्पत्नी, अतो भवता सह मयापि गन्तव्यमेवेति मे निश्चयः । **मयेति**—**एकाकिना** एकलेन द्वितीयरहितेन [एकादाकिनचासहाये], अहमेव केवलः पित्रा वनं गन्तुमादिष्टः, न त्वमन्यो वा कश्चिदपि, अतस्त्वया गृह एव

—माङ्गलिक कार्य करने के लिए लाओ मुझे, अवदातिका के दिये हुए वल्कल । उन्हें पहन मुझे उस लोकोत्तर धर्म का पालन करना है, जिसे अन्य राजाओं ने (बचपन में) न पाया और न किया ॥२४॥

सीता—लीजिए आर्यपुत्र !

राम—मैथिली ! तुमने क्या निश्चय किया ?

सीता—क्यों ? मैं तो आर्यपुत्र की सहधर्मचारिणी हूँ ।

राम—किन्तु मुझे तो अकेले ही वन जाना है ।

सीता—अदोणुखु अणुगच्छामि । अतो नु खल्वनुगच्छामि ।

रामः—वने खलु वस्तव्यम् ।

सीता—तं खु मे पासादो । तत् खलु मे प्रासादः ।

रामः—श्वश्रूश्वशुरशुश्रूषापि च ते निर्वर्तयितव्या ।

सीता—णं उद्दिसिअ देवदाणं पणामो करीअदि ।

एनाम् उद्दिश्य देवतानां प्रणामः क्रियते ।

रामः—लक्ष्मण ! वार्यतामियम् ।

वस्तव्यमिति भावः । **अतो नु खल्विति**—यतस्त्वमेकाकी वनं गन्तुमादिष्टः, अत एव भवत्साहाय्यार्थं मयावश्यानुगन्तव्यमेव । रामेण स्वस्यैकाकिन एव पित्रा वनगमनादेशः सीताया वनगमनाभावे हेतुः कृतः, सीतयापि तेनैव हेतुना स्वस्य वनानुगमनं कर्तव्यतया साधितमिति व्याघातालङ्कारः । तदुक्तं कुवलयानन्दे—'सौकर्येण निबद्धापि क्रिया कार्यविरोधिनी । दया चेद् बाल इति मय्यपरित्याज्य एव ते ॥' इति । **वने खल्विति**—वने नैकानि कष्टानि संभाव्यन्त इति भावः । **तत् खल्विति**—भवता सह वने वसन्त्या मम कृते वनमपि प्रासादतुल्यमेव भविष्यति, न कष्टप्रदम् इति भावः । **श्वश्रूश्वशु-रेति**—श्वश्रूश्वशुरयोः, शुश्रूषा सेवापि, **ते** वध्वाः, **निर्वर्तयितव्या** कर्तव्या । यदि त्वं वनं मया सह गमिष्यसि, तर्हि त्वमवश्यकर्तव्याद् वृद्धयोः श्वशुरयोः शुश्रूषणाद् वञ्चिता भविष्यसि इति भावः । **एनामिति**—**एनाम्** श्वशुर-शुश्रूषाम्, **उद्दिश्य** लक्ष्यीकृत्य, एतद्विषय इति भावः, पतिपरिचर्य्यायै वनं गच्छन्त्या मम नान्तरीयकवृद्धशुश्रूषणत्यागजनितदुरितनिवृत्तये, **देवतानां प्रणामः क्रियते**, देवता मां क्षाम्यन्त्विति भावः । सीतां वनगमनाद् वारयितुं स्वप्रयत्नान् निष्फलान् विज्ञाय रामो लक्ष्मणं तां वारयितुमाह—**लक्ष्मणेति** ।

सीता—इसी लिए तो आपके साथ चलना है ।

राम—वहाँ तो वन में रहना होगा ।

सीता—निःसंदेह, वह वन मेरे लिए महल होगा ।

राम—तुम्हें सास-ससुर की सेवा भी तो करनी है ।

सीता—इसके लिए मैं देवताओं को दण्डवत् करती हूँ (कि वे उन्हें स-कुशल रक्खें) ।

राम—लक्ष्मण ! इसे रोको ।

लक्ष्मणः—आर्य ! नोत्सहे श्लाघनीये काले वारयितुमत्रभवतीम् । कुतः,

अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा
पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च ।
त्यजति न च करेणुः पङ्कलग्नं गजेन्द्रं
व्रजतु चरतु धर्मं भर्तृनाथा हि नार्यः ॥२५॥

आर्येति—**श्लाघनीये** नैककष्टसङ्कुले क्रूरश्वापदसमाकीर्णे वने सहायशून्यस्य पत्युः परिचर्य्यावसरप्रदातृतया स्तुतियोग्ये । **वारयितुम्** परिचर्यार्थं वनगमनादिति शेषः । **अत्रभवतीम्** पतिपरायणतया पूजनीयाम्, सीताम् । वारणानुत्साहे कारणं वक्तुमाह—**कुत** इति ।

"**अनुचरति**" इति—**तारा** रोहिणीनाम्नी तारा चन्द्रस्य भार्या, **राहुदोषेऽपि** राहुकर्तृकग्रसनरूपदोषसमयेऽपि, **शशाङ्कम्** चन्द्रमसं स्वपतिम्, **अनुचरति** अनुगच्छति । किं **च**, **वनवृक्षे** वनपादपे, **पतति** भूमिसाद् भवति सति, **लता च** तदाश्रिता वल्ल्यपि, **भूमिम्** पृथ्वीम्, **याति** पतति । किं **च**, **करेणुः** हस्तिनी, **पङ्कलग्नम्** पङ्के कर्दमे, लग्नम् मग्नम्, **गजेन्द्रम्** हस्तिनम्, **न त्यजति** न जहाति । अतएव **व्रजतु** अत्रभवती सीता भवन्तमनुगच्छत्वेव, **धर्मम्** असहायस्य पत्युः परिचरणरूपं धर्मम्, **चरतु** अनुतिष्ठतु । अथवा—धर्मं चरतु सहधर्मचारिणीत्वाद् त्वया सह वने धर्मं चरतु इति व्याख्येयम् । उक्तमर्थं समर्थयते—**हि** यतः, **नार्यः** स्त्रियः, **भर्तृनाथाः** भर्तैव नाथः स्वामी सेव्य इति यावत्, यासां तादृश्यः, भवन्तीति शेषः । अथवा भर्तैव नाथो नेता यासां तादृश्यः, भर्त्रधीना इति भाव इति व्याख्येयम् । सीतासहव्रजनस्य विशेषस्य सामान्येन समर्थनाद् अर्थान्तरन्यासः । उपमेयवाक्ये उपमानवाक्येषु च सहगमनरूपस्य समानधर्मस्य

लक्ष्मण—आर्य ! ऐसे सराहनीय अवसर पर आर्या को रोकने का साहस (हिम्मत) नहीं होता । क्योंकि,

—राहु द्वारा ग्रसे जाने पर भी, तारा (चन्द्रभार्या रोहिणी) चन्द्रमा का साथ देती है । तरुराज के गिर कर भूमि पर आ पड़ने से (उसकी सङ्गिनी) लता भी धराशायी हो जाती है । गजराज के दलदल में फँस जाने पर हथिनी भी उसे कभी नहीं छोड़ा करती । इन्हें भी अपने साथ वन चलने दो और अपना नारी-धर्म पालन करने दो । क्योंकि संसार में नारियों का पति ही अवलम्बन है ॥२५॥

[प्रविश्य]

चेटी—जेदु भट्टिणी । णेवच्छपालिणी अय्यरेवा पणमिअ विण्णवेदि—ओदादिआए सङ्गीदसालादो आच्छिन्दिअ वक्कला आणीदा । इमा अवरा अणणुहूदा वक्कला । णिव्वत्तीअदु दाव किल पओअणं त्ति ।

जयतु भट्टिनी । नेपथ्यपालिन्यार्यरेवा प्रणम्य विज्ञापयति—अवदातिकया सङ्गीतशालाया आच्छिद्य वल्कला आनीताः । इमेऽपरा अननुभूता वल्कलाः । निर्वर्त्यतां तावत् किल प्रयोजनमिति ।

रामः—भद्रे ! आनय, सन्तुष्टैषा । वयमर्थिनः ।

चेटी—गह्णदु भट्टा । [तथा कृत्वा निष्क्रान्ता] गृह्णातु भर्ता ।

[रामो गृहीत्वा परिधत्ते]

पृथङ्निर्देशाद् मालाप्रतिवस्तूपमापि । तदुक्तम्—'वाक्ययोरेकसामान्ये प्रतिवस्तूपमा मता' । उपमानवाक्यानामनेकत्वाद् मालात्वम् । मालिनी वृत्तम्—'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' इति तल्लक्षणम् ॥२५॥

जयतु भट्टिनीत्यादि—**आच्छिद्य** नेपथ्यरक्षिकाया अनुमतिं विनैव हठादपहृत्य । **अपराः** [सर्वनामसंज्ञायाः पाक्षिकत्वाद् 'जसः शी' इति न प्रवृत्तम्], **अननुभूताः** अप्रयुक्तपूर्वाः नूतना इत्यर्थः । **निर्वर्त्यताम्** साध्यताम् । **प्रयोजनम्** शरीरालङ्करणरूपप्रयोजनमित्यर्थः । **भद्रे** इति—**एषा** सीता, **सन्तुष्टा** वल्कलधारणेन तृप्ता, पूर्वमेव धृतवल्कलेति भावः । **वयमर्थिनः** अहमेतेषां वल्कलानामभिलाषी, अतः, **आनय** मह्यं देहीत्यर्थः ।

[चेटी का प्रवेश]

चेटी—जय हो महारानी जी की। नेपथ्य की रखवाली करने वाली आर्या रेवा प्रणाम-पूर्वक निवेदन करती है कि अवदातिका संगीत-शाला से वल्कल स्वयं ही उठा लाई है । ये रहे और बिलकुल नये वल्कल । इनसे अपना प्रयोजन पूरा कर लीजिएगा ।

राम—भद्रे ! इधर ले आ । यह तो वल्कल पहन चुकीं । हमें पहनने हैं ।

चेटी—लीजिए महाराज !

[वल्कल देकर प्रस्थान]

[राम लेकर पहनता है]

लक्ष्मणः—प्रसीदत्वार्यः।

निर्योगाद् भूषणान्माल्यात् सर्वेभ्योऽर्धं प्रदाय मे।
चीरमेकाकिना बद्धं चीरे खल्वसि मत्सरी ॥२६॥

रामः—मैथिलि ! वार्यतामयम्।

रामेण सह वनं जिगमिषुर्लक्ष्मणः परिहितवल्कलं रामं स्वस्मै वल्कलाप्रदानोपालम्भमुखेन स्वसहगमनमनुज्ञातुं प्रार्थयते—**प्रसीदत्विति** । **प्रसीदतु** वल्कलप्रदानेनेति शेषः ।

"**निर्योगाद्**" इति—**निर्योगाद्** वस्त्रकञ्चुकादेराच्छादनाद्, **भूषणाद्** आभरणेभ्य इत्यर्थः, **माल्यात्** मालैव माल्यम्, तस्माद् मालाभ्य इत्यर्थः [उभयत्र जातावेकवचनम्], किमन्यत्, **सर्वेभ्यः** अखिलेभ्योऽपि भोग्यपदार्थेभ्यः, **अर्धम्** अर्धभागम्, **मे** मह्यम्, **प्रदाय** दत्त्वा, **चीरम्** वल्कलम्, **एकाकिना** एकलेनैव, मामदत्त्वैवेत्यर्थः, **बद्धम्** धारितम् । **चीरे** वल्कले अतितुच्छे वस्तुनीति भावः, **मत्सरी** मत्सरवान् असहिष्णुः, **असि** भवसि, **खलु** । खलुरत्र जिज्ञासायाम् ['जिज्ञासानुनये खलु' इत्यमरः] । इतः पूर्वं भवान् सर्वाण्युत्तमोत्तमान्यपि वस्तूनि मामप्रदाय न भुङ्क्ते स्म, न ते मयि कश्चन मत्सरोऽभवत् । परमद्य चीरसदृशं तुच्छं वस्त्वपि त्वया मामप्रदायैव धृतम् । मम वल्कलधारणे कुतस्तेऽसहिष्णुता । अतो मह्यमपि दीयतां वल्कलमिति भावः । अत्र उपर्युक्तात् प्रस्तुतादर्थाद् मया भवदनुज्ञया भूषणमाल्यादिधारणेषु सर्वत्रापि सर्वदा भवदनुसरणं कृतम् । यदि भूषणं भवता धृतम्, मयापि भवदाज्ञया तदनुधृतम् । यदि भवता माल्यम्, मयापि तदेव । अद्य भवान् वल्कलं धृत्वा वनं गच्छति, तन्ममापि धृतवल्कलस्य स्वानुगमनं कुतो नानुजानासि ? तत्तदपि त्वयानुज्ञातव्यमेवेति प्रस्तुतोऽर्थो व्यज्यत इति प्रस्तुताङ्कुरः । 'प्रस्तुतेन प्रस्तुतस्य द्योतने प्रस्तुताङ्कुरः' इति तल्लक्षणं कुवलयानन्दे ॥२६॥

रामो लक्ष्मणस्य वने स्वानुगमनाभिप्रायं विज्ञायाह—**मैथिलीति** । **वार्यताम्** वनगमननिश्चयादिति शेषः ।

लक्ष्मण—आर्य ! प्रसन्न हों।

—आज तक, क्या वस्त्र; क्या भूषण; क्या माल्य (फूलमाला, हार); सब प्रकार की भोग्य वस्तुओं में आप मुझे आधा भाग देते आये हो। किन्तु ये वल्कल-वसन अकेले ही लपेट लिये। क्यों, वल्कल-वसनों में ही इतने अधिक मत्सरी (ईर्ष्यालु) ? ॥२६॥

राम—मैथिली ! इसे रोको।

सीता—सोमित्ते ! णिवत्तीअदु किल । सौमित्रे ! निवर्त्यतां किल ।
लक्ष्मणः—आर्ये !

गुरोर्मे पादशुश्रूषां त्वमेका कर्तुमिच्छसि ।
तवैव दक्षिणः पादो मम सव्यो भविष्यति ॥२७॥

सीता—दीअदु खु अय्यउत्तो । सन्तप्पदि सोमित्ती ।
दयतां खल्वार्यपुत्रः । सन्तप्यते सौमित्रिः ।

सौमित्र इति—**निवर्त्यताम्** त्यज्यतां वनगमननिश्चय इत्यर्थः । **किलेत्य**नुनये ['किलशब्दस्तु वार्तायां संभाव्यानुनयार्थयोः' इति विश्वः] ।

"गुरो"रिति—**त्वम् , एका** एकाकिन्येव मां स्वसहकारिणमकृत्वेत्यर्थः, **मे** मम, **गुरोः** ज्येष्ठस्य, **पादशुश्रूषाम्** चरणपरिचर्याम् , **कर्तुम्** विधातुम् , **वाञ्छसि** कामयसे, **किम् ?** प्रश्नकाकुरियम् । तदेतदनुचितमिति भावः । **दक्षिणः** सव्येतरः, **पादः, तवैव** तत्पत्न्या भवत्या एव, **भविष्यति,** शुश्रूषणीय इति शेषः । **मम** लक्ष्मणस्य तदनुजस्य, **सव्यः** वामः, **पादः,** शुश्रूषणीयो भविष्यति । रामस्तवापि गुरुर्ममापि गुरुः । तव पतितया, मम च ज्येष्ठतया । अतस्तच्चरणपरिचरणे तुल्य उभयोरधिकारः । परं त्वं तदनुगमन-निश्चयाद् मां निवर्तयन्ती स्वयमेव तत्परिचरणमिच्छती मां तत्सेवातो वञ्च-यितुमिच्छसि । किमिदमुचितं नाम ? तुल्याधिकारे वस्तुन्येकस्य सर्वाधिकारः सर्वथाऽवाञ्छनीय एव । तदत्र संविभागः कर्तव्यः । दक्षिणचरणं प्रधानतया त्वमेव शुश्रूषस्व, वाममहं शुश्रूषिष्ये इति भावः । लक्ष्मणनिष्ठो रामविषयको रतिभावः प्राधान्येन व्यज्यते ॥२७॥

सीतापि लक्ष्मणस्य रामे निर्व्याजमनुरागं विज्ञाय तस्य वनगमनमनुज्ञातुं रामं प्रेरयति—**दयतामिति । दयताम्** दयां कुरुताम् , स्वानुगमनानुमत्येति शेषः । **सन्तप्यते** सन्तापमनुभवति, भविष्यद्भवद्वियोगदुःखेनेति भावः ।

सीता—लक्ष्मण ! रहने दो ।
लक्ष्मण—आर्ये !

—मेरे गुरु की चरण-शुश्रूषा तुम अकेली ही किया चाहती हो ? अच्छा, दक्षिण चरण पर एकान्त तुम्हारा ही अधिकार सही । मेरा स्वत्व वाम चरण पर रहेगा ॥२७॥

सीता—आर्यपुत्र ! दया कीजिए । लक्ष्मण बहुत व्यथित-हृदय हो रहा है ।

रामः—सौमित्रे ! श्रूयताम् । वल्कलानि नाम,

तपःसंग्रामकवचं नियमद्विरदांकुशः ।
खलीनमिन्द्रियाश्वानां गृह्यतां धर्मसारथिः ॥२८॥

लक्ष्मणः—अनुगृहीतोऽस्मि । [गृहीत्वा परिधत्ते]

रामोऽनुजानाति—सौमित्रे इति । वल्कलानि नामेति पदद्वयं पद्यान्वयि ।

"तप" इति—वल्कलानि नाम इमाः खलु वृक्षत्वचः, तपःसंग्रामकवचम् तपः तपश्चरणमेव, संग्रामः रणः, तत्र कवचम् वर्मरूपम्, नियमद्विरदाङ्कुशः नियमः शौचसन्तोषादिरेव द्विरदः करी, तस्य अङ्कुशः स्वायत्तीकरणसाधनभूता सृणिः, इन्द्रियाश्वानाम् इन्द्रियाणि चक्षुरादीन्येव, अश्वाः, तेषाम्, खलीनम् [खे मुखबिले लीनम् इति विग्रहः] कविकाख्यं लोहमयं यन्त्रम्, धर्मसारथिः धर्मरूपस्य रथस्य, सारथिः सूतः, गृह्यताम् स्वीक्रियताम्, वनगमनाय वल्कलानि धार्यन्तामिति भावः । गृह्यतामित्येकवचनमारोप्यमाणकवचादिविधेयप्राधान्याद् बोध्यम् । सौमित्रे ! धारय तावद् वल्कलानि । यद्यप्यधृत्वाप्येतानि शक्यते वनं गन्तुम्, तथाप्येतद्धारणं कर्तव्यमेव । यतस्तपोरूपे संग्रामे कामादिशत्रुकृतान् प्रहारान् निराकर्तुमिमानि कवचरूपाणि भवन्ति । यथाङ्कुशेन द्विरदो वशीक्रियते, तथा शौचसन्तोषादिरूपो द्विरद एतैर्वशीक्रियते । एतैः शौचाद्याचरणे न कश्चिद् विघ्न उपतिष्ठते इति हृदयम् । यथोच्छृङ्खला अश्वाः खलीनेन कुमार्गाद् अपकृष्य मार्गगामिनः क्रियन्ते, तथैवैतैर्वल्कलैरपि चक्षुरादीन्द्रियवर्गो विषयेभ्य आकृष्यान्तर्मुखीक्रियते । यथा सारथ्यधिष्ठितो रथो विषमभूमिपरिहारेण साधु चलति, तथैव परिहितवल्कलो वितृष्णतया साधु धर्मे प्रवर्तत इति भावः । अत्र वल्कलेषु कवचत्वाद्यारोपसिद्ध्ये तपआदिषु संग्रामत्वाद्यारोप आवश्यक इति परम्परितरूपकमिदम् । आरोप्यमाणानामनेकत्वाद् अस्य मालारूपत्वमपि । धर्मसारथिरित्यत्र धर्मे रथत्वारोपस्यार्थत्वादेकदेशविवर्तित्वमप्यस्य बोध्यम् ॥२८॥

राम—लक्ष्मण ! सुनो—ये वल्कल तो,

—तपस्या-रूपी संग्राम में कवच, संयम-रूपी हाथी को काबू में रखने के लिए अंकुश, इन्द्रिय-रूपी घोड़ों की लगाम और धर्म-रूपी रथ के सारथि हैं । लो, इन्हें पहनो ॥२८॥

लक्ष्मण—मैं आपका बहुत अनुगृहीत हुआ । [लेकर पहनता है]

रामः—श्रुतवृत्तान्तैः पौरैः सन्निरुद्धो राजमार्गः । उत्सार्यता-मुत्सार्यतां तावत् ।

लक्ष्मणः—आर्य ! अहमग्रतो यास्यामि । उत्सार्यतामुत्सार्यताम् ।

रामः—मैथिलि ! अपनीयतामवगुण्ठनम् ।

सीता—जं अय्यउत्तो आणवेदि । [अपनयति]

यदार्यपुत्र आज्ञापयति ।

रामः—भो भोः पौराः ! शृण्वन्तु शृण्वन्तु भवन्तः ।

स्वैरं हि पश्यन्तु कलत्रमेतद् बाष्पाकुलाक्षैर्वदनैर्भवन्तः ।
निर्दोषदृश्या हि भवन्ति नार्यो यज्ञे विवाहे व्यसने वने च ॥२९॥

श्रुतवृत्तान्तैरिति—**श्रुतवृत्तान्तैः** श्रुतः, वृत्तान्तः अस्मद्वनगमन-समाचारः, यैस्तैरिति विग्रहः, **पौरैः** पुरवासिभिः, **सन्निरुद्धः** आवृतः अस्मद्दर्शनार्थमिति शेषः । **उत्सार्यताम्** मार्गाद् एकतः क्रियताम्, जनसम्मर्द इति शेषः । **मैथिलीति**—**अपनीयताम्** अपह्रियताम्, **अवगुण्ठनम्** मुखाच्छादकं वस्त्रम् ['घूँघट' इति भाषायाम्] ।

"**स्वैरम्**"इति—**बाष्पाकुलाक्षैः** बाष्पैः अश्रुभिः, आकुले व्याप्ते, अक्षिणी नेत्रे, येषु तादृशैः [अक्षिशब्दात् षच् समासान्तः], **वदनैः** मुखैः, उपलक्षिताः, **भवन्तः** पुरवासिनः, **एतत्** पुरोवतिष्ठमानम्, **कलत्रम्** मम भार्यां सीताम्, **स्वैरम्** निर्विशङ्कम्, **पश्यन्तु** अवलोकयन्तु । **हि** यतः, **नार्यः** स्त्रियः, **यज्ञे**, **विवाहे**, **व्यसने** विपत्तौ, **वने** अरण्ये च, **निर्दोषदृश्याः** निर्दोषम् परस्त्रीदर्शनजन्यप्रत्यवायशून्यं यथा स्यात् तथा दृश्याः द्रष्टुमर्हाः, **भवन्ति** । यद्यपि यज्ञादिषु नैकतमदप्यत्रास्ति, तथापि वनप्रस्थानोन्मुखानां दर्शनं वने दर्शनमिहाभिप्रेतम्, इति न कश्चिद् दोष

राम—यह समाचार सुन नागरिक जन-समूह से राजमार्ग बिलकुल घिर गया है । (सान्त्वना देकर इन्हें) हटा दीजिए, हटा दीजिए ।

लक्ष्मण—आर्य ! लीजिए, मैं आगे चलता हूँ । हट जाइए, हट जाइए ।

राम—मैथिली ! घूँघट हटा दो ।

सीता—जो आर्यपुत्र की आज्ञा । [घूँघट हटाती है]

राम—हे नगरवासियो ! आप लोग सुनिए, सुनिए ।

—आप लोग निःशङ्क होकर आँसू भरे नयनों से इस सीता को देखो ।
यज्ञ, विवाह, संकट तथा वनमें निर्दोषभाव से स्त्रियाँ देखना क्षम्य है ॥२९॥

[प्रविश्य]

काञ्चुकीयः—कुमार ! न खलु न खलु गन्तव्यम् । एष हि महाराजः,

श्रुत्वा ते वनगमनं वधूसहायं
सौभ्रात्रव्यवसितलक्ष्मणानुयात्रम् ।
उत्थाय क्षितितलरेणुरूषिताङ्गः
कान्तारद्विरद इवोपयाति जीर्णः ॥३०॥

इति गणपतिशास्त्रिणः । अथवा सर्वैश्वर्यसमाकुलं राजकुलं परित्यज्य वनप्रवसनमत्र व्यसनं बोध्यम् । इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोः साङ्कर्यादुपजातिश्छन्दः ॥२९॥

कुमारेति—**न गन्तव्य**मित्यस्य वने इति शेषः । अगमने कारणं निर्दिशति—**एष ही**ति । अत्र **'एष हि महाराजः'** इति पदत्रयं वक्ष्यमाणपद्यान्वयि ।

"श्रुत्वा"इति—एष हि महाराजो दशरथः, **वधूसहायम्** वधूः पुत्रवधूः सीता, सहाया सहचारिणी, यस्मिन् तादृशम्, **सौभ्रात्रव्यवसितलक्ष्मणानुयात्रम्** सौभ्रात्रेण भ्रातृप्रेम्णा [सुभ्रातृशब्दात् भावेऽण्], व्यवसिता निश्चिता, लक्ष्मणस्य, अनुयात्रा अनुगमनम् यत्र तादृशम्, **ते** तव रामस्य, **वनगमनम्** वनाय प्रस्थानम्, **श्रुत्वा** आकर्ण्य, **उत्थाय** भूमेरुत्थाय, **क्षितितलरेणुरूषिताङ्गः** क्षितितलस्य भूमितलस्य, रेणुभिः रजोभिः, रूषितानि छुरितानि, धूसराणीति भावः, अङ्गानि शरीरावयवाः, यस्य तादृशः सन् [हस्तिपक्षेऽपि विशेषणमिदं तुल्यम्], **जीर्णः** जराजीर्णः, **कान्तारद्विरद इव** कान्तारे वने, द्विरदः हस्ती, स इव वन्यद्विप इवेत्यर्थः, **उपयाति** भवन्तं द्रष्टुं समीपमायातीत्यर्थः । उपमालङ्कारः । प्रहर्षिणी वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—'म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्' इति ॥३०॥

[कंचुकी का प्रवेश]

कंचुकी—कुमार ! मत जाइए, मत जाइए । यह देखो, बूढ़े महाराज, —सीता सहित तुम्हारे वन जाने तथा भ्रातृ-स्नेह से प्रेरित हो लक्ष्मण के तुम्हारे पीछे चल देने की बात सुनकर, सहसा उठ खड़े हो, पृथ्वी पर की धूलि से धूसरित अंग हुए, वन्य गजराज की भाँति, लड़खड़ाते हुए तुम्हें देखने इधर ही आ रहे हैं ॥३०॥

लक्ष्मणः—आर्य !

चीरमात्रोत्तरीयाणां किं दृश्यं वनवासिनाम् ।

रामः—

गतेष्वस्मासु राजा नः शिरःस्थानानि पश्यतु ॥३१॥

[इति निष्क्रान्ताः सर्वे]

प्रथमोऽङ्कः ।

"**चीरम्**" इति—**वनवासिनाम्** वसन्तीति वासिनः, वने वासिनो वनवासिनः, तेषाम् वने प्रवत्स्यतामित्यर्थः [कालसामान्ये ग्रह्यादित्वाण्णिनिः, सामान्यस्य च विशेषे पर्यवसानम्, ताच्छील्यस्याविवक्षितत्वात् 'सुप्यजातौ—' इति णिनिस्त्वत्र न युज्यते], अत एव **चीरमात्रोत्तरीयाणाम्** चीरमेवेति चीरमात्रम् वल्कलमात्रम्, उत्तरीयम् उत्तरासङ्गः ऊर्ध्ववस्त्रम्, येषाम्, तेषाम् वल्कलमात्रपरिच्छदानामिति भावः, अस्माकम्, **किम्** किं वस्तु, **दृश्यम्** दर्शनीयम्, अस्ति ? न किञ्चिदपीत्यर्थः । अतो राजागमनं न प्रतीक्ष्यम् इति भावः । **राजा** महाराजः, **अस्मासु**, **गतेषु** वनं प्राप्तेषु, सत्सु, **नः** अस्माकम्, **शिरःस्थानानि** शिरोभूतानि प्रधानानि स्थानानि निवासस्थानानि, **पश्यतु** अवलोकयतु ॥३१॥

अङ्कसमाप्तिं सूचयितुमाह—**इति निष्क्रान्ताः सर्व** इति । **प्रथमोऽङ्क** इति । तत्राङ्कलक्षणं यथा—

> अङ्क इति रूढिशब्दो भावैश्च रसैश्च चिह्नयत्यर्थान् ।
> नानाविधानयुक्तान् यस्मात्तस्माद् भवेदङ्कः ॥
> यत्रार्थस्य समाप्तिर्यत्र च बीजस्य भवति संहारः ।
> किञ्चिदवलग्नबिन्दुः सोऽङ्क इति सदावगन्तव्यः ॥

इतिश्रीद्रोणाश्रमवास्तव्यश्रीमदच्युतानन्दशर्मतनुजन्मश्रीपरमेश्वरानन्दशर्मकृतायां प्रतिमानाटकव्याख्यायां प्रथमोऽङ्कः समाप्तः ॥१॥

लक्ष्मण—आर्य !

—चीरमात्र लपेटे हुए हम वनवासियों को क्या देखना ?

राम—हमारे चले जाने पर महाराज हमारे शिरःसदृश आत्मीय जनों की उचित देखभाल रक्खेंगे ॥३१॥

[सब का प्रस्थान]

अथ द्वितीयोऽङ्कः ।

[ततः प्रविशति काञ्चुकीयः]

काञ्चुकीयः—भो भोः प्रतिहारव्यापृताः ! स्वेषु स्वेषु स्थानेष्वप्रमत्ता भवन्तु भवन्तः ।

[प्रविश्य]

प्रतिहारी—अय्य ! किं एदं । आर्य ! किमेतत् ।

काञ्चुकीयः—एष हि महाराजः सत्यवचनरक्षणपरो राममरण्यं गच्छन्तमुपावर्तयितुमशक्तः पुत्रविरहशोकाग्निना दग्धहृदय उन्मत्त इव बहु प्रलपन् समुद्रगृहके शयानः,

---

कैकेय्या वरप्रार्थनया रामः सीतालक्ष्मणाभ्यां सह वनं जगामेति वृत्तं प्रथमाङ्के वर्णितम् । अथ पुत्रविरहातुरस्य महाराजस्य विलापं स्वःप्रयाणं च वर्णयितुं द्वितीयमङ्कमारभते । तत्र पूर्वं प्रतिज्ञापरवशस्य अरण्यप्रवासाद् रामं विनिवर्तयितुमक्षमस्य महाराजदशरथस्य शोकजन्यप्रलापाद्यवस्थां मिश्रविष्कम्भकेण वर्णयितुं काञ्चुकीयं प्रवेशयति—**तत** इति । **काञ्चुकीय**लक्षणं यथा—'ये नित्यं सत्यसम्पन्नाः कामदोषविवर्जिताः । ज्ञानविज्ञानकुशलाः काञ्चुकीयास्तु ते स्मृताः ॥' इति । **भो भो** इति—**प्रतिहारव्यापृताः** प्रतिहारे द्वारि, व्यापृताः कार्यसंलग्नाः, द्वारपाला इत्यर्थः । **अप्रमत्ताः** सावधानाः । **प्रतिहारी** द्वाररक्षिका । **आर्येति**—**किमेतत्** किमर्थमयं विशिष्य सावधानतानिदेश इति भावः । **एष** इति—**सत्यवचनरक्षणपरः** सत्यवचनस्य, रक्षणम् अनन्यथाकरणम् परमिष्टं यस्य तादृशः । हेतुगर्भविशेषणम् । सत्यपालनहेतोरिति भावः । **उपावर्तयितुम्** निवर्तयितुम् । **पुत्रविरहशोकाग्निना** पुत्रस्य, विरहः वियोगः, तेन शोकः, स एवाग्निः,

---

दूसरा अंक

[कंचुकी का प्रवेश]

कंचुकी—ऐ द्वारपालो ! आप लोग अपने स्थानों पर चौकस हो जाओ ।

[प्रतिहारी का प्रवेश]

प्रतिहारी—आर्य ! यह क्या ?

मेरुश्चलन्निव युगक्षयसन्निकर्षे
शोषं व्रजन्निव महोदधिरप्रमेयः ।
सूर्यः पतन्निव च मण्डलमात्रलक्ष्यः
शोकाद् भृशं शिथिलदेहमतिर्नरेन्द्रः ॥१॥

तेन, **दग्धहृदयः** दग्धम् भस्मीकृतम्, निरतिशयदुःखाक्रान्तमित्यर्थः, हृदयम् मनः, यस्य तादृशः, **उन्मत्त इव** सञ्जातोन्माद इव, **प्रलपन्** यत् किञ्चिन्निरर्थकं वाक्यमुच्चारयन् ['प्रलापोऽनर्थकं वचः' इत्यमरः, 'लक्षण-हेत्वोः क्रियायाः' इत्यनेन शतृप्रत्ययः, एवमुत्तरत्र शयान इत्यादिष्वपि बोध्यम्], **समुद्रगृहके** [सम्यग्, उनत्ति जलनिक्षेपणेन आर्द्रीकरोति, इति समुद्रम्, 'स्फायितञ्चि–' इत्यादिनौणादिको रक्प्रत्ययः, गृहमेव गृहकम्, स्वार्थे कः, समुद्रं च तद् गृहकम्, तस्मिन्] प्रासादनिष्कुटेषु ग्रीष्मसन्तापनिवारणार्थं कृते जल-यन्त्रगृह इत्यर्थः ['समुद्रगृहमित्युक्तं जलयन्त्रनिकेतनम्' इति हारावली]।

"**मेरु**"रिति—**युगक्षयसन्निकर्षे** युगस्य क्षयो युगक्षयः, तस्य प्रलयस्य, सन्निकर्षे सन्निधाने प्रलयकाले सन्निहित इत्यर्थः, **चलन्** कम्पमानः, **मेरुरिव** सुमेरुपर्वत इव, **शोषम्** शुष्कताम्, **व्रजन्** प्राप्नुवन्, **अप्रमेयः** प्रमातुं योग्यः प्रमेयः, न प्रमेयोऽप्रमेयः अतिमहत्त्वाद् इयानयमिति परि-च्छेदानर्हः, **महोदधिरिव** उदकानि धीयन्तेऽस्मिन्नित्युदधिः ['करणाधिकर-णयोश्च' इति किः, उदकस्योदादेशः] महांश्चासावुदधिः महासागर इव । किं **च**, **पतन्** अस्तं गच्छन्, अत एव **मण्डलमात्रलक्ष्यः** मण्डलमेवेति मण्डलमात्रम् [मयूरव्यंसकादित्वात् समासः], मण्डलमात्रेण तेजोरहित-बिम्बमात्रेण, लक्ष्यः दृश्यः, **सूर्य इव** रविरिव, स्थितः, **नरेन्द्रः** महाराजो

कंचुकी—क्या बताऊँ ? ये अपने सत्य वचनों का पालन करते हुए महाराज, राम को वन जाने से लौटा न सके। अब पुत्र-बिछोह-शोक की अग्नि से दग्ध-हृदय हो पागल की भाँति बहुत बक-बक करते, समुद्र-गृह में लेटे हुए,

—महाप्रलय के समय युगों का अवसान समीप आया जान, सुमेरु पर्वत-जैसे डगमगाते हुए, अथाह महासागर-जैसे सूखा चाहते हुए, केवल मण्डल (गोलाकार) ही से प्रत्यक्ष हो रहे सूरज की भाँति लुढ़कते हुए महाराज दशरथ अपार शोक के आ दबाने से तन क्षीण, मति विहीन हुए जा रहे हैं ॥१॥

प्रतिहारी—हा हा एव्वंगओ महाराओ ।
　　　हा हा एवंगतो महाराजः ।

काञ्चुकीयः—भवति ! गच्छ ।

प्रतिहारी—अय्य ! तह । [निष्क्रान्ता] 　आर्य ! तथा ।

काञ्चुकीयः—[सर्वतो विलोक्य] **अहोतुखलु रामनिर्गमन-दिनादारभ्य शून्यैवेयमयोध्या संलक्ष्यते । कुतः,**

दशरथः, **शोकात्** पुत्रविरहजनितात् सन्तापात्, **भृशम्** अत्यन्तम्, **शिथिलदेहमतिः** शिथिलौ श्लथौ कार्यकरणाक्षमौ, देहः शरीरम्, मतिः बुद्धिः यस्य तादृशः, अस्तीति शेषः । यथा युगान्तकाल उपस्थिते सुदृढ-विशालोऽपि मेरुरस्थिरो भवति स्वस्थानाच्च्यवते, तथैव चतुर्दशवर्षावधिक-पुत्रविरहसन्तापे समुपस्थिते सुदृढविशालशरीरोऽपि महाराजोऽधैर्यादस्थिरी-भवति । यथा वा महाप्रलये महासागरोऽपि जलशून्यो भवति, तथैवेदानीं महाराजस्य मतिर्विचारशून्या सञ्जाता । यथा वा अस्तं गच्छतो रवेर्बिम्बं रश्मीनां संहरणात् प्रतापशून्यं भवति, तथैवेदानीं महाराजशरीरमपि रुधिर-मांसास्थिमात्रं तेजोविवर्जितं लक्ष्यत इति भावः । एकस्य नरेन्द्रस्योपमेयस्य मेरुपर्वताद्यनेकोपमानोपादानान्मालोपमा । शिथिलदेहमतित्वस्योपमेयधर्मस्य चलनशोषणादिभिरुपमानधर्मैर्बिम्बप्रतिबिम्बभावो बोध्यः । महाराजनिष्ठो दैन्यातिशयो व्यङ्ग्यः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥१॥

हा हेति—**एवम्** ईदृशीमवस्थाम्, **गतः** प्राप्तः । **भवती**ति—**भवति !** संबोधने रूपम् । **अहो** इति—अहो इति विस्मयसूचकमव्ययम्, तुशब्दोऽव-धारणे ['साम्येऽहो ही च विस्मये' 'तु स्याद् भेदेऽवधारणे' इत्युभयत्रामरः] । खलुशब्दश्चेह वाक्यालङ्कारे । **रामनिर्गमनदिनाद्** रामस्य निर्गमनम् वनगम-नम्, तस्य दिनम्, तस्माद् । प्रभृत्यर्थस्य 'आरभ्य'शब्दस्य योगे पञ्चमी । **आरभ्य** प्रभृति, एकव्यक्तिनिर्गमेऽयोध्याया नगर्याः शून्यत्वभानमेव विस्मयस्य हेतुः । एतेन रामस्य सकलपौरजनप्रियत्वम्, तद्विरहेण सकल-पुरवासिनां शोकाक्रान्तत्वं च व्यञ्जितम् । रामवियोगेनायोध्यायाः शून्यत्वं प्रति-पादयितुं प्रश्नयति—**कुत** इति ।

प्रतिहारी—हाय ! हाय ! महाराज की ऐसी दशा !

कंचुकी—श्रीमती ! जाओ ।

प्रतिहारी—जाती हूँ ।

कंचुकी—[चारों ओर देखकर] **ओह ! जिस दिन से राम (वन को) गये, यह सारी अयोध्या सुनसान ही हो गई । क्योंकि,**

नागेन्द्रा यवसाभिलाषविमुखाः सास्रेक्षणा वाजिनो
हेषाशून्यमुखाः सवृद्धवनिताबालाश्च पौरा जनाः ।
त्यक्ताहारकथाः सुदीनवदनाः क्रन्दन्त उच्चैर्दिशा
रामो याति यया सदारसहजस्तामेव पश्यन्त्यमी ॥२॥

यावदहमपि महाराजस्य समीपवर्ती भविष्यामि । [परिक्रम्यावलोक्य] अये अयं महाराजो महादेव्या सुमित्रया च सुदुःसहमपि पुत्रविरहसमुद्भवं शोकं निगृह्यात्मानमेव संस्थापयन्तीभ्यामन्वास्यमानस्तिष्ठति । कष्टा खल्ववस्था वर्तते । एष एष महाराजः,

---

"**नागेन्द्रा**" इति—अमी, **यवसाभिलाषविमुखाः** यवसस्य घासस्य ['घासो यवसम्' इत्यमरः], अभिलाषः इच्छा, ततो विमुखाः पराङ्मुखाः शोकात् त्यक्ततृणचरणा इति भावः, **नागेन्द्राः** करिणः, **सास्रेक्षणाः** अस्रैः अश्रुभिः सहिते ईक्षणे नेत्रे येषां तादृशाः, **हेषाशून्यमुखाः** हेषया अश्वशब्देन, शून्यानि रहितानि, मुखानि, येषां तादृशाः, **वाजिनः** अश्वाः, **त्यक्ताहारकथाः** त्यक्ता, आहारस्य भोजनस्य, कथापि आलापोऽपि यैस्ते, रामवियोगाद् भोजनविषयिणी चर्चापि तैस्त्यक्ता, दूरे तु भोजनकरणमिति भावः, **सुदीनवदनाः** सुदीनम् अतिक्षीणम् कान्तिहीनम्, वदनम् मुखं येषां तादृशाः, **उच्चैः** तारस्वरेण, **क्रन्दन्तः** आक्रोशन्तः, **सवृद्धवनिताबालाः** वृद्धाश्च, वनिताश्च स्त्रियश्च, बालाश्च, तैः सह वर्तन्त इति तादृशाः, **पौराः** पुरवासिनः, **जनाश्च**, **तामेव**, दिशम्, **पश्यन्ति** अवलोकयन्ति, **यया**, **दिशा**, **सदारसहजः** दारैः भार्यया सीतया, सहजेन भ्रात्रा लक्ष्मणेन च सहितः, **रामः**, **याति** वनं गच्छति । नागेन्द्रादीनां यवसाभिलाषविमुखत्वाद्यसम्बन्धेऽपि सम्बन्धाभिधानादतिशयोक्तिः । अत्रापि पुरवासिनां दैन्यमभिव्यज्यते । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥२॥

यावदिति—महादेव्या पट्टराज्ञ्या कौसल्यया । **पुत्रविरह-**

—गजराजों ने घास की चाह छोड़ दी । घोड़ों ने आँसुओं से डबडबाती आँखों को लिये मुँह से हिनहिनाना छोड़ दिया । नगरके बूढ़े, स्त्रियाँ, बच्चे और पुरुष सब ने भोजन की बात ही छोड़ दी; जोर जोर से रो-रोकर सब का मुँह उतर (मुरझा) गया है । जिस ओर सीता और लक्ष्मण सहित राम गये हैं, सब की आँखें एक-टक उसी ओर लगी हैं ॥२॥

पतत्युत्थाय चोत्थाय हा हेत्युच्चैर्लपन् मुहुः ।
दिशं पश्यति तामेव यया यातो रघूद्वहः ॥३॥

[निष्क्रान्तः]

मिश्रविष्कम्भकः ।

समुद्भवम् पुत्रस्य, विरहाद् वियोगात्, समुद्भवः समुत्पत्तिर्यस्य तादृशम् ['अवर्ज्यो बहुव्रीहिर्जन्माद्युत्तरपदः' इत्यभियुक्तोक्त्या व्यधिकरणबहुव्रीहिः]। **संस्थापयन्तीभ्याम्** धैर्येण धारयन्तीभ्याम्, **अन्वास्यमानः** आलम्ब्यमानः । **एष महाराज** इति वक्ष्यमाणपद्यान्वयि ।

"**पतती**"ति—एष महाराजः, **उत्थाय उत्थाय** पुनः पुनरुत्थानं कृत्वा, **हा हा** हा राम ! हा राम ! **इति मुहुः** भूयो भूयः, **उच्चैः** तारस्वरेण, **लपन्** उच्चारयन्, **पतति** । किं च, **यया** दिशा, **रघूद्वहः** रामः, **यातः** वनाय प्रस्थितः, **तामेव, दिशम्** हरितम्, **पश्यति** अवलोकते । अत्र पुत्रवियोगजन्यो दशरथनिष्ठः शोकः स्थायी प्राधान्येन व्यज्यते । अत एव करुणोऽत्र रसः । शोकलक्षणं यथा रसगङ्गाधरे—पुत्रादिवियोगमरणादिजन्मा वैक्लव्याख्यश्चित्तवृत्तिविशेषः शोकः । वनप्रस्थितो राम आलम्बनम् । भूपातहाहालापादयोऽनुभावाः । विषादादयो व्यभिचारिणः । अनुष्टुप् ॥३॥

मिश्रविष्कम्भक इति । तल्लक्षणं यथा—'वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः । संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः ॥ एकानेककृतः शुद्धः सङ्कीर्णो नीचमध्यमैः ॥' इति । सङ्कीर्णो मिश्रः ।

अच्छा, अब मैं भी महाराज के पास चलूँ। [घूमकर और देखकर] **एं ! महाराज तो ये रहे । कौसल्या और सुमित्रा, बहुत ही असह्य भी पुत्र-विरह के दारुण शोक को रोककर अपने आपको ही धीरज बँधाती हुई, इनकी सेवा में तत्पर हैं । कैसी मर्मभेदी दशा है ? ये ये महाराज, —उठ-उठकर बार बार हाय ! हाय ! इस तरह ऊँचे चिल्लाते हुए, लड़खड़ाकर गिर पड़ते हैं, और उसी ओर एक-टक देख रहे हैं, जिस ओर राम गये हैं ॥३॥**

[प्रस्थान]

मिश्रविष्कम्भक

[ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो राजा देव्यौ च]

राजा—

हा वत्स ! राम ! जगतां नयनाभिराम !
हा वत्स ! लक्ष्मण ! सलक्षणसर्वगात्र ! ।
हा साध्वि ! मैथिलि ! पतिस्थितचित्तवृत्ते !
हा हा गताः किल वनं वत मे तनूजाः ॥४॥

चित्रमिदं भोः, यद् भ्रातृस्नेहात् पितरि विमुक्तस्नेहमपि तावल्लक्ष्मणं द्रष्टुमिच्छामि । वधु ! वैदेहि !

अथ शोकाक्रान्तं महाराजं प्रवेशयति—**तत** इति ।

"**हा वत्स**" इति—**हा, वत्स !** पुत्र !, **जगताम्** लोकानाम्, **नयनाभिराम** नयनयोः नेत्रयोः, अभिराम रमणीय, स्वसौन्दर्यसौशील्यादिना नेत्रानन्दकरेत्यर्थः । **हा, वत्स, सलक्षणसर्वगात्र** सलक्षणानि सामुद्रिकशास्त्रोक्तभद्रपुरुषचिह्नोपेतानि, सर्वाणि, गात्राणि पाणिपादादिशरीरावयवा यस्य तादृश ! **लक्ष्मण ! हा, साध्वि** पतिव्रते ! [साधुशब्दाद् 'वोतो गुणवचनाद्' इति ङीप्, संबुद्धौ नदीत्वाद् ह्रस्वः] अतएव **पतिस्थितचित्तवृत्ते** पत्यौ स्वपतौ रामे, स्थिता अनन्यभावेन संलग्ना, चित्तस्य, वृत्तिः, यस्याः, तादृशि [संबोधने रूपम्], **मैथिलि** सीते, **हा हा वत, मे** मम चक्रवर्तिनोऽपि, **तनूजाः** पुत्राः [सीतापि पुत्रवधूत्वाद् दशरथस्य तनुजाकल्पैव, अतएव बहुवचनम् । 'पुमान् स्त्रिया' इति पुंस एकशेषः], **वनम्, गताः** प्रस्थिताः, **किल** । अत्रापि दशरथशोक एव प्राधान्येनाभिव्यङ्ग्यः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥४॥

चित्रमिति—यद्, **भ्रातृस्नेहाद्** भ्रातरि स्वज्येष्ठे रामे, स्नेहाद् अनुरागाद्, हेतोः, **पितरि** मयि स्वजनकेऽपि, **विमुक्तस्नेहम्** विमुक्तः विशिष्य त्यक्तः, स्नेहः अनुरागः, येन तादृशमपि, **लक्ष्मणम्, तावद्, द्रष्टुमिच्छामि, इदम्** स्वस्मिन्नितरामननुरक्तस्यापि दर्शनेच्छेत्यर्थः, **चित्रम्** आश्चर्यमिति पदयोजना । **वधु वैदेही**ति पदद्वयमुत्तरपद्यान्वयि । उभयत्र नदीत्वात् संबुद्धौ ह्रस्वः ।

[वर्णित रूप में राजा और देवियों का प्रवेश]

राजा—हाय प्यारे बच्चे राम ! संसार की आँखों के प्यारे ! हाय प्यारे बच्चे लक्ष्मण ! उत्तम लक्षणों से युक्त सर्वाङ्ग वाले ! हाय सुचरित्रशालिनी मैथिली ! अपने पति पर स्थिर चित्तवृत्ति वाली ! हाय ! हाय ! शोक ! मेरे लाड़ले, सचमुच, वन को चले ही गये ? ॥४॥

रामेणापि परित्यक्तो लक्ष्मणेन च गर्हितः ।
अयशोभाजनं लोके परित्यक्तस्त्वयाप्यहम् ॥५॥

पुत्र राम ! वत्स लक्ष्मण ! वधु वैदेहि ! प्रयच्छत मे प्रतिवचनं पुत्रकाः ! । शून्यमिदं भोः ! न मे कश्चित् प्रतिवचनं प्रयच्छति । कौसल्यामातः ! क्वासि ।

सत्यसन्ध ! जितक्रोध ! विमत्सर ! जगत्प्रिय !
गुरुशुश्रूषणे युक्त ! प्रतिवाक्यं प्रयच्छ मे ॥६॥

"**रामेणापी**"ति—**हे वधु** स्नुषे, **वैदेहि** सीते, **रामेणापि** निरतिशयपितृभक्तिपरायणेनापि रामचन्द्रेण, **परित्यक्तः** नितरां त्यक्तः । **लक्ष्मणेन च** लक्ष्मणेनापि, **गर्हितः** मां परित्यज्य ज्येष्ठानुवृत्त्या निन्दां प्रापितः । **त्वयापि** गुरुशुश्रूषणपरया भवत्यापि, **परित्यक्तः, अहम्, लोके** जगति, **अयशोभाजनम्** अयशसः दुष्कीर्त्तेः, भाजनम् पात्रम्, जात इति शेषः । भद्रा यं परित्यजन्ति दुर्यशस्तस्य लोके जायते । अतएव युष्माभिर्भद्रवृत्तैः परित्यक्तोऽहमद्य दुर्यशोभाजनं भवामीति भावः । अनुष्टुप् छन्दः ॥५॥

पुत्र रामेति—**प्रयच्छत** दत्त । **प्रतिवचनम्** प्रत्युत्तरम् । **शून्यमिदम्** स्थानमिति शेषः । **कौसल्यामातः** हे राम [कौसल्या माता यस्य सः । सम्बोधने रूपम् । निर्विसर्गपाठ एव साधीयान् इति पुरस्तात् प्रतिपादितम्] ।

"**सत्यसन्धे**"ति—**सत्यसन्ध** सत्या अवितथा, सन्धा प्रतिज्ञा

ओह ! यह कैसा आश्चर्य है कि जिस लक्ष्मण ने भ्रातृ-स्नेह के कारण पितृ-स्नेह को तिलाञ्जलि दे दी, किन्तु फिर भी उसे देखने के लिए मैं इतना तरस रहा हूँ । ऐ बहू ! ऐ वैदेही !

—राम ने भी मुझे तज दिया, लक्ष्मण ने मुझे दुतकार दिया । संसार में अपयश के भागी मुझको क्या तुम भी परित्याग कर चल दीं ! ॥५॥

बेटा राम ! वत्स लक्ष्मण ! बहू वैदेही ! मेरे प्यारे बच्चो ! मेरे वचनों का उत्तर दो । उफ़ ! यहाँ तो सुनसान है । मेरे वचनों का कोई उत्तर ही नहीं दे रहा । कौसल्या के लाल ! तुम कहाँ हो ?

—ऐ सत्य प्रतिज्ञा वाले ! ऐ क्रोध को जीतने वाले ! ऐ मात्सर्य-शून्य ! ऐ जगत् के प्यारे ! ऐ गुरुजनों की शुश्रूषा में लीन रहने वाले ! मुझे प्रतिवचन दो ॥६॥

हा क्वासौ सर्वजनहृदयनयनाभिरामो रामः, क्वासौ मयि गुर्वनुवृत्तिः। क्वासौ शोकार्तेष्वनुकम्पा। क्वासौ तृणवदगणितराज्यैश्वर्यः। पुत्र ! राम ! वृद्धं पितरं मां परित्यज्य किमसम्बद्धेन धर्मेण ते कृत्यम्। हा धिक्। कष्टं भोः !

यस्य तादृश। **जितक्रोध** जितः स्वायत्तीकृतः, क्रोधः अमर्षः, येन तादृश। **विमत्सर** विगतः, मत्सरः अन्यशुभद्वेषो यस्य, तादृश। अतएव **जगत्प्रिय** जगताम् समस्तप्रजानामित्यर्थः, प्रिय प्रेमपात्र, **गुरुशुश्रूषणे** पित्रादिवृद्धजनपरिचरणे, **युक्त** तत्पर, **मे** मह्यम्, **प्रतिवाक्यम्** प्रतिवचनम्, **प्रयच्छ** देहि। हे राम ! त्वं पितृवचनं सत्यापयितुं कष्टबहुलमपि वनं चतुर्दशवर्षकृते प्रस्थितोऽस्यत एव त्वं सत्यसन्धोऽसि। त्वां राज्याभिषेकाद् भ्रंशयित्वा वनं प्रस्थापयित्रोर्मयि स्वमध्यमाम्बायां च तव मनागपि क्रोधो नोत्पन्नः, अतस्त्वं जितक्रोधोऽसि। त्वत्स्थाने भरतस्य राज्याभिषेकघोषणया च तव भरतविषये न किमपि मात्सर्यमजनीति त्वं विमत्सरोऽसि। अतएवानन्यसुलभैरेतैर्गुणैः सर्वे लोकास्त्वय्यनुरक्ताः। न केवलं प्रजा एव त्वय्यनुरक्ताः, अपि तु गुरुशुश्रूषणतत्परतया तव जनन्योऽहं च त्वय्यनुरज्यामः। एतादृग्गुणगणविशिष्टस्त्वं मया संबोध्यसे, प्रतिवचनं देहीति भावः ॥६॥

हा क्वेति—सर्वजनहृदयनयनाभिरामः हृदयं च नयने च हृदयनयनम्, प्राण्यङ्गत्वादेकवद्भावः, सर्वेषाम्, जनानाम्, हृदयनयनस्य, अभिरामः रमणीयः प्रीत्युत्पादकः, **असौ, रामः, क्व** क्व गत इति भावः। **मयि** मद्विषये ममेति भावः, **असौ** प्राक्तनीति भावः, **गुर्वनुवृत्तिः** गुर्वी महती, अनुवृत्तिः अनुरक्तिः, **क्व** क्व गतेत्यर्थः। हे राम त्वमितः प्राक् मां सर्वात्मनान्ववर्तथाः, तत्ते मदनुवर्तनमद्य क्व गतं यदाहूयमानोऽपि मया न प्रतिवचनं प्रतिपद्यस इति भावः। अथवा गुर्वी अनुवृत्तिर्यस्य स इति बहुव्रीहिणा रामविशेषणमिदम्। **असौ, शोकार्तेषु** शोकेन, आर्तेषु पीडितेषु,

---

हाय ! कहाँ है वह सब लोगों के हृदयों का दुलारा, नयनों का तारा राम ? कहाँ है आज वह मुझ पर गुरुभक्ति रखने वाला ? कहाँ है वह शोक-पीड़ितों पर दयालुता दिखलाने वाला ? कहाँ है वह राज्य के ऐश्वर्य को तिनके की भाँति ठुकराने वाला ? बेटा राम ! मुझ बूढ़े पिता को तजकर झूठे धर्म से तुम्हारी क्यों इतनी लगन ? हाय ! धिक्कार ! ओह ! कैसा दारुण दुःख ?

सूर्य इव गतो रामः सूर्यं दिवस इव लक्ष्मणोऽनुगतः ।
सूर्यदिवसावसाने छायेव न दृश्यते सीता ॥७॥

[ऊर्ध्वमवलोक्य] भोः कृतान्तहतक !

अनपत्या वयं रामः पुत्रोऽन्यस्य महीपतेः ।
वने व्याघ्री च कैकेयी त्वया किं न कृतं त्रयम् ॥८॥

अनुकम्पा दया, क्व ? । हे राम ! शोकपीडितेषु दया तव स्वभाव आसीत् । अद्य ते सा क्व विलुप्ता, यच्छोकार्तं स्वपितरमपि मां न संभावयसि इति भावः । **तृणवदगणितराज्यैश्वर्यः** तृणवत् तृणेन तुल्यम्, अगणितम् अनादृतम् अबहुमतम्, राज्यस्य राज्यसम्बधि, ऐश्वर्यम् वैभवम्, येन तादृशः, सर्वसम्पद्वितृष्ण इति भावः । रामस्य विशेषणम् । **वृद्धमिति**— **असम्बद्धेन** असङ्गतेन, वनप्रवासो नाम परिपक्वकषायस्य प्रवयसो धर्मः, न पुनरचिरपरिणीतस्य त्वादृशस्य यूनः, तथा च वृद्धधर्मस्य त्वया यूना निषेवणं सुतरामसङ्गतमिति भावः । **कृत्यम्** प्रयोजनम् ।

"**सूर्य इवे**"ति—**रामः** रामचन्द्रः, **सूर्य इव** रविरिव, **गतः** वनं गतः, सूर्यपक्षे—अस्तमुपेतः । तं गतं रामम्, **सूर्यम्**, **दिवस इव** दिनमिव **लक्ष्मणः**, **अनुगतः** अनुप्रयातः । यथास्तं यन्तं रविमनु दिनमप्यस्तमेति, तथैव वनं यान्तं रामं लक्ष्मणोऽप्यनुयात इति भावः । **सूर्यदिवसावसाने** सूर्यदिवसयोः अवसाने अन्ते अदर्शन इत्यर्थः, **छायेव** प्रतिबिम्बमिव, **सीता** जानक्यपि, **न दृश्यते** नावलोक्यते । सूर्यदिवसयोरदर्शने यथा तदनुगामिनी छायाप्यदृष्टा भवति, तथैव रामलक्ष्मणयोरदर्शने तदनुवर्तिनी सीतापि न दृश्यते, सापि तावेवानुगतेति भावः । उपमालङ्कृतिः । आर्या छन्दः ॥७॥

भो इति—**कृतान्तहतक !** दुष्टयम ! [हतकः कृतान्त इति कृतान्तहतक इति विग्रहः, 'कुत्सितानि कुत्सनै'रित्यनेन समासः] । उत्तरपद्यान्वयीदम् ।

"**अनपत्या**"इति—भो कृतान्तहतक ! **त्वया**, **त्रयम्** एतत् कर्मत्रयम्;

—सूरज की भाँति राम चला गया। सूरज के पीछे पीछे दिन की भाँति लक्ष्मण भी चला गया। सूरज और दिवस के अवसान में छाया की भाँति सीता भी अदृश्य (ओझल) हो गई ॥७॥

[ऊपर की ओर देखकर] **अरे दुर्दैव !**

—(इससे तो) तूने हमें निःसन्तान, राम को किसी दूसरे राजा का पुत्र, कैकेयी को वन की बाघिन—ये तीन काम क्यों न कर दिये ? ॥८॥

कौसल्या—[सरुदितम्] **अलं दाणि महाराओ अदिमंत्तं[1] सन्तप्पिअ परवसं अत्ताणं कादुं । णं सा ते अ कुमारा महाराअस्स समआवसाणे पेक्खिदव्वा भविस्सन्ति ।**

किम् कस्माद्धेतोः, **न कृतम्** नानुष्ठितम् । किं तत् कर्मत्रयमिति जिज्ञासायामाह—**अनपत्या** इति । **वयम्, अनपत्याः** न अपत्यं येषां तादृशाः अपुत्राः, न कृताः । यदि पुत्रवियोगेनैव नः क्लेशयितुमैच्छः, तर्हि पुत्रानेव नः किमित्युदपीपदः ? अजाता अपि पुत्राः पितरौ क्लेशयन्त्येवेति तथापि ते मनोरथः सिध्येदेवेति भावः । **रामः, अन्यस्य** मद्भिन्नस्य, **महीपतेः** राज्ञः, **पुत्रः**, न कृतः । यदि च जातवियुक्ताः पुत्रा अतिशयेन तापयन्तीति कृत्वा त्वया वयं सपुत्राः कृताः, तर्हि सर्वलोकाभिरामो रामः किमिव नः पुत्रतां नीतः । कञ्चन साधारणं सुतमुत्पाद्य तद्वियोगेनैव नः सन्ताप्य स्वमनोरथं कुतो न पूरितवानसि ? पितरौ तु साधारणस्यापि पुत्रस्य वियोगेन सन्ताप्येते एव । यदि च रम्यगुणास्पदं रामोऽस्माकं पुत्रो नाभविष्यत्, तर्हि नासौ निरपराधः कवचहरो राज्याद् भ्रंशयित्वा श्वापदबहुले वने प्रावासयिष्यतेति भावः । किं **च, कैकेयी, वने** अरण्ये, **व्याघ्री** न कृता । इयं खलु कैकेयी केकयराजकुले स्त्रीरूपेण व्याघ्री समुत्पन्ना, यद्वशाद् रामो वने प्रस्थापितः । अस्यास्तु वने व्याघ्रीरूपेणैव जन्मोचितमासीत् । यदि सा व्याघ्र्यभविष्यत्, तर्हि न तया नः सम्बन्धोऽभविष्यत्, न वा रामस्य वनप्रवासावसरः, तेनास्माकं क्लेशश्चाजनिष्यतेति भावः । सन्तापादिप्रस्तुतमवर्णयित्वा तत्कारणस्यानपत्यत्वादेर्वर्णनादप्रस्तुतप्रशंसा ॥८॥

अलमिति—अतिमात्रम् अत्यन्तम् । स्वात्मानं पराधीनतां नेतुं महाराजेनात्यधिकं सन्तापो न कर्तव्य इति भावः । अत्र व्याख्यायां महाराज इति प्रथमा नोपपद्यते । अनुक्तकर्तरि तृतीयाया उचितत्वाद् । अतएव गणपतिशास्त्रिणः—अलमिति समर्थपर्यायं मत्वा 'महाराजोऽतिमात्रं सन्ताप्य

कौसल्या—[रोती हुई] **महाराज ! अब बस करो । बहुत विलाप करके अपने आपको शोकाकुल न करो । चौदह बरस बीतने पर सीता और उन दोनों राजकुमारों को महाराज देख लेंगे ।**

---

१ अदिमत्तं सोअस्स अत्ताणं दादुं (अतिमात्रं शोकस्यात्मानं दातुम्).

अलमिदानीं महाराजोऽतिमात्रं सन्तप्य परवशमात्मानं कर्तुम् । ननु सा तौ च कुमारौ महाराजस्य समयावसाने प्रेक्षितव्या भविष्यन्ति ।

राजा—का त्वं भोः ! ।

कौसल्या—असिणिद्धपुत्तप्पसविणी खु अहं ।

अस्निग्धपुत्रप्रसविनी खल्वहम् ।

राजा—किं किं सर्वजनहृदयनयनाभिरामस्य रामस्य जननी त्वमसि कौसल्या ।

कौसल्या—महाराअ ! सा एव मन्दभाइणी खु अहं ।

महाराज ! सैव मन्दभागिनी खल्वहम् ।

राजा—कौसल्ये ! सारवती खल्वसि । त्वया हि खलु रामो गर्भे धृतः ।

परवशमात्मानं कर्तुमलम् समर्थः किम्' इति प्रश्नकाक्वा व्याख्यातवन्तः । अत्र पक्षे 'पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु' इत्यनेन तुमुन् । महाराज इति प्रथमा चाध्याहृतास्तिक्रियाकर्तरि बोध्या । 'अदिमत्तं सोअस्स अत्ताणं दादुम्' इति । क्वचित् प्राकृतपाठः । 'अतिमात्रं शोकस्यात्मानं दातुम्' इति तत्संस्कृतम् । आत्मानम्, अतिमात्रं शोकार्तं कर्तुं नोचितमिति । **नन्विति—सा** सीता, **कुमारौ** रामलक्ष्मणौ । **समयावसाने** समयस्य चतुर्दशवर्षावधिरूपस्य, अवसाने अन्ते । **प्रेक्षितव्याः** प्रेक्षितुं शक्याः [शक्यार्थे तव्यप्रत्ययः । 'पुमान् स्त्रिया' इति पुंसः शेषः । महाराजस्येति प्रेक्षणकर्तरि षष्ठी] । चतुर्दशवर्षावधिसमाप्तौ महाराजो रामलक्ष्मणौ सीतां च द्रष्टुं समर्थो भविष्यत्येवेति नेदानीं महाराजेन शोकः कर्तव्य इति समस्तार्थः ।

अस्निग्धेति—अस्निग्धपुत्रप्रसविनी अस्निग्धस्य पितृस्नेहाभाजनस्य, पुत्रस्य, प्रसविनी उत्पादयित्री [प्रसविनीत्यत्र प्रसूतेः 'जिदृक्षि–' इत्यादिना 'इनिः'] । **किं किमिति—सर्वे**त्यादि पदं व्याख्यातपूर्वम् । **कौसल्ये** इति—**सारवती** सारः बलं धैर्यमस्या अस्तीति तादृशी पुत्र-

---

राजा—तुम कौन हो ?

कौसल्या—मैं हूँ उसी अप्रिय पुत्र को जन्म देने वाली ।

राजा—क्या ? क्या ? तुम सब लोगों के हृदयों के दुलारे, नयनों के तारे राम की माता कौसल्या हो ?

कौसल्या—महाराज ! हाँ, मैं वही मन्दभागिनी हूँ ।

राजा—कौसल्या ! नहीं, तुम धन्य धन्य हो । तुमने तो राम को गर्भ में धारण किया है ।

अहं हि दुःखमत्यन्तमसह्यं ज्वलनोपमम् ।
नैव सोढुं न संहर्तुं शक्नोमि मुषितेन्द्रियः ॥९॥

[सुमित्रां विलोक्य] **इयमपरा का ।**

कौसल्या—महाराअ ! वच्छलक्खण··· [इत्यर्धोक्ते]
महाराज ! वत्सलक्ष्मण···

राजा—[सहसोत्थाय] **क्वासौ क्वासौ लक्ष्मणः । न दृश्यते । भोः कष्टम् ।**
[देव्यौ ससंभ्रममुत्थाय राजानमवलम्बेते]

कौसल्या—महाराअ ! वच्छलक्खणस्स जणणी सुमित्तत्ति वत्तुं मए उवक्कन्दं ।
महाराज ! वत्सलक्ष्मणस्य जननी सुमित्रेति वक्तुं मयोपक्रान्तम् ।

वियोगदुःखसहनाद् धैर्यवतीति भावः । सारं प्रशस्तं वस्तु रामलक्ष्मणं तद्वतीति गणपतिशास्त्रिणः । कौसल्यायाः सारवत्त्वे हेतुमाह—**त्वयेति** ।

"**अहमि**"ति—**अहम्** दशरथः, **हि**रत्र वाक्यालङ्कारे [क्वचित्तु हिस्थाने 'तु' इति पाठः], **मुषितेन्द्रियः** मुषितानि अपहृतशक्तिकानि, इन्द्रियाणि चक्षुरादीनि यस्य तादृशः सन्, **अत्यन्तम्** निरतिशयम्, **असह्यम्** सोढुमशक्यम्, **ज्वलनोपमम्** ज्वलन उपमा यस्य तादृशम्, अग्निसदृशम्, **दुःखम्** पुत्रवियोगदुःखम्, **सोढुम्** मर्षयितुम्, **नैव शक्नोमि** न प्रभवामि । **न वा संहर्तुम्** प्रतिकारेण दूरीकर्तुम्, शक्नोमि । ज्वलनोपममित्युपमा । सहनसंहरणासामर्थ्ये मुषितेन्द्रियत्वं हेतुरिति काव्यलिङ्गम् ॥९॥

देव्याविति—ससंभ्रमम् सत्वरम्, **अवलम्बेते** धारयतः ।

—मन्दभागी मैं ही हूँ, जो प्रचण्ड अग्नि के समान अत्यन्त असह्य दुःख को न तो सहार सकता हूँ और न दूर ही कर सकता हूँ । सारी इन्द्रियाँ सुन्न हो गई हैं ॥९॥

[सुमित्रा की ओर देखकर] **यह दूसरी कौन है ?**

कौसल्या—महाराज वत्स लक्ष्मण··· ··· [इतना आधा कहते ही]

राजा—[एका-एक उठकर] **कहाँ है कहाँ है वह लक्ष्मण ? ओह ! अदृश्य हो गया । हाय ! कैसा दारुण दुःख है ?**

[दोनों रानियाँ हड़बड़ाहट के साथ उठकर राजा को सँभालती हैं]

कौसल्या—महाराज ! मैं तो यह कहने लगी थी कि यह वत्स लक्ष्मण की माता सुमित्रा है ।

राजा—अयि सुमित्रे !

तवैव पुत्रः सत्पुत्रो येन नक्तन्दिवं वने ।
रामो रघुकुलश्रेष्ठश्छाययेवानुगम्यते ॥१०॥

[प्रविश्य]

काञ्चुकीयः—जयतु महाराजः । एष खलु तत्रभवान् सुमन्त्रः प्राप्तः ।

राजा—[सहसोत्थाय सहर्षम्] अपि रामेण ।

काञ्चुकीयः—न खलु, रथेन ।

राजा—कथं कथं रथेन केवलेन । [इति मूर्च्छितः पतति]

देव्यौ—महाराअ ! समस्ससिहि समस्ससिहि ।

[गात्राणि परामृशतः]

महाराज ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

"तवैव" इति—तवैव भवत्या एव, पुत्रः सुतो लक्ष्मणः, सत्पुत्रः श्रेष्ठपुत्रः, अस्तीति शेषः । येन लक्ष्मणेन, छाययेव प्रतिबिम्बवत्, वने, नक्तन्दिवम् अहर्निशम् [नक्तं च दिवा चेति विग्रहे 'अचतुर—' इत्यादिनाच्-प्रत्ययान्तो निपात्यते], रघुकुलश्रेष्ठः रघूणां कुले श्रेष्ठः, रामः, अनुगम्यते अनुस्त्रियते । उपमालङ्कारः ॥१०॥

सहसेति—रामागमनसंभावनैव हर्षहेतुः । अपि रामेण रामेण सह प्राप्त इत्यर्थः । अपिः प्रश्ने । न खल्विति—न खल्वित्यस्य रामेण सहेति शेषः । रामेण सह नागत इत्यर्थः । रथेन शून्येन रथेन सहेत्यर्थः । महाराजेति—समाश्वसिहि धैर्यं कुर्वित्यर्थः ।

राजा—ऐ सुमित्रा !

—तेरा ही बेटा अच्छा बेटा है, जो छाया की भाँति रात-दिन वन में रघु-कुल-श्रेष्ठ राम का साथ दे रहा है ॥१०॥

[कंचुकी का प्रवेश]

कंचुकी—जय हो महाराज की ! ये आर्य सुमन्त्र आ पहुँचे हैं ।

राजा—[झटपट उठकर हर्ष के साथ] क्या राम के साथ ?

कंचुकी—नहीं तो, रथ लेकर ।

राजा—क्या ? क्या ? केवल खाली रथ लेकर ?

[मूर्च्छित होकर गिर पड़ता है]

दोनों रानियाँ—महाराज ! धीरज धरो, धीरज धरो ।

[महाराज के अंगों पर हाथ फेरती हैं]

काञ्चुकीयः—भोः ! कष्टम् । ईदृग्विधाः पुरुषविशेषा ईदृशीमापदं प्राप्नुवन्तीति विधिरनतिक्रमणीयः । महाराज ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि !

राजा—[किञ्चित् समाश्वस्य] बालाके ! सुमन्त्र एक एव ननु प्राप्तः ।

काञ्चुकीयः—महाराज ! अथकिम् ।

राजा—कष्टं भोः !

शून्यः प्राप्तो यदि रथो भग्नो मम मनोरथः ।
नूनं दशरथं नेतुं कालेन प्रेषितो रथः ॥११॥

तेन[1] हि शीघ्रं प्रवेश्यताम् ।

भो इति—**ईदृग्विधाः** एतादृशा महाराजदशरथसदृशाः । **पुरुषविशेषाः** सर्वसम्पच्छालिनो नरश्रेष्ठा अपि । **ईदृशीम्** अवर्णनीयाम् । **विधिः** दैवम् । **अनतिक्रमणीयः** अनुल्लङ्घनीयः । **बालाके**—**बालाकि**रिति काञ्चुकीयस्य नाम, तत्संबोधने 'बालाके' इति । अत्रापि प्रश्नकाकुः । **महाराजे**ति—**अथकि**मित्यङ्गीकारे ।

"शून्य" इति—**यदि**, **रथः**, **शून्यः** रामादिरहितः, **प्राप्तः**, **तर्हि**, **मम** दशरथस्य, **मनोरथः** अभिलाषः पुना रामादिदर्शनेच्छारूपः, **भग्नः** विनष्टः । **नूनम्** अहमुत्प्रेक्षे इत्यर्थः । **दशरथम्** माम्, **नेतुम्** अस्माल्लोकाद् गमयितुम्, **कालेन** मृत्युना, **रथः**, **प्रेषितः** प्रहितः । अतः परं नाहं जीविष्यामीति भावः । शून्यरथस्य मृत्युप्रेषितरथत्वसंभावनयोत्प्रेक्षा । भविष्यन्मृत्युरूपस्यार्थस्य भङ्ग्यन्तरेणावेदनात् पर्यायोक्तं च ॥११॥

तेनेति—**प्रवेश्यता**मित्यस्य सुमन्त्र इति शेषः ।

कंचुकी—हाय ! कैसा दारुण दुःख है ? इस प्रकार के महापुरुष भी ऐसी विपत्ति को पा जाते हैं । सचमुच, भवितव्यता किसी के टाले नहीं टलती । महाराज ! धीरज धरो, धीरज धरो ।

राजा—[कुछ सँभलकर] बालाकि ! क्या सुमन्त्र अकेला ही आया है ?

कंचुकी—जी हाँ, महाराज !

राजा—हा ! शोक !

—यदि रथ खाली लौटा है तो मेरा मनोरथ टुकड़े टुकड़े हो चला । निश्चय जान पड़ता है कि काल ने दशरथ को लिवा ले जाने के लिए ही यह रथ भेजा है ॥११॥

अच्छा तो शीघ्र ही अन्दर ले आओ ।

---

1 बालाके ! प्रवेशय तम्.

राजा—अयि सुमित्रे !

तवैव पुत्रः सत्पुत्रो येन नक्तन्दिवं वने ।
रामो रघुकुलश्रेष्ठश्छाययेवानुगम्यते ॥१०॥

[प्रविश्य]

काञ्चुकीयः—जयतु महाराजः । एष खलु तत्रभवान् सुमन्त्रः प्राप्तः ।

राजा—[सहसोत्थाय सहर्षम्] अपि रामेण ।

काञ्चुकीयः—न खलु, रथेन ।

राजा—कथं कथं रथेन केवलेन । [इति मूर्च्छितः पतति]

देव्यौ—महाराअ ! समस्ससिहि समस्ससिहि ।

[गात्राणि परामृशतः]

महाराज ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

"**तवैव**"इति—**तवैव** भवत्या एव, **पुत्रः** सुतो लक्ष्मणः, **सत्पुत्रः** श्रेष्ठपुत्रः, अस्तीति शेषः । **येन** लक्ष्मणेन, **छाययेव** प्रतिबिम्बवत्, **वने**, **नक्तन्दिवम्** अहर्निशम् [नक्तं च दिवा चेति विग्रहे 'अचतुर—' इत्यादिनाच्-प्रत्ययान्तो निपात्यते], **रघुकुलश्रेष्ठः** रघूणां कुले श्रेष्ठः, **रामः**, **अनुगम्यते** अनुस्रियते । उपमालङ्कारः ॥१०॥

सहसेति—रामागमनसंभावनैव हर्षहेतुः । **अपि रामेण** रामेण सह प्राप्त इत्यर्थः । अपिः प्रश्ने । **न खल्वि**ति—न खल्वित्यस्य रामेण सहेति शेषः । रामेण सह नागत इत्यर्थः । **रथेन** शून्येन रथेन सहेत्यर्थः । **महाराजे**ति—**समाश्वसिहि** धैर्यं कुर्वित्यर्थः ।

राजा—ऐ सुमित्रा !

—तेरा ही बेटा अच्छा बेटा है, जो छाया की भाँति रात-दिन वन में रघु-कुल-श्रेष्ठ राम का साथ दे रहा है ॥१०॥

[कंचुकी का प्रवेश]

कंचुकी—जय हो महाराज की ! ये आर्य सुमन्त्र आ पहुँचे हैं ।

राजा—[झटपट उठकर हर्ष के साथ] क्या राम के साथ ?

कंचुकी—नहीं तो, रथ लेकर ।

राजा—क्या ? क्या ? केवल खाली रथ लेकर ?

[मूर्च्छित होकर गिर पड़ता है]

दोनों रानियाँ—महाराज ! धीरज धरो, धीरज धरो ।

[महाराज के अंगों पर हाथ फेरती हैं]

काञ्चुकीयः—भोः ! कष्टम् । ईदृग्विधाः पुरुषविशेषा ईदृशीमापदं प्राप्नुवन्तीति विधिरनतिक्रमणीयः । महाराज ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि !
राजा—[किञ्चित् समाश्वस्य] बालाके ! सुमन्त्र एक एव ननु प्राप्तः ।
काञ्चुकीयः—महाराज ! अथकिम् ।
राजा—कष्टं भोः !

शून्यः प्राप्तो यदि रथो भग्नो मम मनोरथः ।
नूनं दशरथं नेतुं कालेन प्रेषितो रथः ॥११॥

तेन हि शीघ्रं प्रवेश्यताम्¹ ।

भो इति—**ईदृग्विधाः** एतादृशा महाराजदशरथसदृशाः । **पुरुषविशेषाः** सर्वसम्पच्छालिनो नरश्रेष्ठा अपि । **ईदृशीम्** अवर्णनीयाम् । **विधिः** दैवम् । **अनतिक्रमणीयः** अनुल्लङ्घनीयः । **बालाके**—बालाकिरिति काञ्चुकीयस्य नाम, तत्संबोधने 'बालाके' इति । अत्रापि प्रश्नकाकुः । **महाराजेति**—अथकिमित्यङ्गीकारे ।

"**शून्य**" इति—**यदि, रथः, शून्यः** रामादिरहितः, **प्राप्तः, तर्हि, मम** दशरथस्य, **मनोरथः** अभिलाषः पुना रामादिदर्शनेच्छारूपः, **भग्नः** विनष्टः । **नूनम्** अहमुत्प्रेक्षे इत्यर्थः । **दशरथम्** माम्, **नेतुम्** अस्माल्लोकाद् गमयितुम्, **कालेन** मृत्युना, **रथः, प्रेषितः** प्रहितः । अतः परं नाहं जीविष्यामीति भावः । शून्यरथस्य मृत्युप्रेषितरथत्वसंभावनयोत्प्रेक्षा । भविष्यन्मृत्युरूपस्यार्थस्य भङ्ग्यन्तरेणावेदनात् पर्यायोक्तं च ॥११॥

तेनेति—**प्रवेश्यतामि**त्यस्य सुमन्त्र इति शेषः ।

कंचुकी—हाय ! कैसा दारुण दुःख है ? इस प्रकार के महापुरुष भी ऐसी विपत्ति को पा जाते हैं । सचमुच, भवितव्यता किसी के टाले नहीं टलती । महाराज ! धीरज धरो, धीरज धरो ।
राजा—[कुछ सँभलकर] बालाकि ! क्या सुमन्त्र अकेला ही आया है ?
कंचुकी—जी हाँ, महाराज !
राजा—हा ! शोक !

—यदि रथ खाली लौटा है तो मेरा मनोरथ टुकड़े टुकड़े हो चला । निश्चय जान पड़ता है कि काल ने दशरथ को लिवा ले जाने के लिए ही यह रथ भेजा है ॥११॥

अच्छा तो शीघ्र ही अन्दर ले आओ ।

---

१ बालाके ! प्रवेशय तम्.

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः । [निष्क्रान्तः]

राजा—

धन्याः खलु वने वातास्तटाकपरिवर्तिनः ।
विचरन्तं वने रामं ये स्पृशन्ति यथासुखम् ॥१२॥

[ततः प्रविशति सुमन्त्रः]

सुमन्त्रः—[सर्वतो विलोक्य सशोकम्]

एते भृत्याः स्वानि कर्माणि हित्वा
स्नेहाद् रामे जातबाष्पाकुलाक्षाः ।

"धन्या" इति—**वने** अरण्ये, **तटाकपरिवर्तिनः** तटाकेषु जलाशयेषु, परिवर्तन्ते, इति तादृशाः जलाशयसन्निधौ प्रवहणशीलाः [जलाशयसान्निध्याद् वातानां शैत्यम्, सौगन्ध्यं च व्यज्यते], **वाताः** पवनाः, **धन्याः** सौभाग्यशालिन इत्यर्थः, सन्तीति शेषः । **ये** वाताः, **वने**, **विचरन्तम्** भ्रमन्तम्, **रामम्**, **यथासुखम्** सुखमनतिक्रम्य, यथा रामस्य सुखं भवेत् तथेत्यर्थः, **स्पृशन्ति** आश्लिष्यन्ति । रामचन्द्राश्लेषिणो वाता धन्यास्तच्छून्योऽहं त्वधन्य इति व्यतिरेकोऽत्र व्यङ्ग्यः ॥१२॥

"एते" इति—**रामे** रामविषये, **स्नेहाद्** अनुरागात्, **जातबाष्पाकुलाक्षाः** जातेन उत्पन्नेन, बाष्पेण अश्रुणा, आकुले व्याप्ते, अक्षिणी

कंचुकी—जो महाराज की आज्ञा । [प्रस्थान]

राजा—तालाबों में बहने वाली वन की हवाएँ ही धन्य हैं, जो वन में विचरते हुए राम को सुख-पूर्वक आलिङ्गन करती हैं ॥१२॥

[सुमन्त्र का प्रवेश]

सुमन्त्र—[चारों ओर देखकर शोक से]

—राम के स्नेह से नेत्रों में छलछलाती हुई आँसुओं वाले, चिन्ता से उदास-मुख हुए, शोक के मारे प्रदग्ध-हृदय हुए ये नौकर-चाकर भी, अपने अपने कामों को छोड़-छाड़ राम राम इस तरह विलाप कर रहे, महाराज को धिक्कार रहे हैं ॥१३॥

चिन्तादीनाः शोकसन्दग्धदेहा
विक्रोशन्तं पार्थिवं गर्हयन्ति ॥१३॥

[उपेत्य] जयतु महाराजः ।

राजा—भ्रातः ! सुमन्त्र !

क मे ज्येष्ठो रामः—

नहि नहि युक्तमभिहितं मया ।

क ते ज्येष्ठो रामः प्रियसुत ! सुतः सा क दुहिता
विदेहानां भर्तुर्निरतिशयभक्तिर्गुरुजने ।

नेत्रे, येषां तादृशाः ['बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः—' इत्यनेन षच्], **चिन्तादीनाः** चिन्तया कथममी सुकुमारा राजकुमारा विविधभयाकुले वने निवसेयुरिति चिन्तया, दीनाः क्षीणाः, **शोकसन्दग्धदेहाः** शोकेन रामादिविरहजनितदुःखेन, सन्दग्धः निरतिशयं विवर्णतां गतः, देहः शरीरम्, येषां तादृशाः, एते पुरोदृश्यमानाः, **भृत्याः** सेवकाः, **स्वानि** स्वानुष्ठेयानि, **कर्माणि हित्वा** त्यक्त्वा ['जहातेश्च क्त्वि' इति जहातेर्हिरादेशः], **विक्रोशन्तम्** हा राम हा लक्ष्मणेत्यादि विलपन्तम्, **पार्थिवम्** राजानम्, **गर्हयन्ति** निन्दन्ति । शालिनी छन्दः । 'मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः' इति तस्या लक्षणम् ॥१३॥

नहीति—राममुद्दिश्य 'मे ज्येष्ठः' इति मद्वचनमयुक्तम् । यदि स मे ज्येष्ठः सुतोऽभविष्यत्तर्हि न स लोकाभिरामो मया वने प्राहेष्यतेति भावः ।

"**क त**" इति—**प्रियसुत** प्रियः सुतो यस्य तत्सम्बुद्धौ रूपम्, आत्मानं प्रति सोल्लुण्ठोक्तिरियम्, **ते** तव दशरथस्य, **ज्येष्ठः सुतः**, **रामः**, **क** क वर्तते ? **सा** निरतिशयसुकुमारा पतिव्रताशिरोमणिः, **विदेहानां भर्त्तुः** विदेहदेशाधिपतेर्जनकस्य, **दुहिता** सुता सीता, **क** क्वास्ति ? **गुरुजने**

[पास पहुँचकर] जय हो महाराज की !

राजा—भाई सुमन्त्र !

—कहाँ है सब से बड़ा मेरा राम ?
नहीं, नहीं । मैंने ठीक नहीं कहा ।
—कहाँ है सब से बड़ा तुम्हारा राम ? ऐ राम को प्यार करने वाले ! कहाँ है वह गुरुजनों पर अपूर्व भक्ति करने वाली विदेहराजपुत्री सीता ? कहाँ है वह सुमित्रा का दुलारा ? क्या उन्होंने, सब जनों के लिए

क वा सौमित्रिर्मां हतपितृकमासन्नमरणं
किमप्याहुः किं ते सकलजनशोकार्णवकरम् ॥१४॥

सुमन्त्रः—महाराज ! मा मैवममङ्गलवचनानि भाषिष्ठाः । अचिरादेव तान् द्रक्ष्यसि ।

राजा—सत्यमयुक्तमभिहितं मया । नायं तपस्विनामुचितः प्रश्नः । तत् कथ्यताम् । अपि तपस्विनां तपो वर्धते । अप्यरण्यानि स्वाधीनानि विचरन्ती वैदेही न परिखिद्यते ।

स्वाग्रजे राम इत्यर्थः, **निरतिशयभक्तिः** निरतिशया अत्यधिका, भक्तिः अनुरागः, यस्य तादृशः, **सौमित्रिर्वा** सुमित्रासुतो लक्ष्मणश्च [वाशब्दश्चार्थः], **क्व** क्व विद्यते ? **किम्, ते** रामादयः, **आसन्नमरणम्** आसन्नम् निकटम् अचिरभावि, मरणम् निधनम्, यस्य तादृशम्, **सकलजनशोकार्णवकरम्** सकलजनानां दुःखसमुद्रोत्पादकम्, **हतपितृकम्** कुत्सितः पितेति पितृकः, हतश्चासौ पितृको हतपितृकः, तम् [हतशब्दोऽत्र निन्दितार्थे], पुत्रप्रवासनहेतोर्निन्द्यं पितरम्, **माम्** दशरथम्, **किमपि** किञ्चित् सन्देशवाक्यम्, **आहुः** कथयन्ति ? 'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी' इति शिखरिणी ॥१४॥

महाराजेति—**अमङ्गलवचनानि** अमङ्गलसूचकानि 'आसन्नमरणम्' इत्यादिवचांसि । **सत्य**मिति—**सत्यम्** वस्तुतः । **नाय**मिति—**तपस्विनाम्** राज्यादिकं परित्यज्य वने तपश्चरतां निस्पृहाणां रामादीनाम्, विषय इति शेषः । अथवा षष्ठ्याः सम्बन्धार्थकत्वाद् रामादितपस्विसम्बन्धीत्यर्थः, **अयम्** अचिरमुक्तः, **प्रश्नः** 'किं ते हतपितृकं मां किमप्याहुः' इति प्रश्नः, **नोचितः** न योग्यः । वीतरागाणामन्यसन्देशेन किम् । तेभ्यः सन्देशजिज्ञासा व्यर्थैवेत्यभिप्रायः । **तदि**ति—**तत्** तस्माद् हेतोर्दूरमस्तु तत्सन्देशप्रश्नः, इदं तु कथ्यताम् । किं कथ्यतामिति जिज्ञासायामाह—**अपी**ति । अपिः प्रश्ने ।

शोक-समुद्र उपस्थित कर देने वाले मरणासन्न हुए मुझ अभागे पिता को कुछ सँदेसा भेजा है ? ॥१४॥

सुमन्त्र—नहीं, नहीं, महाराज ! ऐसे अमङ्गल वचन मुँह से मत निकालो । आप जल्दी उन्हें देख लोगे ।

राजा—सचमुच, मैंने ठीक नहीं कहा । तपस्वियों के विषय में इस तरह पूछना उचित नहीं । अच्छा, कहिए । तपस्वियों का तप तो बढ़ रहा है ? वनों में निःशंक विचरती हुई वैदेही थक तो नहीं जाती ?

सुमित्रा—सुमन्त ! बहुवक्कलालङ्किदसरीरा बाला वि अबालचारित्ता भत्तुणो सहधम्मआरिणी अह्मे महाराअं च किञ्चि णालवदि ।

सुमन्त्र ! बहुवल्कलालङ्कृतशरीरा बालाप्यबालचारित्रा भर्तुः सहधर्मचारिणी अस्मान् महाराजं च किञ्चिन्नालपति ।

सुमन्त्रः—सर्व एव महाराजम् ।

राजा—न न । **श्रोत्ररसायनैर्मम हृदयातुरौषधैस्तेषां नामधेयैरेव श्रावय ।**

स्वाधीनानि स्वस्मिन्नधीति स्वाधीनानि ['सप्तमी शौण्डै'रित्यनेन समासः । 'अषडक्ष—' इत्यादिना खस्तद्धितः], स्वभर्तृप्रतापमाहात्म्यात् स्वायत्तानि शान्तश्वापदभयानीति यावत् । **विचरन्ती** ['लक्षणहेत्वोः क्रियायाः' इति हेतौ शतृप्रत्ययः] विचरणहेतुनेति भावः । **परिखिद्यते** श्राम्यति ।

सुमन्त्रेति—बहुवल्कलालङ्कृतशरीरा बहुभिर्वल्कलैरलङ्कृतं शरीरं यस्यास्तादृशी । **बालापि** अप्रौढवयस्कापि, **अबालचारित्रा** बालचारित्रशून्या विवेकगाम्भीर्यवतीत्यर्थः [बालाया बालचारित्राभाव इति विरोधालङ्कृतिः । चारित्रशब्दे स्वार्थिकः प्रज्ञाद्यण्] । **नालपति** न सन्दिशति किम् ? नञि प्रश्नकाकुः । **सर्व** इति—**सर्व एव** रामलक्ष्मणौ, सीता चेत्यर्थः । पुत्रनामश्रवणोत्सुको महाराजः 'सर्व एव' इति सर्वनाम्ना रामादीन् निर्दिशन्तं सुमन्त्रमर्धोक्त एवाक्षिप्य वदति—**न ने**ति । न सर्वनाम्ना निर्देष्टव्या रामादयः, किन्तु नामग्राहम् । तदेवाह—**श्रोत्रे**त्यादि । **श्रोत्ररसायनैः** श्रोत्रयोः, रसायनैः रसमासिञ्चद्भिः श्रोत्रसुखकरैरिति भावः । **हृदयातुरौषधैः** [हृदयेन आतुरो हृदयातुरः, तस्यौषधैः, हृदयेनेति तृतीया प्रकृत्यादित्वात्] पुत्रवियोगेन दुःखितहृदयस्य ममौषधरूपैरित्यर्थः । ममेति

सुमित्रा—सुमन्त्र ! बहुत से वल्कलों से शरीर सजाये हुई, बाला होते हुए भी आदर्श स्त्री-चरित्र वाली, पति की सहधर्मचारिणी वह पतिव्रता सीता हमें तथा महाराज को कुछ कह तो नहीं रही थी ?

सुमन्त्र—सब ही ने महाराज को···

राजा—नहीं, नहीं । कानों के लिए रसायन, आतुर हृदय के लिए जीवनौषधि उनके नाम ले-लेकर ही सँदेसा सुनाओ ।

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति महाराजः । आयुष्मान् रामः ।

राजा—राम इति । अयं रामः । तन्नामश्रवणात् स्पृष्ट इव मे प्रतिभाति । ततस्ततः ।

सुमन्त्रः—आयुष्मान् लक्ष्मणः ।

राजा—अयं लक्ष्मणः । ततस्ततः ।

सुमन्त्रः—आयुष्मती सीता जनकराजपुत्री ।

राजा—इयं वैदेही । रामो लक्ष्मणो वैदेहीत्यक्रमः ।

सुमन्त्रः—अथ कः क्रमः ।

राजा—रामो वैदेही लक्ष्मण इत्यभिधीयताम् ।

> **रामलक्ष्मणयोर्मध्ये तिष्ठत्वत्रापि मैथिली ।**
> **बहुदोषाण्यरण्यानि सनाथैषा भविष्यति ॥१५॥**

श्रावणकर्मणि सम्बन्धसामान्ये षष्ठी । अथवा ममेत्यस्य श्रोत्ररसायनैरित्यनेन सम्बन्धः । तन्नामग्रहणपुरस्सरमेव तत्सन्देशो मां प्रति श्रावयितव्य इति भावः । राजोक्तौ **स्पृष्ट इव** आश्लिष्ट इव मयेति भावः । राजोक्तौ **अक्रमः** रामो लक्ष्मणो वैदेहीत्येवंविधो नामनिर्देशक्रमो न युक्त इत्यर्थः ।

"रामे"ति—**मैथिली** सीता । **अत्रापि** नामनिर्देशक्रमेऽपि, अपिशब्दाद् वनसञ्चरणे च, **रामलक्ष्मणयोः मध्ये, तिष्ठतु** स्थितिं लभताम् । यतः, **अरण्यानि** वनानि, **बहुदोषाणि** बहवो दोषाः भयस्थानानि यत्र तादृशानि सन्ति । एवं रामलक्ष्मणयोर्मध्ये तिष्ठन्ती, **एषा** सीता, **सनाथा**

सुमन्त्र—जो महाराज की आज्ञा । चिरजीवी राम ।

राजा—अच्छा, राम ? यह राम । राम का नाम सुन लेने से ऐसा जान पड़ता है, मानो मैंने उसे छाती से लगा लिया हो । हाँ, फिर ?

सुमन्त्र—चिरजीवी लक्ष्मण ।

राजा—यह लक्ष्मण । अच्छा, आगे ?

सुमन्त्र—आयुष्मती जनकनन्दिनी सीता ।

राजा—यह सीता । राम, लक्ष्मण, सीता—यह क्रम तो ठीक नहीं ।

सुमन्त्र—तो फिर कौन-सा क्रम ठीक होगा ?

राजा—राम, सीता, लक्ष्मण—ऐसा कहिए ।

—मैथिली यहाँ (नामों के लेने में) भी राम, लक्ष्मण; दोनों के बीच में ही रहे । वनों में बहुत भय हुआ करते हैं । दोनों के बीच में रहने से वह सुरक्षित रहेगी ॥१५॥

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति महाराजः । आयुष्मान् रामः ।

राजा—अयं रामः ।

सुमन्त्रः—आयुष्मती जनकराजपुत्री ।

राजा—इयं वैदेही ।

सुमन्त्रः—आयुष्मान् लक्ष्मणः ।

राजा—अयं लक्ष्मणः । राम ! वैदेहि ! लक्ष्मण ! परिष्वजध्वं मां पुत्रकाः ! ।

सकृत् स्पृशामि वा रामं सकृत् पश्यामि वा पुनः ।
गतायुरमृतेनेव जीवामीति मतिर्मम ॥१६॥

रक्षकसहिता, **भविष्यति** । एवमस्थानेऽपि भयशङ्कया सीतां प्रति राज्ञो वात्सल्यातिशयो व्यज्यते । तदुक्तं 'प्रेम पश्यति भयान्यपदेऽपि' ॥१५॥

राजोक्तौ अयं राम इति—सुमन्त्रेण आयुष्मान् राम इत्युक्ते नामश्रवणेन स्मृत्युपस्थापितां राममूर्तिं साक्षात् पश्यन्निव निर्दिशति—**अयं राम** इति । एवमन्यत्रापि । राजोक्तौ **परिष्वजध्वम्** आश्लिष्यत ।

"**सकृदि**"ति—यद्यहम्, **सकृत्** एकवारमपि, **रामम्**, **स्पृशामि वा** आश्लिष्यामि वा, यदि स्पर्शो दुर्लभस्तर्हि, **सकृत्**, **पुनः** भूयः, **पश्यामि वा** चक्षुर्विषयीकरोमि वा [उभयत्र 'आशंसायां भूतवच्च' इति भविष्यति लट्, वाशब्दो विकल्पे], तर्हि **गतायुः** गतम् समाप्तप्रायम्, आयुः जीवनकालः, यस्य तादृशः, **अहम्**, **अमृतेनेव** सुधयेव, **जीवामि** पुनर्जीवनं

सुमन्त्र—जो महाराज की आज्ञा । चिरजीवी राम ।
राजा—यह राम ।
सुमन्त्र—आयुष्मती जनकनन्दिनी सीता ।
राजा—यह सीता ।
सुमन्त्र—चिरजीवी लक्ष्मण ।
राजा—यह लक्ष्मण । राम ! सीता ! लक्ष्मण ! आओ, मुझसे लिपट जाओ मेरे प्यारे बच्चो !

—मैं फिर एक-न-एक बार राम को भेंटूँगा और उसके दर्शन करूँगा—इस आशा से, मुझे जान पड़ता है, मैं इसी प्रकार जी रहा हूँ जैसे कि मरणासन्न जीव अमृत से ॥१६॥

सुमन्त्रः—शृङ्गिबेरपुरे रथादवतीर्यायोध्याभिमुखाः स्थित्वा सर्व एव महाराजं शिरसा प्रणम्य विज्ञापयितुमारब्धाः ।

कमप्यर्थं चिरं ध्यात्वा वक्तुं प्रस्फुरिताधराः ।
बाष्पस्तम्भितकण्ठत्वादनुक्त्वैव वनं गताः ॥१७॥

राजा—कथमनुक्त्वैव वनं गताः । [इति द्विगुणं मोहमुपगतः]

प्राप्स्यामीत्यर्थः, **इति**, **मम** दशरथस्य, **मतिः** निश्चयः । रामस्पर्शदर्शनयोरमृतत्वेनोत्प्रेक्षणादुत्प्रेक्षा । गणपतिशास्त्रिणस्तु 'अमृतेन गतायुरिव रामदर्शनस्पर्शनाभ्याम् अहं जीवामि' इत्येवमभिप्रायकं व्याख्यानमकुर्वन्, तन्मतेऽत्रोपमालङ्कारः । अत्रापि रामदर्शनस्पर्शनाशंसया दशरथे रामविषयको वात्सल्यातिशयो व्यङ्ग्यः ॥१६॥

शृङ्गिबेरेति—**शृङ्गिबेरपुरम्** शृङ्गिबेरनामकं नगरम्, **अवतीर्य** अवरुह्य, **अयोध्याभिमुखाः** अयोध्याया अभिमुखाः अयोध्यादिशि मुखं कृत्वेति भावः । **आरब्धाः** आरप्सत [कर्तरि क्तः] ।

"**कमप्यर्थमि**"ति—**चिरम्** बहुकालं यावत्, **कमपि** तन्मनःस्थितत्वाद् अस्माभिरविज्ञेयम्, **अर्थम्** सन्देष्टव्यं वस्तु, **ध्यात्वा** चिन्तयित्वा, **वक्तुम्** कथयितुम्, **प्रस्फुरिताधराः** प्रस्फुरितः सञ्जातस्पन्दः, अधरः अधरोष्ठः, येषां तादृशाः, वक्तुं कृतप्रयत्ना अपीत्यर्थः, **बाष्पस्तम्भितकण्ठत्वाद्** बाष्पेण पितृवियोगशोकाश्रुणा, स्तम्भितः निरुद्धः, कण्ठः, येषां तादृशाः, शोकाश्रुवेगाद् वक्तुमशक्नुवन्त इत्यर्थः, **अनुक्त्वैव** कञ्चित् सन्देशमदत्त्वैव, **वनम्**, **गताः** प्रस्थिताः । रामादिनिष्ठः पितृवियोगशोकः प्राधान्येनात्र व्यज्यते ॥१७॥

सुमन्त्र—शृङ्गिबेरपुर में रथ से उतर अयोध्या की ओर मुँह किये खड़े हो सब ही महाराज को सिर झुकाकर सँदेसा देने लगे ।

—न जाने क्या-कुछ बात बड़ी देर तक सोचते रहे और कहने के लिए होठ फड़फड़ाये ही थे कि (चित्त में घर किये हुए ताजे ताजे पितृ-बिछोह-शोक से उमड़ रहे) आँसुओं से गला रुँध जाने के कारण बिना कुछ कहे ही बेचारे वन को चले गये ! ॥१७॥

राजा—क्या बिना कुछ कहे ही वन को चले गये ? [यह कहकर बहुत मूर्च्छित हो गया]

सुमन्त्रः—[ससम्भ्रमम्] **बालाके ! उच्यताममात्येभ्यः—अप्रतीकारायां दशायां वर्तते महाराज इति ।**

काञ्चुकीयः—तथा । [निष्क्रान्तः]

देव्यौ—महाराअ ! समस्ससिहि समस्ससिहि ।
महाराज ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

राजा—[किञ्चित् समाश्वस्य]

अङ्गं मे स्पृश कौसल्ये ! न त्वां पश्यामि चक्षुषा ।
रामं प्रति गता बुद्धिरद्यापि न निवर्तते ॥१८॥

बालाके इति—**अप्रतीकारायाम्** न प्रतीकारः उपायः यस्यास्तादृश्याम्, अचिकित्स्यायामित्यर्थः ।

"**अङ्गमि**"ति—**कौसल्ये** हे कोसलदेशराजपुत्रि रामस्य जननि ! **मे** मम, **अङ्गम्** गात्रम्, **स्पृश** स्वपाणिना आमृश । **त्वाम्** कौसल्याम्, **चक्षुषा** नेत्रेण, **न पश्यामि** न साक्षात्करोमि । **रामम्**, **प्रतिगता** अनुगता, **बुद्धिः** मनः दृष्टिर्वा, **अद्यापि** एतत्समयं यावत्, **न निवर्तते** न प्रत्यागच्छति ।

अयं भावः—हे कौसल्ये ! रामवियोगाग्निना दह्यमानस्य मे दाहः कदाचिद् रामजनन्यास्तवैव पाणिस्पर्शेनोपशाम्येदिति त्वं मां स्वपाणिना स्पृश । न चाहं त्वां स्वयं स्प्रष्टुं शक्नोमि । दृश्यमानमेव वस्तु शक्यते स्प्रष्टुम् । न च मया त्वं चक्षुषा दृश्यसे । न च चक्षुषोः विद्यमानयोः कथं न पश्यसीति चेद् ? उच्यते—मनोधिष्ठितमेवेन्द्रियं विषयेषु प्रवर्तते । मनस्तु मे रामं प्रति गतं तत्रैव रमते, न प्रत्यागच्छति, इति मनोऽनधिष्ठितेन चक्षुषा कथमिव त्वां पश्येयम् । अथवा रामायणानुरोधाद् बुद्धिशब्दो दृष्टिपरः । दृष्टिशक्तिविशिष्टमेव चक्षुः पश्यति, मम तु दृष्टिर्वनं प्रयान्तं राममनुप्रयाता नाद्यापि प्रत्यायाति इति दृष्टिं विना कथं

सुमन्त्र—[हड़बड़ाहट के साथ] **बालाकि ! मन्त्रियों से जा कहो कि महाराज की हालत असाध्य हो चुकी है ।**

कंचुकी—जो आज्ञा । [प्रस्थान]

दोनों देवियाँ—महाराज ! धीरज धरो, धीरज धरो ।

राजा—[कुछ सभलकर]

—कौसल्या ! मेरे अङ्गों पर हाथ फेरो । मुझे आँखों से तुम नहीं दीख पड़ रही हो । राम की ओर लगा हुआ मेरा मन अब तक नहीं लौट रहा है ॥१८॥

सुमन्त्रः—शृङ्गिबेरपुरे रथादवतीर्यायोध्याभिमुखाः स्थित्वा सर्व एव महाराजं शिरसा प्रणम्य विज्ञापयितुमारब्धाः ।

कमप्यर्थं चिरं ध्यात्वा वक्तुं प्रस्फुरिताधराः ।
बाष्पस्तम्भितकण्ठत्वादनुक्त्वैव वनं गताः ॥१७॥

राजा—कथमनुक्त्वैव वनं गताः । [इति द्विगुणं मोहमुपगतः]

प्राप्स्यामीत्यर्थः, **इति**, **मम** दशरथस्य, **मतिः** निश्चयः । रामस्पर्शदर्शनयो-रमृतत्वेनोत्प्रेक्षणादुत्प्रेक्षा । गणपतिशास्त्रिणस्तु 'अमृतेन गतायुरिव रामदर्शन-स्पर्शनाभ्याम् अहं जीवामि' इत्येवमभिप्रायकं व्याख्यानमकुर्वन्, तन्मतेऽ-त्रोपमालङ्कारः । अत्रापि रामदर्शनस्पर्शनाशंसया दशरथे रामविषयको वात्सल्यातिशयो व्यङ्ग्यः ॥१६॥

शृङ्गिबेरेति—**शृङ्गिबेरपुरम्** शृङ्गिबेरनामकं नगरम्, **अवतीर्य** अवरुह्य, **अयोध्याभिमुखाः** अयोध्याया अभिमुखाः अयोध्यादिशि मुखं कृत्वेति भावः । **आरब्धाः** आरप्सत [कर्तरि क्तः] ।

"**कमप्यर्थमि**"ति—**चिरम्** बहुकालं यावत्, **कमपि** तन्मनः-स्थितत्वाद् अस्माभिरविज्ञेयम्, **अर्थम्** सन्देष्टव्यं वस्तु, **ध्यात्वा** चिन्त-यित्वा, **वक्तुम्** कथयितुम्, **प्रस्फुरिताधराः** प्रस्फुरितः सञ्जातस्पन्दः, अधरः अधरोष्ठः, येषां तादृशाः, वक्तुं कृतप्रयत्ना अपीत्यर्थः, **बाष्पस्त-म्भितकण्ठत्वाद्** बाष्पेण पितृवियोगशोकाश्रुणा, स्तम्भितः निरुद्धः, कण्ठः, येषां तादृशाः, शोकाश्रुवेगाद् वक्तुमशक्नुवन्त इत्यर्थः, **अनुक्त्वैव** कञ्चित् सन्देशमदत्त्वैव, **वनम्**, **गताः** प्रस्थिताः । रामादिनिष्ठः पितृवियोग-शोकः प्राधान्येनात्र व्यज्यते ॥१७॥

सुमन्त्र—**शृङ्गिबेरपुर में रथ से उतर अयोध्या की ओर मुँह किये खड़े हो सब ही महाराज को सिर झुकाकर सँदेसा देने लगे ।**

—न जाने क्या-कुछ बात बड़ी देर तक सोचते रहे और कहने के लिए होठ फड़फड़ाये ही थे कि (चित्त में घर किये हुए ताजे ताजे पितृ-बिछोह-शोक से उमड़ रहे) आँसुओं से गला रुँध जाने के कारण बिना कुछ कहे ही बेचारे वन को चले गये ! ॥१७॥

राजा—**क्या बिना कुछ कहे ही वन को चले गये ?** [यह कहकर बहुत मूर्च्छित हो गया]

सुमन्त्रः—[ससम्भ्रमम्] **बालाके ! उच्यताममात्येभ्यः—अप्रतीकारायां दशायां वर्तते महाराज इति ।**

काञ्चुकीयः—तथा । [निष्क्रान्तः]

देव्यौ—**महाराअ ! समस्ससिहि समस्ससिहि ।**
महाराज ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

राजा—[किञ्चित् समाश्वस्य]

अङ्गं मे स्पृश कौसल्ये ! न त्वां पश्यामि चक्षुषा ।
रामं प्रति गता बुद्धिरद्यापि न निवर्तते ॥१८॥

बालाके इति—**अप्रतीकारायाम्** न प्रतीकारः उपायः यस्यास्तादृश्याम्, अचिकित्स्यायामित्यर्थः ।

"**अङ्गमि**"ति—**कौसल्ये** हे कोसलदेशराजपुत्रि रामस्य जननि ! **मे** मम, **अङ्गम्** गात्रम्, **स्पृश** स्वपाणिना आमृश । **त्वाम्** कौसल्याम्, **चक्षुषा** नेत्रेण, **न पश्यामि** न साक्षात्करोमि । **रामम्**, **प्रतिगता** अनुगता, **बुद्धिः** मनः दृष्टिर्वा, **अद्यापि** एतत्समयं यावत्, **न निवर्तते** न प्रत्यागच्छति ।

अयं भावः—हे कौसल्ये ! रामवियोगाग्निना दह्यमानस्य मे दाहः कदाचिद् रामजनन्यास्तवैव पाणिस्पर्शेनोपशाम्येदिति त्वं मां स्वपाणिना स्पृश । न चाहं त्वां स्वयं स्प्रष्टुं शक्नोमि । दृश्यमानमेव वस्तु शक्यते स्प्रष्टुम् । न च मया त्वं चक्षुषा दृश्यसे । न च चक्षुषोः विद्यमानयोः कथं न पश्यसीति चेद् ? उच्यते—मनोऽधिष्ठितमेवेन्द्रियं विषयेषु प्रवर्तते । मनस्तु मे रामं प्रति गतं तत्रैव रमते, न प्रत्यागच्छति, इति मनोऽनधिष्ठितेन चक्षुषा कथमिव त्वां पश्येयम् । अथवा रामायणानुरोधाद् बुद्धिशब्दो दृष्टिपरः । दृष्टिशक्तिविशिष्टमेव चक्षुः पश्यति, मम तु दृष्टिर्वनं प्रयान्तं राममनुप्रयाता नाद्यापि प्रत्यायाति इति दृष्टिं विना कथं

सुमन्त्र—[हड़बड़ाहट के साथ] **बालाकि ! मन्त्रियों से जा कहो कि महाराज की हालत असाध्य हो चुकी है ।**

कंचुकी—जो आज्ञा । [प्रस्थान]

दोनों देवियाँ—महाराज ! धीरज धरो, धीरज धरो ।

राजा—[कुछ सभलकर]

—कौसल्या ! मेरे अङ्गों पर हाथ फेरो । मुझे आँखों से तुम नहीं दीख पड़ रही हो । राम की ओर लगा हुआ मेरा मन अब तक नहीं लौट रहा है ॥१८॥

पुत्र ! राम ! यत् खलु मया सन्ततं चिन्तितम्,
राज्ये त्वामभिषिच्य सन्नरपतेर्लाभात् कृतार्थाः प्रजाः
कृत्वा त्वत्सहजान् समानविभवान् कुर्वात्मनः सन्ततम् ।
इत्यादिश्य च ते तपोवनमितो गन्तव्यमित्येतया
कैकेय्या हि तदन्यथा कृतमहो निःशेषमेकक्षणे ॥१९॥

सुमन्त्र ! उच्यतां कैकेय्याः—

त्वां पश्येयम् । तदुक्तं रामायणे—'न त्वां पश्यामि कौसल्ये साधु मां पाणिना स्पृश । रामं मेऽनुगता दृष्टिरद्यापि न निवर्तते ॥' (अयो० ४२ । ३) ॥१८॥

पुत्रेति—पुत्रेत्यादिपदसमूह उत्तरपद्यान्वयि ।

"राज्य" इति—**पुत्र ! राम ! त्वाम्, राज्ये** राजपदे, **अभिषिच्य** अभिषिक्तं कृत्वा, **सन्नरपतेः** सतः श्रेष्ठस्य त्वादृशस्य, नरपतेः राज्ञः [लाभकर्मणि षष्ठी], **लाभात्** प्राप्तेः, **प्रजाः** प्रकृतीः, **कृतार्थाः** कृतः, अर्थो यासां तादृशाः, प्राप्तमनोरथा इति यावत्, **कृत्वा** विधाय, "**त्वत्सहजान्** तव सहजास्त्वत्सहजाः, तान् स्वभ्रातॄन् लक्ष्मणादीन्, **सन्ततम्** निरन्तरम्, **आत्मनः** स्वस्य, **समानविभवान्** समानः तुल्यः, विभवः ऐश्वर्यम्, येषां तथाभूतान्, **कुरु** विधेहि" **इति च, ते** तव [सम्बन्धसामान्ये षष्ठी] त्वामिति भावः, **आदिश्य** आज्ञाप्य, **इतः** अयोध्यातः, **तपोवनम्** तपसो वनम् तपश्चरणोचितमरण्यम्, **गन्तव्यम्** यातव्यम्, मयेति शेषः, **इति**, यत् खलु मया सन्ततं चिन्तितम्, **तत् निःशेषम्** सकलम्, **एतया, कैकेय्या, एकक्षणे** सपद्येव, **अन्यथा** राजपदार्हेण वनं गतम्, वनगमनार्हेण च राज्ये स्थितमित्येवं विपरीतम्, **कृतम्, इत्यहो** कष्टम् । हिशब्दः पादपूरकः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥१९॥

बेटा राम ! जो मैं हमेशा से सोचता आया था कि,

—तुम्हें राजगद्दी पर बिठा; प्रजा-वर्ग को श्रेष्ठ राजा के लाभ से कृतार्थ कर; और तुम्हें यह आदेश देकर कि अपने भाइयों को भी हमेशा अपने समान ऐश्वर्यशाली बनाये रखना; मैं छुटकारा पा अपनी चरम अवस्था यहाँ से तपोवन में जा बिताऊँगा, हाय ! वह सब कुटिल कैकेयी ने क्षण भर में चौपट कर डाला ॥१९॥

सुमन्त्र ! जाओ, कैकेयी से कह दो,

गतो रामः प्रियं तेऽस्तु त्यक्तोऽहमपि जीवितैः ।
क्षिप्रमानीयतां पुत्रः पापं सफलमस्त्विति ॥२०॥

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति महाराजः ।

राजा—[ऊर्ध्वमवलोक्य] अये रामकथाश्रवणसन्दग्धहृदयं मामाश्वासयितुमागताः पितरः । कोऽत्र ।

[प्रविश्य]

काञ्चुकीयः—जयतु महाराजः ।

राजा—आपस्तावत् ।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः । [निष्क्रम्य प्रविश्य] जयतु महाराजः । इमा आपः ।

"**गत**" इति—**रामः**, **गतः** राज्यं परित्यज्य वनं प्रयातः, **ते** तव कैकेय्याः, **प्रियम्** प्रीतिरिति भावः, **अस्तु** जायताम् । राम एव तव पुत्रस्य राज्याभिषेके विघ्न आसीत्, तस्य वनगमनेन विघ्नाभावात् त्वं प्रीता भवेति भावः । **अहमपि**, **जीवितैः** प्राणैः, **त्यक्तः** मुक्तः गतासुप्रायोऽस्मीति भावः । **पापम्** रामनिर्वासनलक्षणं दुष्कर्म, **सफलम्** भरताभिषेचनरूपेण फलेन सहितम्, **अस्तु** भवतु, **इति** हेतोः, **पुत्रः** स्वसुतो भरतः, **क्षिप्रम्** शीघ्रम्, **आनीयताम्** उपस्थाप्यताम्, राज्याभिषेकार्थमिति शेषः ॥२०॥

रामेत्यादि—रामस्य, कथाया वृत्तस्य, श्रवणेन, सन्दग्धं सञ्जातव्यथम्, हृदयम्, यस्य तादृशम् । **आश्वासयितुम्** आश्वासनं धैर्यं प्रदातुम्, **पितरः** पितृपितामहादयः परेताः पूर्वजाः । इदं पितृदर्शनं सन्निहितमृत्योश्चित्तविभ्रमादवगन्तव्यम् ।

—राम वन को चला गया, तुम अपना मनचाहा पा लो, मुझे भी मेरे प्राण छोड़ चले । अब तुम अपने बेटे को लिवा लाओ; तुम्हारा पाप-कर्म कृतकृत्य हो ले ॥२०॥

सुमन्त्र—जो महाराज की आज्ञा ।

राजा—[ऊपर की ओर देखकर] ओह-ओ ! राम की कथा सुनकर सन्दग्ध-हृदय हुए मुझको ढाढ़स बँधाने के लिए पितर लोग आ पहुँचे । कोई है यहाँ ?

[कंचुकी का प्रवेश]

कंचुकी—जय हो महाराज की !

राजा—जल लाओ ।

कंचुकी—जो महाराज की आज्ञा । [बाहर जाकर और जल लाकर] जय हो महाराज की ! यह रहा जल ।

राजा—[आचम्यावलोक्य]

अयममरपतेः सखा दिलीपो रघुरयमत्रभवानजः पिता मे ।
किमभिगमनकारणं भवद्भिः सह वसने समयो ममापि तत्र ॥

राम ! वैदेहि ! लक्ष्मण ! अहमितः पितॄणां सकाशं गच्छामि । हे पितरः ! अयमयमागच्छामि । [मूर्च्छया परामृष्टः]

[काञ्चुकीयो यवनिकास्तरणं करोति]

सर्वे—हा हा **महाराजः । हा हा महाराओ ।** हा हा महाराजः ।

[निष्क्रान्ताः सर्वे]

द्वितीयोऽङ्कः ।

"**अयमि**"ति—**अयं** पुरोदृश्यमानः, **अमरपतेः** इन्द्रस्य, **सखा** मित्रम्, **दिलीपः** दिलीपनामा मम प्रपितामहः, अस्तीति शेषः । **अयम्**, **रघुः** रघुनामको मम पितामहः, अस्ति । **अयम्**, **मे** मम, **पिता**, **अजः**, अस्ति । हे पितरः ! युष्माकम्, **अभिगमनकारणम्** अभिगमनस्यात्रागमनस्य, कारणं हेतुः, **किम् ?** । **तत्र** भवदधिष्ठिते स्वर्गादिलोके, **भवद्भिः सह**, **वसने** निवासे, **ममापि**, **समयः**, प्राप्तः किमिति शेषः । पुष्पिताग्रा ॥२१॥

रामेति—**इतः** अस्माल्लोकात्, **सकाशं** सविधे, **अयमयम्** अविलम्बितमिति भावः, **मूर्च्छया, परामृष्टः** आक्रान्तः, मृत इति तात्पर्यम् । **यवनिकास्तरणं** यवनिकया तिरस्करिण्या प्रच्छादनपटेन आस्तरणमाच्छादनम्, मृतस्य महाराजस्येति शेषः । अत्र द्वितीयाङ्के हा वत्सेत्यत आरभ्य साधीयान् करुणरसपरिपोषः कविना कृतः ।

इतिश्रीद्रोणाश्रमाभिजनश्रीमदच्युतानन्दशर्मतनुजन्म**श्रीपरमेश्वरानन्दशर्म**-
कृतायां प्रतिमानाटकव्याख्यायां द्वितीयोऽङ्कः समाप्तः ।

राजा—[आचमन करके देखकर]

—ये रहे देवराज इन्द्र के सखा महाराज दिलीप; ये रहे महाराज रघु; और ये रहे माननीय मेरे पूज्य पिता महाराज अज । आप लोगों के यहाँ आने का क्या कारण हो चला ? अब तो मेरा भी वहाँ ही आप लोगों के साथ रहने का समय आ पहुँचा ॥२१॥

राम ! जानकी ! लक्ष्मण ! अब मैं यहाँ से पितरों के पास जा रहा हूँ । हे पितरो ! लो, यह आया । [मूर्च्छा ने आ धर दबाया]

[कंचुकी परदा गिराता है]

सब—हाय हाय महाराज ! हाय हाय महाराज !

[सब का प्रस्थान]

अथ तृतीयोऽङ्कः ।

[ततः प्रविशति सुधाकारः]

सुधाकारः—[सम्मार्जनादीनि कृत्वा] **भोदु, दाणि किदं एत्थ कय्यं अय्यसम्भवअस्स आणत्तं । जाव मुहुत्तं सुविस्सं ।** [स्वपिति]

भवतु, इदानीं कृतमत्र कार्यमार्यसंभवकस्याज्ञप्तम् । यावन्मुहूर्तं स्वप्स्यामि ।

[प्रविश्य]

भटः—[चेटमुपगम्य ताडयित्वा] **अङ्घो दासीएपुत्त ! किं दाणि कम्मं ण करेसि ।** [ताडयति]

अङ्घो दास्याःपुत्र ! किमिदानीं कर्म न करोषि ।

पुत्रवियोगशोकाद् महाराजो दशरथः स्वःप्रयाणमकरोदिति पूर्वाङ्के गतम् । अथ मातुलगृहाद् विनिवृत्तस्य विज्ञातपितृमरणादिसकलशोकवृत्तान्तस्य निरतिशयं व्यथमानस्य भरतस्य राज्याभिषेकं परित्यज्य स्वज्येष्ठं राममनुवर्तितुं तदन्तिकगमननिश्चयं वर्णयितुं तृतीयाङ्कमारभते—**अथेति** ।

तत्र पूर्वं प्रतिमादर्शनेन भरतस्य पितृमरणवृत्तान्तज्ञानसाधनाय पूर्वनिर्मितप्रतिमागृहवृत्तान्तं प्रवेशकेन सूचयितुं पात्रं प्रवेशयति—**तत इति** । **सुधाकारः** सुधया गृहलेपकः । अथवा सुधाकार इत्यन्वर्थं चेटस्य नाम । **सम्मार्जनादीनि**—सम्मार्जनं बहुकर्ण्यादिनावकरापसारणेन स्वच्छतासम्पादनम् । **भवत्विति**—**कार्यम्** अवकरापसारणादि । **आर्यसंभवकस्य** आर्य आदरणीयः, संभवकस्तदाख्यः कञ्चुकी, तस्य । सम्बन्धसामान्ये षष्ठी । आर्यसंभवकेनेत्यर्थः । **अङ्घो इति**—अङ्घो इति सकोपं सम्बोधने । **दास्याःपुत्र** समस्तमिदं पदम् ['षष्ठ्या आक्रोशे' इति षष्ठ्या अलुक्] ।

तीसरा अंक

[सुधाकार—सफेदी करने वाले का प्रवेश]

सुधाकार—[झाड़ू आदि लगाकर] **अच्छा, अब आर्य संभवक का बताया हुआ काम तो कर चुका हूँ । तो अब कुछ देर सो लूँ ।** [सोता है]

[भट का प्रवेश]

भट—[चेट के पास जाकर तथा उसे पीटकर] **अरे ओ ! दासी के बच्चे ! क्यों इस समय काम नहीं कर रहा ?** [पीटता है]

सुधाकारः—[बुद्ध्वा] **तालेहि मं तालेहि मं ।**

ताडय मां ताडय माम् ।

भटः—ताडिदे तुवं किं करिस्ससि ।

ताडिते त्वं किं करिष्यसि ।

सुधाकारः—अहण्णस्स मम कत्तवीअस्स विअ बाहुसहस्सं णत्थि ।

अधन्यस्य मम कार्तवीर्यस्येव बाहुसहस्रं नास्ति ।

भटः—बाहुसहस्सेण किं कय्यं ।

बाहुसहस्रेण किं कार्यम् ।

सुधाकारः—तुवं हणिस्सं । त्वां हनिष्यामि ।

भटः—एहि दासीएपुत्त ! मुदे मुञ्चिस्सं । [पुनरपि ताडयति]

एहि दास्याःपुत्र ! मृते मोक्ष्यामि ।

बुद्ध्वा जागरित्वा । आदेशानुसारेण कर्मणः कृतत्वादात्मनो निरपराधत्वनिश्चयेन सकोपमाह—**ताडयेति** । **ताडित** इति—ताडिते ताडने कृते सतीत्यर्थः । **अधन्यस्येति—अधन्यस्य** अभाग्यस्य, **कार्तवीर्यस्य** कृतवीर्यसूनोः सहस्रबाहोरर्जुनस्य । यदि कार्तवीर्यस्येव ममापि सहस्रं बाहवोऽभविष्यन् तर्हि त्वमज्ञास्यो यदहं ताडिते किं करिष्यामीति । परमधन्यस्य मे तदेव तु न जातमिति भावः । हैहयनृपतिः कार्तवीर्यः श्रीदत्तात्रेयवरप्रसादाद् बाहुसहस्रं लब्धवानिति पुरावृत्तं पुराणादितोऽनुसन्धेयम् । **एहीति—मृते मोक्ष्यामि** ताडनेन मृतमेव त्वां त्यक्ष्यामि, न ततः पूर्वमिति भावः ।

सुधाकार—[जागकर] **मार ले, मुझे, मार ले ।**

भट—मारने पर तू क्या करेगा ?

सुधाकार—मुझ अभागे की कार्तवीर्य (सहस्रार्जुन) की भाँति हजार भुजाएँ न हुईं ।

भट—हजार भुजाओं से क्या कर लेगा ?

सुधाकार—तुम्हें मार डालूँगा ।

भट—आ, बे दासी के बच्चे ! आ । अब तो तुझे मार डाल ही छोडूँगा ।

[फिर पीटता है]

सुधाकारः—[रुदित्वा] **सक्कं दाणि भट्टा ! मे अवराहं ज़ाणिदुम् ।**

शक्यमिदानीं भर्तः ! मेऽपराधं ज्ञातुम् ।

भटः—**णत्थि किल अवराहो णत्थि । णं मए सन्दिट्ठो भट्टिदारअस्स रामस्स रज्जावब्भट्ठकिदसन्दावेण सग्गं गदस्स भट्टिणो दसरहस्स पडिमागेहं देट्ठुं अज्ज कोसल्लापुरोएहि सव्वेहि अन्तेउरेहि इह आअन्तव्वं त्ति । एत्थ दाणि तुए किं किदं ।**

नास्ति किलापराधो नास्ति । ननु मया सन्दिष्टो भर्तृदारकस्य रामस्य राज्यविभ्रष्टकृतसन्तापेन स्वर्गं गतस्य भर्तुर्दशरथस्य प्रतिमागेहं द्रष्टुमद्य कौसल्यापुरोगैः सर्वैरन्तःपुरैरिहागन्तव्यमिति । अत्रेदानीं त्वया किं कृतम् ।

शक्यमिति—प्रश्नकाकुरत्र । येनापराधेन मां ताडयिष्यसि, स मया ज्ञातुं शक्यते किम् ? ताडनात् पूर्वं कृपयापराधो बोधनीय इति भावः । **नास्तीति**—क्रोधाद् नास्तिशब्दद्विरुक्तिः, नास्तीत्यत्र प्रश्नकाकुरपि । अवश्यं तेऽपराधोऽस्तीति भावः । अपराधं बोधयति—**नन्विति** । सन्दिष्टः सूचितः, त्वमिति शेषः । सन्देशमाह—**भर्तृदारकस्येति** । **राज्येत्यादि**—राज्याद् विभ्रष्टं भ्रंशः [भावे क्तः], तेन कृतो विहितः सन्तापो दुःखं तेन [रामस्येति षष्ठी विभ्रंशनकर्मणि] । **प्रतिमागेहं** प्रमीतानां नृपतीनां प्रतिमा यत्र स्थाप्यन्ते तदिह प्रतिमागृहं विवक्षितम् । **इदमेव नाटकस्य प्रतिमेति नाम्नि बीजम्** । मृतनृपतीनां प्रतिमास्थापनमिति प्राचीनाचारः । **कौसल्येत्यादि**—कौसल्या पुरोगा अग्रगामिनी येषां तैः, कौसल्यादिभिरित्यर्थः [पुरोगाशब्दे पुरो गच्छतीति विग्रहे गमेर्डः] । **अन्तःपुरैः** राजदारैः । **अत्रेति**—मत्सन्देशेन राजदारा-

---

सुधाकार—[रोकर] तो क्या इस समय भर्ता मेरा अपराध बता सकते हैं ?

भट—कुछ अपराध नहीं ! सचमुच, कुछ अपराध नहीं ! भला, मैंने जो तुम्हें आदेश दिया था कि राजकुमार राम के राज्यच्युत हो वन चले जाने के शोक से महाराज दशरथ स्वर्ग सिधार चले । उनके प्रतिमा-गृह (दिवंगत-मूर्ति-मन्दिर) के दर्शन करने आज यहाँ कौसल्या के साथ सारे अन्तःपुर ने आना है । बता, यहाँ अब तक तूने क्या किया ?

सुधाकारः—**पेक्खदु भट्टा अवणीदकवोदसन्दाणअं दाव गब्भगिहं । सोहवण्णअदत्तचन्दणपञ्चाङ्गुला भित्तीओ । ओसत्तमल्लदामसोहीणि दुवाराणि । पइण्णा वालुआ । एत्थ दाणि मए किं ण किदं ।**
पश्यतु भर्ता अपनीतकपोतसन्दानकं तावद् गर्भगृहम् । सौधवर्णकदत्तचन्दनपञ्चाङ्गुला भित्तयः । अवसक्तमाल्यदामशोभीनि द्वाराणि । प्रकीर्णा वालुकाः । अत्रेदानीं मया किं न कृतम् ।

भटः—**जइ एवं, विस्सत्थो गच्छ । जाव अहं वि सव्वं किदं त्ति अमच्चस्स णिवेदेमि ।**

गमनं श्रुत्वापि त्वं निःशङ्कमत्र शेषे, न च त्वया प्रतिमागृहसंमार्जनादि स्वकर्तव्यं किञ्चिदप्यनुष्ठितमिति भावः ।

अपनीतकपोतसन्दानकम् अपनीतानि दूरीकृतानि कपोतानां सन्दानानि नीडा यस्मात् तादृशम् । **गर्भगृहम्** अन्तर्गृहम् । **सौधे**त्यादि—सौधे सुधया भस्मीकृतप्रस्तरविशेषचूर्णेन कृते, वर्णके आलेपे, दत्तं न्यस्तम्, चन्दनपञ्चाङ्गुलं चन्दनपङ्कयुक्तानां पञ्चानामङ्गुलीनां चिह्नं यत्र तथाभूताः [पञ्चानामङ्गुलीनां समाहारः पञ्चाङ्गुलम् । 'तद्धितार्थो-' इत्यनेन समाहारे द्विगुः । 'तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याव्ययादेः' इत्यनेनाच् समासान्तः । चन्दनयुक्तं पञ्चाङ्गुलमिति चन्दनपञ्चाङ्गुलम् । शाकपार्थिवादित्वाद् मध्यमपदलोपः]। **अवसक्ते**त्यादि—अवसक्तानि लम्बितानि, माल्यदामानि पुष्पस्रजः, तैः शोभितुं शीलं येषां तादृशानि [मालामर्हन्तीति माल्यानि मालोचितपुष्पाणि, तेषां दामानि इति विग्रहः] । लम्बिताभिः पुष्पमालाभिः शोभायुक्तानीत्यर्थः । **प्रकीर्णा** विकीर्णा मार्गेषु इति शेषः । पादस्पर्शसुखाय मार्गेषु सिकता अपि यत्र तत्र क्षिप्ता इति भावः । **अत्रे**ति—एतावदेव मम कर्तव्यं सन्दिष्टमासीत् तन्मया कृतमेवेत्यर्थः ।

सुधाकार—देख लीजिए, हुजूर ! प्रतिमा-गृह के भीतर के कबूतरों के घोंसले हटा दिये गये हैं । दीवारों पर पुताई के ऊपर पाँच-पाँच अंगुलियों की छापें लगा दी गई हैं । दरवाज़े फूलों की मालाएँ लटका-लटकाकर सजा दिये हैं । सजावट के लिए चारों ओर रेत बिछा दी गई है । बताइए अब, यहाँ मैंने क्या नहीं किया ?

यद्येवं, विश्वस्तो गच्छ । यावदहमपि सर्वं कृतमित्यमात्याय निवेदयामि ।

[निष्क्रान्तौ]

प्रवेशकः ।

[ततः प्रविशति भरतो रथेन सूतश्च]

भरतः—[सावेगम्] **सूत ! चिरं मातुलपरिचयादविज्ञात-वृत्तान्तोऽस्मि । श्रुतं मया दृढमकल्यशरीरो महा-राज इति । तदुच्यताम्,**

यदीति—**यद्येवं** चेत् सन्देशानुसारेण स्वकर्तव्यं कृतवानसि तर्हि, **विश्वस्तो** निर्भयः। **प्रवेशक** इति। प्रवेशकलक्षणं यथा—'वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः । प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः ॥' इति ।

अत्र वृत्तस्य प्रतिमागृहे मृतदशरथमूर्तिस्थापनरूपस्य, वर्तिष्यमाणस्य तत्र कौसल्यादिराजदाराणां समागमनरूपस्य च प्राकृतेन सूचनं कृतम् । अथ 'क्षिप्रमानीयतां पुत्रः' इति राजाज्ञया मातुलगृहादानीयमानं भरतं प्रतिमागृहे राजदाराभिर्मेलयितुं प्रवेशयति—**तत** इति । **सूतेति**—**मातुल-परिचयात्** मातुलस्य मातुर्भ्रातुर्युधाजितः, परिचयाद् अन्तिके निवासा-दित्यर्थः । **अविज्ञातेति**—न विज्ञातो वृत्तान्तः स्वगृहवृत्तं येन तादृशः । **दृढम्** अत्यन्तम्, **अकल्यशरीरः** न कल्यं निरामयं शरीरं यस्य तादृशः, रुग्ण इति भावः ['कल्यं प्रभाते मधुनि सज्ये दक्षे निरामये' इत्यमरः] ।

भट—यदि ऐसा है तो बे-धड़क चला जा। मैं भी मन्त्री जी को सूचना दिये देता हूँ कि सब कुछ तैयार है।

[दोनों का प्रस्थान]

प्रवेशक

[रथ में बैठे हुए भरत और सूत—सारथि का प्रवेश]

भरत—[चिन्तापूर्वक] **सारथि ! चिर काल तक मामा जी के यहाँ रहने से मुझे घर का कुछ भी कुशल-समाचार नहीं मालूम। मैंने सुना है कि महाराज बहुत रुग्ण हैं। तो बताओ,**

पितुर्मे को व्याधिः

सूतः—

हृदयपरितापः खलु महान् ।

भरतः—

किमाहुस्तं वैद्याः

सूतः—

न खलु भिषजस्तत्र निपुणाः ॥

भरतः—

किमाहारं भुङ्क्ते शयनमपि

सूतः—

भूमौ निरशनः ।

"**पितु**"रिति—मे मम, **पितुः** दशरथस्य, कः कतमः, **व्याधिः** रोगः । सूत उत्तरति—**हृदये**ति । **महान्** अत्यधिकः, **हृदयपरितापः** मानसं दुःखम्, **खलु** । शारीरः कश्चन रोगो महाराजस्य नास्ति, मानसस्तु रोगस्तस्यातिमहान् विद्यत इति भावः । भरतः पृच्छति—**किमि**ति । **वैद्याः** भिषजः, **तम्** पितुर्हृदयपरितापम्, तद्विषये इत्यर्थः, **किम् आहुः** किं कथयन्ति किंनिमित्तोऽसौ हृदयपरितापः, कथं वासौ चिकित्स्य इत्यादिविषये वैद्यानां का सम्मतिरिति भावः । सूत उत्तरति—**न खल्वि**ति । **तत्र** तव पितू रोगविषये, **भिषजः** चिकित्सकाः, **न निपुणाः** न कुशलाः, तव पितुर्हृदयपरितापो भिषजामसाध्य इति भावः । भरतः पुनरपि तदाहारशयनयोर्विषये जिज्ञासते—**किमि**ति । **किम्** कीदृशम्, **आहारं** भोजनम्, **भुङ्क्ते** अश्नाति ? **शयनमपि** तल्पं च, कीदृशमधिशेते इति शेषः । सूतः प्रतिवक्ति—**भूमा**विति । **भूमौ** पृथिव्याम्, **निरशनः** निराहारः, शेत इति शेषः । आहारस्तस्य किमपि नास्ति, शयनं च भूमिरस्तीति भावः । भरतः पृच्छति—**किमि**ति ।

—मेरे पिता जी को क्या रोग है ?

सूत—उन्हें दारुण मानसिक व्यथा है ।

भरत—उन्हें इसके बारे में वैद्यों ने क्या बताया है ?

सूत—उसमें वैद्यों को कुछ भी नहीं सूझ पड़ता ।

भरत—क्या खाना खाते और नींद लेते हैं ?

सूत—भूमि पर निराहार पड़े रहते हैं ।

भरतः—

किमाशा स्याद्

सूतः—

दैवं

भरतः—

स्फुरति हृदयं वाहय रथम् ॥१॥

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । [रथं वाहयति]

भरतः—[रथवेगं निरूप्य] अहोतुखलु रथवेगः । एते ते,

द्रुमा धावन्तीव द्रुतरथगतिक्षीणविषया
नदीवोद्वृत्ताम्बुर्निपतति मही नेमिविवरे ।

किम्, **आशा** जीवनाशा, तस्येति शेषः, **स्यात्** संभवेत् । सूत उत्तरति—**दैवम्** अदृष्टम्, जानातीति शेषः । दैवाधीनं तस्य जीवनम् । न वयं तत्र विशिष्य किमपि वक्तुं शक्नुमः । जीवेदपि न जीवेदपीति भावः । सूतोक्त्या चिन्तितहृदयो भरत आह—**स्फुरतीति**। **हृदयं** मम मनः, **स्फुरति** संचलति, पितरं द्रष्टुमतित्वरत इति भावः । अतएव **रथम्**, **वाहय** शीघ्रं चालय । भरतसूतयोरिमा उक्तिप्रत्युक्तयः संयोज्य पठ्यमानाः श्लोको निष्पद्यते ॥१॥

यदिति—**आयुष्मान्** राजकुमारो भरतः । नाट्यनियमानुरोधेन रथी सारथिना आयुष्मच्छब्देन संबोध्यो भवति । तदुक्तं दर्पणे—'आयुष्मन् रथिनं सूतः' इति । **रथवेगमिति**—**निरूप्य** दृष्ट्वा । **अहोतुखलु** इति निपात-समुदायो विस्मये । रथवेगो मम विस्मयमुत्पादयतीत्यर्थः । **'एते ते'** इति पदद्वयमुत्तरपद्यान्वयि ।

रथवेगस्य विस्मयकरत्वमुपपादयति—**"द्रुमा"** इति । **द्रुतरथगति-क्षीणविषयाः** द्रुतया शीघ्रया, रथस्य, गत्या गमनेन, क्षीणः

भरत—क्या (उनके जीने की) आशा है ?
सूत—दैव जाने ।
भरत—मेरा हृदय धड़क रहा है, रथ चलाओ ॥१॥
सूत—जो आज्ञा चिरजीवी की । [रथ चलाता है]
भरत—[रथ के वेग को देखकर] **वाह ! रथ कैसी तेजी से भगा जा रहा है । ये वे,**

—वृक्ष, रथ की तेज चाल से पल भर में ही दृष्टि के ओझल हो,

अरव्यक्तिर्नष्टा स्थितमिव जवाच्चक्रवलयं
रजश्चाश्वोद्धूतं पतति पुरतो नानुपतति ॥२॥

सूतः—आयुष्मन् ! सोपस्नेहतया वृक्षाणामभितः खल्वयोध्यया भवितव्यम् ।

अत्यल्पतामिव गतः, विवरः परस्परान्तरालप्रदेशः, येषां तादृशाः, एते ते **द्रुमाः** वृक्षाः, **धावन्तीव** धावनं कुर्वन्तीव [रथस्यातिशीघ्रगमनेन वृक्षाणामन्तरालप्रदेशो न लक्ष्यते, अतएव वृक्षा अन्योन्यानुगत्या पश्चाद् दिशि धावन्त इव भान्तीति भावः]। **मही** पृथ्वी, **उद्वृत्ताम्बुः** उद्वृत्तं प्रवृद्धवेगतयोच्छृङ्खलम्, अम्बु जलं यस्यास्तादृशी, **नदीव** सरिदिव, स्थिता सती, **नेमिविवरे** नेम्या नेमिदण्डानामित्यर्थः, विवरे मध्यवर्तिन्यवकाशे, **निपतति** प्रविशतीव [रथस्यातिमात्रवेगावसरे भूमिस्तथा लक्ष्यते यथेयमुच्छलन्ती चक्रदण्डानामन्तराले प्रविशति इति भावः]। **अरव्यक्तिः** अराणां नेमिदण्डानाम्, व्यक्तिर्भानम्, नष्टा लुप्ता [अतिवेगहेतुना चक्रेऽराणामभाव इव प्रतीयत इति भावः]। **जवाद्** वेगाद्धेतोः, **चक्रवलयं** चक्रमण्डलम्, **स्थितमिव** निरुद्धगतिकमिव, लक्ष्यत इति शेषः। **अश्वोद्धूतम्** अश्वैः, उद्धूतं खुरोद्घातेन उत्क्षिप्तम्, **रजश्च** धूलिश्च, **पुरतः** रथाग्रे, **पतति** उद्गच्छति, **नानुपतति** रथस्य पश्चान्न गच्छति [तथास्ति रथस्य महान् वेगो यदग्रेऽश्वखुरोत्थापितं रजो न रथमनुगन्तुं शक्नोति, यावद् रजस्तमनुगच्छति तावत् सोऽतिवेगवाहितया निमेषमात्रेण रजोऽनुपतनदेशमतिक्रम्य दूरदेशं प्रयातीति भावः। एष एवार्थोऽश्ववेगं निरूपयता कविकुलगुरुणापि प्रतिपादितः—'आत्मोद्धतैरपि रजोऽभिरलंघनीयाः' इति]। वेगवाहिरथस्वभाववर्णनात् स्वभावोक्तिः। द्रुमादीनां धावनादिसम्बन्धोत्प्रेक्षणाद् उत्प्रेक्षा च। नदीवेत्यत्रोपमा च। शिखरिणी ॥२॥

आयुष्मन्निति—**अभितः** मार्गस्योभयोः पार्श्वयोः, **वृक्षाणां सोप-**

दौड़ते-से प्रतीत हो रहे हैं; धरती, (भँवर के कारण) उपर को उछलते हुए जल वाली सरिता की भाँति, पहिये की धुरी में (बड़े वेग से) गिर-सी रही है; जल्दी-जल्दी घूमने के कारण अरे अलग-अलग दिखाई नहीं दे रहे; पहिये का घेरा ठहरा हुआ-सा प्रतीत हो रहा है; और धूलि, घोड़ों की टापों से उठ-उठकर सामने ही आ गिर रही है, पीछे नहीं पड़ रही ॥२॥

सूत—चिरजीविन्! वृक्षों की सघन-शीतलता से जान पड़ता है कि इनके आस-पास ही अयोध्या है।

भरतः—अहोतुखलु स्वजनदर्शनोत्सुकस्य त्वरता मे मनसः ।
सम्प्रति हि,

पतितमिव शिरः पितुः पादयोः
स्निह्यतेवास्मि राज्ञा समुत्थापितः
त्वरितमुपगता इव भ्रातरः
क्लेदयन्तीव मामश्रुभिर्मातरः ।

स्नेहतया उपस्नेहो वृक्षाणां हरितभरितत्वम्, तेन सह वर्तन्त इति सोपस्नेहाः, तेषां भावस्तत्ता, तया । यथेमे वृक्षा जलासेचनेन हरितभरिता विलोक्यन्ते तथा प्रतीयते यदयोध्या सम्प्राप्तेति भावार्थः [सोपस्नेहतया वृक्षबाहुल्यनिमित्तोपक्लेदवत्तया—इति श्रीगणपतिशास्त्रिणः] ।

स्वजनदर्शनोत्सुकस्य स्वजनानाम् आत्मीयानाम्, दर्शने, उत्सुकस्य उत्कण्ठितस्य । **त्वरता** त्वरेत्यर्थः [त्वरत इति त्वरः, पचाद्यच्, ततो भावे तल्] । 'सम्प्रति हि' इति पदद्वयमुत्तरश्लोकयुग्मकान्वयि ।

स्वजनदर्शनाय निरतिशयमुत्कण्ठितो भरतः सदनप्राप्त्यनन्तरकरिष्यमाणपितृप्रणामादिकं प्रथमत एव युग्मकेन कल्पयति—"**पतितमि**"ति । **सम्प्रति हि** सम्प्रत्येवेत्यर्थः, **पितुः** जनकस्य महाराजदशरथस्य, **पादयोः** चरणयोः, मे, **शिरः** मूर्धा, **पतितमिव** नतमिव, मयेदानीमेव पितृचरणयोः प्रणामः कृत इवेति भावः । **स्निह्यता** पुत्रवात्सल्यवता, **राज्ञा** पित्रेत्यर्थः, **समुत्थापित इव** सम्यक् प्रेम्णा, उत्थापित इव ऊर्ध्वं धृत इव, **अस्मि**, अहमिति शेषः । **भ्रातरः** श्रीरामादयः, **त्वरितम्** अतिशीघ्रम्, भ्रातृवात्सल्याद् औत्कण्ठ्याच्चेति भावः, **उपगता इव** मामुपेता इव । **मातरः** जनन्यः, **अश्रुभिः** प्रेमास्रैः, **माम्** भरतम्, **क्लेदयन्तीव** आसिञ्चन्तीव ।

भरत—अहो ! आत्मीय जनों के दर्शन के लिए उत्सुक हुए मेरा मन कितना उतावला हो रहा है । क्योंकि, इस समय,

—ऐसा जान पड़ रहा है कि, मैं पिता जी के चरणों में पड़ा हुआ-सा हूँ; और पिता जी ने पुत्र-वात्सल्य से पुचकारते हुए मुझे अपनी गोद में उठा-सा लिया है; भाई (बहुत समय से बिछुड़े हुए को देख पा) जल्दी-जल्दी आ घेर-से रहे हैं; माताएँ पुत्र-वात्सल्य से—छलछलाती आँसुओं से मुझे तर-सी कर रही हैं ।

सदृश इति महानिति व्यायतश्चेति
भृत्यैरिवाहं स्तुतः सेवया
परिहसितमिवात्मनस्तत्र पश्यामि
वेषं च भाषां च सौमित्रिणा ॥३॥

सूतः—[आत्मगतम्] भोः ! कष्टम्, यदयमविज्ञाय महाराज-
विनाशमुदर्के निष्फलामाशां परिवहन्नयोध्यां प्रवेक्ष्यति
कुमारः। जानद्भिरप्यस्माभिर्न निवेद्यते। कुतः,

भृत्यैः सेवकैः, **अहम्**, **सदृश इति** आकृत्या स्वरेण चायं महाराज-तुल्य इति, **महानिति** पूर्वापेक्षयाधिकपरिणाहवानिति, **व्यायतश्च** दीर्घशरीरश्च, **इति** इत्येवं प्रकारेण [इतिशब्दोऽत्र प्रकारे, एवं पूर्वत्रापि], **सेवया** प्रीत्या, मम प्रीतिमुत्पादयितुमित्यर्थः [फलस्यापि हेतुत्वाद् हेतौ तृतीया], **स्तुत इव** प्रशस्त इव। **तत्र** प्रासादे, **आत्मनः** स्वस्य, **वेषं च** केकयदेशानुरूपं नेपथ्यम्, **भाषां च** केकयदेशोचितं भाषणं च, **सौमित्रिणा** लक्ष्मणेन, **परिहसितम्** उपहसितम् [परिहसितमिति विभक्ति-विपरिणामेन भाषामित्यनेनापि योज्यम्, भाषां परिहसितामिति], **पश्यामि** अनुभवामि। उत्कण्ठितानामेवं स्वभाव इति स्वभावोक्तिः। भाविनां पितृ-नत्यादीनां प्रत्यक्षीक्रियमाणत्वेन भाविकालङ्कारश्च। तदुक्तम्—'प्रत्यक्षा इव यद् भावाः क्रियन्ते भूतभाविनः। भाविकम्—'। उभयस्मिन्नपि पद्ये प्रभा-स्रग्विण्योश्छन्दसोर्मेलनादुपजातिश्छन्दः। उपेन्द्रवज्रेन्द्रवज्रयोरिवान्ययोरपि मिश्रण उपजातित्वस्वीकारात्। तदुक्तं रत्नाकरे—'इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु वदन्ति जातिष्विदमेव नाम'। प्रभास्रग्विण्योर्लक्षणं यथा—'स्वरशरविरतिर्ननौ रौ प्रभा'। 'कीर्तितैषा चतूरेफिका स्रग्विणी' ॥३॥

भो इति—**उदर्के** परिणामे। **परिवहन्निति** लक्षणे शतृप्रत्ययः।

—ओहो! अब तो भरत अपने पिताजी के बराबर का हो गया, पहले से बहुत बड़ा हो गया, खूब हृष्ट-पुष्ट हो गया—इस प्रकार तरह तरह के वचनों से अनुचर लोग स्नेह-पूर्वक मेरी स्तुति कर रहे हैं; और मुझे ऐसा भास रहा है कि लक्ष्मण मेरे (केकय-देशी) वेष तथा बोली की खिल्लियाँ-सा उड़ा रहा है ॥३॥

सूत—[स्वगत] ओह ! कितने दुःख की बात है कि यह कुमार महाराज की मृत्यु का समाचार न पाकर, परिणाम में झूठी ही आशा को लिये

पितुः प्राणपरित्यागं मातुरैश्वर्यलुब्धताम् ।
ज्येष्ठभ्रातुः प्रवासं च त्रीन् दोषान् कोऽभिधास्यति ॥४॥

[प्रविश्य]

भटः—जयतु कुमारः ।

भरतः—भद्र ! किं शत्रुघ्नो मामभिगतः ।

भटः—अभिगतः खलु वर्तते कुमारः । उपाध्यायास्तु भवन्तमाहुः ।

"पितु"रिति—**पितुः** जनकस्य, **प्राणपरित्यागम्** प्राणानां परित्यागम् निधनमिति यावत्, **मातुः** जनन्याः कैकेय्याः, **ऐश्वर्यलुब्धताम्** ऐश्वर्ये राजवैभवे लुब्धतां लोलुपत्वम्, स्वसुतराज्याभिषेकेणेति शेषः, **ज्येष्ठभ्रातुः** ज्येष्ठस्य स्वापेक्षया ज्येष्ठस्य अग्रजस्य भ्रातुः रामस्येत्यर्थः, **प्रवासं च** अयोध्यां परित्यज्य वनगमनं च, **त्रीन् दोषान्** दुःखोत्पादकमेतदनर्थत्रयम्, **कः**, **अभिधास्यति** कथयिष्यति ? यद्येक एव दोषोऽभविष्यत् तर्हि तं कथञ्चिदसूचयिष्यमपि, इह तूत्तरोत्तरमधिकमरुन्तुदं दोषत्रयमस्ति, यदभिधातुं नास्ति मे मात्रयाऽपि सामर्थ्यमिति भावः । एकस्मिन्ननभिधेयेऽनभिधेयान्तराण्यपीति समुच्चयः ॥४॥

भद्रेति—**मामभिगतः** मां प्रत्युद्गन्तुमुपस्थितः । **किमि**ति प्रश्ने । भरतापेक्षया शत्रुघ्नस्यैव कनिष्ठत्वम्, रामलक्ष्मणयोस्तु ज्येष्ठत्वं कवेरभिमतम् । कनिष्ठेनैव ज्येष्ठः प्रत्युद्गम्यते । अतः कनिष्ठविषयक एव भरतस्य प्रश्नः । अतएव च चतुर्थे भरतेन लक्ष्मणस्याभिवादनं सङ्गच्छते । क्वचित्तु 'मामभितः' इति पाठः । अर्थे तु न किमप्यन्तरम् । शत्रुघ्नानुपस्थानात् संभवन्तीं भरतस्य निराशां दूरीकर्तुमाह भटः—**अभिगते**ति । **अभिगतः** आगतप्राय एव । मार्गे वर्तते, न चिरात् त्वामभ्येष्यतीति भावः । **उपाध्याया** वसिष्ठादयो राजपुरोहिताः ।

हुए अयोध्या में प्रवेश करेंगे । और सब कुछ जानते हुए हम इन्हें कुछ नहीं बता रहे । बताएँ भी कैसे ?

—पिता का स्वर्गवास, माता का राज्यैश्वर्य-लोभ, बड़े भाई का वन-वास—एक एक से बढ़कर एक साथ इन तीन दोषों को कहने के लिए कौन जीभ हिलायेगा ? ॥४॥

[भट—सिपाही का प्रवेश]

भट—जय हो राजकुमार की !

भरत—भद्र ! (मुझे लिवा लेने) क्या शत्रुघ्न आ पहुँचा है ?

भट—कुमार तो आ ही रहे हैं । किन्तु उपाध्यायों ने आपको कहा है ।

भरतः—किमिति किमिति ।

भटः—एकनाडिकावशेषः कृत्तिकाविषयः । तस्मात् प्रतिपन्नायामेव रोहिण्यामयोध्यां प्रवेक्ष्यति कुमारः ।

भरतः—बाढमेवम् । न मया गुरुवचनमतिक्रान्तपूर्वम् । गच्छ त्वम् ।

भटः—यदाज्ञापयति कुमारः । [निष्क्रान्तः]

भरतः—अथ कस्मिन् प्रदेशे विश्रमिष्ये । भवतु, दृष्टम् । एतस्मिन् वृक्षान्तराविष्कृते देवकुले मुहूर्तं विश्रमिष्ये ।

किमिति—आहुरिति शेषः । **एकनाडिकेति**—**कृत्तिकाविषयः** कृत्तिकानक्षत्रयुक्तः कालः, **एकनाडिकावशेषः** एका नाडिका घटी अवशेषो यस्य तादृशः, कृत्तिकानक्षत्रसमाप्तौ केवलैका नाड्यवशिष्यत इति भावः । **रोहिण्यां** रोहिणीनक्षत्रे, **प्रतिपन्नायां** प्रारब्धायाम्, **प्रवेक्ष्यति** प्रवेष्टुमर्हति । क्रूरनक्षत्रतया कृत्तिकासु नगरप्रवेशनिषेधात्, तासां च समाप्तौ घटीमात्रमवशिष्यते, तद् व्यतियाप्य रोहिणीप्रवेशे सति त्वया नगरे प्रवेष्टव्यमिति भावः । तदुक्तम्—'मघा मृगशिरो हस्तः स्वाती मूलानुराधयोः । रेवती रोहिणी चैवोत्तराणां त्रितयं तथा ॥ आवाहे च विवाहे च वियासङ्ग्रहणेषु च । वापयेत् सर्वबीजानि गृहं ग्रामं प्रवेशयेत् ॥' इति । **बाढमिति**—बाढमित्यङ्गीकारे । **अतिक्रान्तपूर्वम्** पूर्वमतिक्रान्तमुल्लंघितम् [भूतपूर्ववत् केवलसमासः], मया नेतः पूर्वं जात्वपि गुरुजनाज्ञोल्लंघिता, किमिवाद्यैवोत्कण्ठातिशयवशाद् अविनीतमार्गं गुर्वाज्ञोल्लंघनमाश्रयेयमिति भरतहृदयम् । **अथेति**—**विश्रमिष्ये** मार्गजनितश्रान्त्यपनोदं करिष्ये । श्राम्यतेरात्मनेपदं कवीनां निरङ्कुशत्वात् । **दृष्टम्** विश्रमयोग्यं स्थानमुपलब्धम् । **वृक्षे**त्यादि—वृक्षाणाम्, अन्तरे अवकाशे मध्ये, आविष्कृते लक्षिते, **देवकुले**

भरत—सो क्या ? सो क्या ?

भट—कृत्तिका नक्षत्र का समय केवल एक घड़ी शेष है । इसलिए रोहिणी नक्षत्र के लगते ही राजकुमार अयोध्या में प्रवेश करें ।

भरत—बहुत अच्छा । यही सही । मैंने आज तक कभी भी गुरुजनों के वचनों का उल्लंघन नहीं किया है । अच्छा, जाओ तुम ।

भट—जो राजकुमार की आज्ञा । [प्रस्थान]

भरत—अब किस जगह विश्राम करूँ ? अच्छा, देख लिया । वृक्षों के

तदुभयं भविष्यति दैवतपूजा विश्रमश्च । अथच उपोपविश्य प्रवेष्टव्यानि नगराणीति सत्समुदाचारः । तस्मात् स्थाप्यतां रथः ।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । [रथं स्थापयति]

भरतः—[रथादवतीर्य] सूत ! एकान्ते विश्रामयाश्वान् ।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । [निष्क्रान्तः]

भरतः—[किञ्चिद् गत्वावलोक्य] साधुमुक्तपुष्पलाजाविष्कृता बलयः, दत्तचन्दनपञ्चाङ्गुला भित्तयः, अवसक्तमाल्यदामशोभीनि द्वाराणि, प्रकीर्णा वालुकाः । किन्नुखलु पार्वणोऽयं विशेषः, अथवा आह्निकमास्तिक्यम् ।

देवालये । **तत्** तस्माद् देवालये विश्रमादित्यर्थः । **अथच** किञ्चेत्यर्थः । **उप** नगरोपकण्ठे, **उपविश्य** किञ्चिद् विश्रम्य, **नगराणि, प्रवेष्टव्यानि** प्रवेशार्हाणि, **इति, सत्समुदाचारः** सतां शिष्टानाम्, समुदाचारः, पालितो भविष्यतीति शेषः ।

साधुमुक्तेत्यादि—साधु सम्यग् यथा स्यात् तथा मुक्तैर्विकीर्णैः, पुष्पैः कुसुमैः, लाजैः अक्षतैः ['लाजाः पुंभूम्नि चाक्षता' इत्यमरः], आविष्कृताः प्रकटिताः । **बलयो** देवतोपहाराः । **दत्ते**त्यादिसमस्तं पदद्वयं प्रवेशके व्याख्यातम् । **अयं** दृश्यमानः, **विशेषः** बल्युपहरणदेवकुलालङ्कारादिलक्षणः, **पार्वणः** पर्वणि भवः, पर्वविशेषहेतुना कृत इत्यर्थः ।

अन्तराल में से दीख पड़ रहे इस देवालय में ही चलकर कुछ देर विश्राम करूँगा । इससे एक पन्थ दो काज हो जायँगे—देवताओं की पूजा की पूजा और विश्राम का विश्राम । और एक बात यह भी कि नगर के निकट कुछ काल ठहर (सुस्ताकर) नगरों में प्रवेश करना चाहिए, ऐसा शिष्टाचार है । इसलिए रथ ठहरा लो ।

सूत—जो आज्ञा चिरजीवी की । [रथ ठहराता है]

भरत—[रथ से उतरकर] सारथि ! एक ओर ले जाकर घोड़ों को विश्राम दो ।

सूत—जो आज्ञा चिरजीवी की । [प्रस्थान]

भरत—[कुछ चलकर और देखकर] यहाँ तो विधिवत् चढ़ाये हुए फूलों तथा खीलों के चढ़ावे दृष्टिगोचर हो रहे हैं । दीवारों पर पुताई के ऊपर चन्दन से पाँच-पाँच अङ्गुलियों की छापें लगाई हुई हैं । दरवाज़े फूलों

भरतः—किमिति किमिति ।

भटः—एकनाडिकावशेषः कृत्तिकाविषयः । तस्मात् प्रतिपन्नायामेव रोहिण्यामयोध्यां प्रवेक्ष्यति कुमारः ।

भरतः—बाढमेवम् । न मया गुरुवचनमतिक्रान्तपूर्वम् । गच्छ त्वम् ।

भटः—यदाज्ञापयति कुमारः । [निष्क्रान्तः]

भरतः—अथ कस्मिन् प्रदेशे विश्रमिष्ये । भवतु, दृष्टम् । एतस्मिन् वृक्षान्तराविष्कृते देवकुले मुहूर्तं विश्रमिष्ये ।

किमिति—आहुरिति शेषः । **एकनाडिकेति**—**कृत्तिकाविषयः** कृत्तिकानक्षत्रयुक्तः कालः, **एकनाडिकावशेषः** एका नाडिका घटी अवशेषो यस्य तादृशः, कृत्तिकानक्षत्रसमाप्तौ केवलैका नाड्यवशिष्यत इति भावः । **रोहिण्यां** रोहिणीनक्षत्रे, **प्रतिपन्नायां** प्रारब्धायाम्, **प्रवेक्ष्यति** प्रवेष्टु-मर्हति । क्रूरनक्षत्रतया कृत्तिकासु नगरप्रवेशनिषेधात्, तासां च समाप्तौ घटी-मात्रमवशिष्यते, तद् व्यतियाप्य रोहिणीप्रवेशे सति त्वया नगरे प्रवेष्टव्यमिति भावः । तदुक्तम्—'मघा मृगशिरो हस्तः स्वाती मूलानुराधयोः । रेवती रोहिणी चैवोत्तराणां त्रितयं तथा ॥ आवाहे च विवाहे च वियासङ्ग्रहणेषु च । वापयेत् सर्वबीजानि गृहं ग्रामं प्रवेशयेत् ॥' इति । **बाढमिति**—बाढमित्यङ्गी-कारे । **अतिक्रान्तपूर्वम्** पूर्वमतिक्रान्तमुल्लंघितम् [भूतपूर्ववत् केवलसमासः], मया नेतः पूर्वं जात्वपि गुरुजनाज्ञोल्लंघिता, किमिवाद्यैवो-त्कण्ठातिशयवशाद् अविनीतमार्गं गुर्वाज्ञोल्लंघनमाश्रयेयमिति भरतहृदयम् । **अथेति**—**विश्रमिष्ये** मार्गजनितश्रान्त्यपनोदं करिष्ये । श्राम्यतेरात्मने-पदं कवीनां निरङ्कुशत्वात् । **दृष्टम्** विश्रमयोग्यं स्थानमुपलब्धम् । **वृक्षे-त्यादि**—वृक्षाणाम्, अन्तरे अवकाशे मध्ये, आविष्कृते लक्षिते, **देवकुले**

भरत—सो क्या ? सो क्या ?

भट—कृत्तिका नक्षत्र का समय केवल एक घड़ी शेष है । इसलिए रोहिणी नक्षत्र के लगते ही राजकुमार अयोध्या में प्रवेश करें ।

भरत—बहुत अच्छा । यही सही । मैंने आज तक कभी भी गुरुजनों के वचनों का उल्लंघन नहीं किया है । अच्छा, जाओ तुम ।

भट—जो राजकुमार की आज्ञा । [प्रस्थान]

भरत—अब किस जगह विश्राम करूँ ? अच्छा, देख लिया । वृक्षों के

तदुभयं भविष्यति दैवतपूजा विश्रमश्च। अथच उपोपविश्य प्रवेष्टव्यानि नगराणीति सत्समुदाचारः। तस्मात् स्थाप्यतां रथः।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। [रथं स्थापयति]

भरतः—[रथादवतीर्य] सूत ! एकान्ते विश्रामयाश्वान्।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। [निष्क्रान्तः]

भरतः—[किञ्चिद् गत्वावलोक्य] साधुमुक्तपुष्पलाजाविष्कृता बलयः, दत्तचन्दनपञ्चाङ्गुला भित्तयः, अवसक्तमाल्यदामशोभीनि द्वाराणि, प्रकीर्णा वालुकाः। किन्नुखलु पार्वणोऽयं विशेषः, अथवा आह्निकमास्तिक्यम्।

देवालये। **तत्** तस्माद् देवालये विश्रमादित्यर्थः। **अथच** किञ्चेत्यर्थः। **उप** नगरोपकण्ठे, **उपविश्य** किञ्चिद् विश्रम्य, **नगराणि, प्रवेष्टव्यानि** प्रवेशार्हाणि, **इति, सत्समुदाचारः** सतां शिष्टानाम्, समुदाचारः, पालितो भविष्यतीति शेषः।

साधुमुक्तेत्यादि—साधु सम्यग् यथा स्यात् तथा मुक्तैर्विकीर्णैः, पुष्पैः कुसुमैः, लाजैः अक्षतैः ['लाजाः पुंभूम्नि चाक्षता' इत्यमरः], आविष्कृताः प्रकटिताः। **बलयो** देवतोपहाराः। **दत्ते**त्यादिसमस्तं पदद्वयं प्रवेशके व्याख्यातम्। **अयं** दृश्यमानः, **विशेषः** बल्युपहरणदेवकुलालङ्कारादिलक्षणः, **पार्वणः** पर्वणि भवः, पर्वविशेषहेतुना कृत इत्यर्थः।

अन्तराल में से दीख पड़ रहे इस देवालय में ही चलकर कुछ देर विश्राम करूँगा। इससे एक पन्थ दो काज हो जायँगे—देवताओं की पूजा की पूजा और विश्राम का विश्राम। और एक बात यह भी कि नगर के निकट कुछ काल ठहर (सुस्ताकर) नगरों में प्रवेश करना चाहिए, ऐसा शिष्टाचार है। इसलिए रथ ठहरा लो।

सूत—जो आज्ञा चिरजीवी की। [रथ ठहराता है]

भरत—[रथ से उतरकर] सारथि ! एक ओर ले जाकर घोड़ों को विश्राम दो।

सूत—जो आज्ञा चिरजीवी की। [प्रस्थान]

भरत—[कुछ चलकर और देखकर] यहाँ तो विधिवत् चढ़ाये हुए फूलों तथा खीलों के चढ़ावे दृष्टिगोचर हो रहे हैं। दीवारों पर पुताई के ऊपर चन्दन से पाँच-पाँच अङ्गुलियों की छापें लगाई हुई हैं। दरवाज़े फूलों

कस्यनुखलु दैवतस्य स्थानं भविष्यति । नेह किञ्चित् प्रहरणं ध्वजो वा बहिश्चिह्नं दृश्यते । भवतु, प्रविश्य ज्ञास्ये । [प्रविश्यावलोक्य] अहो क्रियामाधुर्यं पाषाणानाम् । अहो भावगतिराकृतीनाम् । दैवतोद्दिष्टानामपि मानुषविश्वासता्सां प्रतिमानाम् । किन्नुखलु चतुर्दैवतोऽयं स्तोमः । अथवा यानि तानि भवन्तु । अस्ति तावन्मे मनसि प्रहर्षः ।

आह्निकम् प्रतिदिनमनुष्ठीयमानम्, आस्तिक्यम् आस्तिककर्म । **नेहेति**—**प्रहरणम्** त्रिशूलशक्त्यादि आयुधम्, **ध्वजः** वृषभादिचिह्निता पताका । **बहिश्चिह्नम्** बाह्यलक्षणम् । तत्तद्देवानामालयेषु परिचयार्थं तत्तद्देवानां सम्बन्धि त्रिशूलाद्यायुधं ध्वजादि वा बहिः स्थाप्यते, येन विज्ञायते यदस्या देवताया इदमायतनमिति । परमिह तु किमपि बाह्यचिह्नं नास्ति, इति न ज्ञायते कस्य देवस्यायमालय इति भावः । **प्रविश्य** मन्दिरान्तर्गत्वेत्यर्थः । पाषाणमूर्तीरवलोक्याह—**अहो** इति । **क्रियामाधुर्यम्** रचनासौष्ठवम्, **भावगतिः** भावव्यञ्जनप्रकारः । **दैवते**त्यादि—दैवतमुद्दिष्टम् उद्देशो यासां तादृशीनां देवताविशेषोद्देशेन रचितानाम् । **मानुषे**त्यादि—मानुषाः इमा मानुष्यः प्रतिमाः, इति विश्वासो यासु तासां भावः । देवविशेषप्रतिमात्वेन कल्पितास्वपि आसु मनुष्यप्रतिमाबुद्धिरुदेतीति भावः । **किन्न्विति**—**चतुर्दैवतः** चत्वारि दैवतानि यत्र तादृशः, **स्तोमः** समुदायः । कास्ताश्चतस्रो देवता भवेयुर्यासामिमा मूर्तयः ? इति समस्तार्थः । किमिति प्रश्ने, सामान्ये, नपुंसकम् । **अथवे**ति—यानि कान्यपि भवन्तु देवताप्रतिमा वा मनुष्यप्रतिमा वा, सर्वथापि तु मे मनः प्रहृष्टमस्तीति भावः ।

की मालाएँ लटका-लटकाकर सजाये हुए हैं । चारों ओर बालू बिछा हुआ है । क्या यह कोई त्योहार विशेष है ? अथवा किसी आस्तिक का कोई दैनिक अनुष्ठान है ? अच्छा, भीतर जाकर मालूम कर लेता हूँ । [भीतर जाकर और देखकर] अहा ! पत्थरों की कारीगरी की क्या ही मनोहरता है । अहा ! मूर्तियों की सजीव भावव्यञ्जकता है । देवताओं की होते हुए भी ये मूर्तियाँ हू-बहू मनुष्यों की-सी जान पड़ती हैं । यह चार ही देवताओं का समुदाय तो नहीं ? अथवा जिन किन्हीं का भी हो । मेरे हृदय में तो इन्हें देख देख असीम (अपार) उल्लास हो रहा है ।

कामं दैवतमित्येव युक्तं नमयितुं शिरः।
वार्षलस्तु प्रणामः स्यादमन्त्रार्चितदैवतः ॥५॥

[प्रविश्य]

देवकुलिकः—भोः! नैत्यकावसाने प्राणिधर्ममनुतिष्ठति मयि कोऽनुखल्वयमास्तां प्रतिमानामल्पान्तराकृतिरिव प्रतिमागृहं प्रविष्टः। भवतु, प्रविश्य ज्ञास्ये।

[प्रविशति]

"काममि"ति—**दैवतमित्येव** इयं काचिद् देवतास्तीति बुद्ध्यैव, शिरः मूर्धा, **नमयितुम्** प्रणतं कर्तुम्, **कामं युक्तम्** युक्ततयानुमन्तव्यं भवत्वित्यर्थः ['अकामानुमतौ कामम्'इत्यमरः]। **तु** परन्तु, **प्रणामः** शिरोनमनम्, **अमन्त्रार्चितदैवतः** न, मन्त्रेण वैदिकमन्त्रेण, अर्चितं पूजितम्, दैवतं देवता, यत्र तादृशः मन्त्रपूजारहितः, सन्, **वार्षलः** वृषलसम्बन्धी शूद्रकृतप्रणामवदित्यर्थः, **स्याद्** भवेत्। देवतात्वाऽनिश्चयेऽपि कामं देवबुद्ध्यैव प्रणामोऽस्तु, तथापि स प्रणामः शूद्रवद् मन्त्रोच्चारणरहित एव करिष्यते। देवतात्वनिश्चय एव मन्त्रोच्चारणस्य युक्तत्वादिति भावः। देवप्रतिमानां नमस्कारमात्रे शूद्राणामधिकारो न तु मन्त्रपूर्वकतदर्चनादौ। अत एव वार्षल इत्युक्तम्। वार्षलत्वेऽमन्त्रार्चितदैवतत्वं हेतुरिति काव्यलिङ्गम् ॥६॥

भो इति—**नैत्यकावसाने** नैत्यकस्य नित्यकर्मणः सन्ध्यावन्दनादेः, अवसाने समाप्तौ, **प्राणिधर्मम्** प्राणिनां धर्मं भोजनादि, **अनुतिष्ठति** कुर्वाणे। **अल्पेत्यादि**—अल्पम्, अन्तरं भेदो यस्याः सा अल्पान्तरा अत्यन्तसदृशी, तादृशी आकृतिर्यस्य तादृश इव। अल्पान्तरेत्यस्य प्रतिमानामित्यनेन सम्बन्धः। देवदत्तस्य गुरुकुलमित्यादिवत् समासः। प्रतिमासदृशाकृतिरिति भावः। **ज्ञास्ये** कोऽयं प्रविष्ट इति ज्ञास्यामि।

—देवताओं की समझकर इन मूर्तियों को सिर झुका नमस्कार करना उचित ही है। किन्तु (देवता का ठीक ठीक निश्चय न होने से) नमस्कार विना मन्त्र पढ़े ही करना चाहिए, जैसा कि शूद्रों का होता है ॥५॥

[देवकुलिक—पुजारी का प्रवेश]

देवकुलिक—अरे! नैत्यिक पूजा-पाठ करने के उपरान्त मेरे ठीक भोजनादि के अवसर पर लगभग इन मूर्तियों से मिलती-जुलती आकृति वाला कौन यह मूर्त्ति-मन्दिर में घुस पड़ा है? अच्छा, भीतर जाकर मालूम किये लेता हूँ। [भीतर जाता है]

भरतः—नमोऽस्तु ।
देवकुलिकः—नखलु नखलु प्रणामः कार्यः ।
भरतः—मा तावद् भोः !

वक्तव्यं किञ्चिदस्मासु विशिष्टः प्रतिपाल्यते ।
किङ्कृतः प्रतिषेधोऽयं नियमप्रभविष्णुता ॥६॥

देवकुलिकः—न खल्वेतैः कारणैः प्रतिषेधयामि भवन्तम् । किन्तु दैवतशङ्कया ब्राह्मणजनस्य प्रणामं परिहरामि । क्षत्रिया ह्यत्रभवन्तः ।

भरतः प्रतिमा उद्दिश्य नमस्करोति—**नम** इति । देवकुलिकस्य प्रणामनिषेधमसहमानो भरत आह—**मा तावदि**ति । प्रणामनिषेधो न कार्य इत्यर्थः ।

"**वक्तव्य**"मिति—**अयम्** इदानीमेव त्वया कृतः, **प्रतिषेधः** प्रणामप्रतिषेधः, **किंकृतः** केन हेतुना कृतः ? **अस्मासु** मयीत्यर्थः ['अस्मदो द्वयोश्च' इति बहुवचनम्], **किञ्चिद्** , **वक्तव्यम्** वचनीयं दूषणम् , अस्ति किम् इति शेषः, येनाहं प्रणामायोग्यः कृतः । अथवा **विशिष्टः** अस्मदपेक्षया श्रेष्ठः कश्चिदन्यः, **प्रतिपाल्यते** प्रतीक्ष्यते, यदागमनभीत्यान्येषां प्रणामावसरो न दीयते । अथवा **नियमप्रभविष्णुता** नियमस्य 'अनेन प्रणामः कार्यः, अनेन न कार्यः' इत्यादि नियमस्य, प्रभविष्णुता प्रभुत्वं सामर्थ्यम्, त्वय्यस्ति किम् ? येन त्वं मां प्रणामाद् वारयसि । गणपतिशास्त्रिणस्तु—नियमप्रभविष्णुता आत्मगता तपोऽनुष्ठानप्रौढिः, तत्कृतः किमयं प्रतिषेधः, इति व्याचख्युः । स्वतपोविशेषेण गर्वितो वा त्वं मां निषेधसीति तदभिप्रायः ॥६॥

देवकुलिकोक्तौ **किन्त्विति** । **दैवतशङ्कया** देवताभ्रमेण, **ब्राह्मण-**

भरत—नमस्कार ।
देवकुलिक—नहीं, नहीं । प्रणाम मत करो ।
भरत—क्यों रोक रहे हो ? जी !

—हममें कोई दोष है ? या हमारी अपेक्षा किसी अच्छे प्रणामाधिकारी (के आगमन) की प्रतीक्षा कर रहे हो (जिसके आने के भय से औरों को प्रणाम करने का अवसर नहीं दिया जाता) ? प्रणाम करने से यह रोक क्यों रहे हो ? यदि तुम्हें नये नये नियम वड़ने की हिम्मत (अपने नियमाचरण का दर्प) हो तो वैसे ही बताओ ॥६॥

देवकुलिक—नहीं, इन कारणों से आपको नहीं रोक रहा। किन्तु इसी लिए रोक रहा हूँ कि ब्राह्मण होकर कहीं देवताओं के भ्रम से इन्हें प्रणाम न कर बैठो । प्रतिमाओं में ये तो क्षत्रिय महानुभाव हैं ।

भरतः—एवम्। क्षत्रिया ह्यत्रभवन्तः। अथ के नामात्रभवन्तः।
देवकुलिकः—इक्ष्वाकवः।
भरतः—[सहर्षम्] इक्ष्वाकव इति। एते तेऽयोध्याभर्तारः।

एते ते दैवतानामसुरपुरवधे गच्छन्त्यभिसरी-
मेते ते शक्रलोके सपुरजनपदा यान्ति स्वसुकृतैः।
एते ते प्राप्नुवन्तः स्वभुजबलजितां कृत्स्नां वसुमती-
मेते ते मृत्युना ये चिरमनवसिताश्छन्दं मृगयता ॥७॥

जनस्य मया ब्राह्मणत्वेन सन्दिह्यमानस्य तवेत्यर्थः। प्रणमनकर्तरि षष्ठी। **अत्रभवन्तः** पूजनीयाः प्रतिमापुरुषाः, **क्षत्रियाः** क्षत्रजातीयाः, सन्तीति शेषः। **इक्ष्वाकवः** इक्ष्वाकुकुलोत्पन्नाः।

सहर्षमिति—स्वकुलसम्बन्धविज्ञानं हर्षहेतुः।

"**एते त**" इति—**एते** प्रतिमारूपेण पुरोदृश्यमानाः, ते प्रसिद्धाः, अयोध्याधिपतयः, सन्ति, ये **असुरपुरवधे** असुराणां पुरमसुरपुरम् असुरपुरवासी असुरसमूह इत्यर्थः, तस्य वधे संहारे [अथवा असुरपुरमसुरनगरम्, तस्य वधे विनाशे, इति व्याख्येयम्। यद्यपि वधः प्राणिनामेव, तथापि वधशब्देनात्र ध्वंसमात्रं विवक्षितम्], **दैवतानाम्** देवानाम्, **अभिसरीम्** साहाय्यार्थमग्रगमनम् साहाय्यं वा [अभिसरतेः 'अच् इः'। ततः 'कृदिकारादक्तिन' इति ङीष्] **गच्छन्ति** प्राप्नुवन्ति [इमा मूर्तयस्तेषामयोध्याधिपतीनां सन्ति, ये देवासुरसङ्ग्रामे देवानां साहाय्यमकुर्वन्निति भावः। गच्छन्तीति वर्तमानकालेन देवसाहाय्यं तेषां स्वभाव इति व्यञ्जितम्]। **एते ते** सन्ति, ये **स्वसुकृतैः** स्वशुभकर्मभिः,

---

भरत—ऐसी बात? क्या ये क्षत्रिय महानुभाव हैं? अच्छा तो फिर ये कौन कौन महानुभाव हैं?
देवकुलिक—ये इक्ष्वाकु-वंशीय हैं।
भरत—[सहर्ष] क्या इक्ष्वाकु-वंशीय? ये वही अयोध्या के राजा?

—क्या ये वही हैं, जो असुरों के नगर विध्वंस करने देवताओं की सहायता के लिए जाते रहे हैं; क्या ये वही हैं, जो अपने पुण्यों के बल से अपने नगर तथा जनपद के प्रजाजनों समेत इन्द्रलोक में जाते रहे हैं; क्या ये वही हैं, जो अपने बाहुबल से सम्पूर्ण भूमण्डल को जीत कर अपने अधिकार में करते रहे हैं; क्या ये वही हैं, जिन्हें उनकी इच्छा की प्रतीक्षा करते रहने से मृत्यु ने दीर्घ काल तक उनकी इच्छा पर ही छोड़े रक्खा ॥७॥

भोः ! यदृच्छया खलु मया महत् फलमासादितम् ।
अभिधीयतां कस्तावदत्रभवान् ।

देवकुलिकः—अयं खलु तावत् सन्निहितसर्वरत्नस्य विश्वजितो यज्ञस्य प्रवर्तयिता प्रज्वलितधर्मप्रदीपो दिलीपः ।

भरतः—नमोऽस्तु धर्मपरायणाय । अभिधीयतां कस्तावदत्र-भवान् ।

सपुरजनपदाः पुरं नगरम्, जनपदो देशः, नगरदेशनिवासिन इत्यर्थः, तैः सह, **शक्रलोके** शक्रस्य इन्द्रस्य, लोके, **यान्ति** गच्छन्ति [ये स्वपुण्य-फलरूपेण न स्वयमेव स्वर्गं गच्छन्ति, अपितु स्वप्रजा अपि तत्र गमयन्तीति भावः] । **एते ते**, ये, **स्वभुजबलजिताम्** स्वभुजयोः स्वबाह्वोः, बलेन पराक्रमेण, जितां स्वायत्तीकृताम्, **कृत्स्नाम्** सकलाम्, **महीं** पृथ्वीम्, **प्राभुवन्तः** प्राभुवन्ति शासतीति भावः [प्रथमासामानाधिकरण्ये शतृप्रत्ययोऽयमपाणिनीयः] । **एते ते** सन्ति, ये, **छन्दम्** इच्छां यदीयां मरणविषयामिति शेषः, **मृगयता** अन्विच्छता प्रतीक्षमाणेनेत्यर्थः, **मृत्युना** यमेन, **चिरम्** बहुकालं यावत्, **अनवसिताः** अन्तं न नीताः न मारिता इत्यर्थः [एते ते सन्ति येषां मृत्युरपि न प्राभवत्, ये योगप्रभा-वाद् यथेच्छमृत्यवः सन्तश्चिरायुषोऽभवन्निति भावः] । अयोध्याधिपतीनां प्रभावातिशयो व्यङ्ग्यः । सुवदना छन्दः । तल्लक्षणं यथा—'ज्ञेया सप्ताश्व-षड्भिर्मरभनययुता भ्लौ गः सुवदना' ॥७॥

भो इति—**यदृच्छया** अकस्माद् । **फलम्** स्वपूर्वजदर्शनरूपम् । भरतो देवकुलिकं प्रति प्रथमां प्रतिमामुद्दिश्य पृच्छति—**अभिधीयतामिति** । **सन्निहितेति**—सन्निहितानि विश्वविजयहेतुना स्वान्तिक उपस्थितानि, सर्वाणि, रत्नानि श्रेष्ठद्रव्याणि, यत्र तादृशस्य । **विश्वजितः** विश्वजिन्नामकस्य । **प्रवर्तयिता** अनुष्ठाता । **प्रज्वलितेति**—प्रज्वलितः प्रदीपितः, धर्मः धर्मरूपः, प्रदीपो यस्य येन वा तादृशः । परमधार्मिक इति भावः ।

अहा ! सचमुच अचानक ही मैंने महान् फल पा लिया । अच्छा, कहिए, ये महानुभाव कौन हैं ?

देवकुलिक—ये हैं विश्वविजय से सम्पूर्ण रत्नों को जुटाकर किये जाने वाले विश्वजित् याग के प्रवर्तक और धर्म-प्रदीप को प्रकाशित रखने वाले महाराजा दिलीप ।

भरत—इन धर्मपरायण के लिए मेरा नमस्कार (श्रद्धाञ्जलि) । आगे कहिए, ये महानुभाव कौन हैं ?

देवकुलिकः—अयं खलु तावत् संवेशनोत्थापनयोरनेकब्राह्मण-जनसहस्रप्रयुक्तपुण्याहशब्दरवो रघुः ।

भरतः—अहो बलवान् मृत्युरेतामपि रक्षामतिक्रान्तः । नमोऽस्तु ब्राह्मणजनावेदितराज्यफलाय । अभिधीयतां कस्तावदत्रभवान् ।

देवकुलिकः—अयं खलु तावत् प्रियावियोगनिर्वेदपरित्यक्तराज्यभारो नित्यावभृथस्नानप्रशान्तरजा अजः ।

अयमिति—**संवेशनोत्थापनयोः** संवेशने शयनसमये, उत्थापने जागरणसमये च । **अनेके**त्यादि—अनेकैः, ब्राह्मणजनानां सहस्रैः, प्रयुक्त उच्चारितः, पुण्याहशब्दः पुण्याहमिति वचनम्, तस्य रवः ध्वनिः, यस्य तादृशः [यो दुरदृष्टशान्तये प्रत्यहं शयनजागरणवेलायां ब्राह्मणैः पुण्याहवाचनं कारितवानिति भावः] । **अहो** इति—**रक्षां** पुण्याहवाचनकृताम् । **अतिक्रान्तः** उल्लंघितवानित्यर्थः । पुण्याहवाचनरक्षितस्यापि रघोः स्ववशीकरणेन अहो मृत्योर्बलवत्त्वमिति भावः । **ब्राह्मणजने**ति—ब्राह्मणजनेभ्यः, आवेदितम् समर्पितम्, राज्यस्य, फलम् ऐश्वर्यभोगादिलक्षणं येन तस्मै, महावदान्यायेत्यर्थः । तृतीयां पृच्छति—**अभिधीयता**मिति ।

प्रियेत्यादि—प्रियायाः स्वप्रेयस्या इन्दुमत्याः, वियोगेन विरहेण, यो निर्वेदः विषयविरक्तिः, तेन परित्यक्तः, राज्यस्य भारो येन तादृशः । **नित्ये**त्यादि—नित्यम्, अवभृथस्नानेन यज्ञान्तस्नानेन, प्रशान्तं निरुद्धवेगम्, रजः [रजःशब्दस्य तमसोऽप्युपलक्षणत्वाद् तमश्चेत्यपि बोध्यम्], रजस्तमोविकारा रागद्वेषमोहा इत्यर्थः, यस्य तादृशः ।

देवकुलिक—ये हैं सोते और जागते समय सहस्रों ब्राह्मणों द्वारा उच्चारण किये जाते हुए पुण्याहवाचन के वेदमंत्रों की ध्वनि वाले महाराज रघु ।

भरत—ओह! बलवान् मौत इस रक्षा को भी उल्लंघन कर गई। ब्राह्मणजनों को अपना सम्पूर्ण राज्यैश्वर्य समर्पण करने वाले के लिए मेरा नमस्कार। आगे कहिए, ये महानुभाव कौन हैं ?

देवकुलिक—ये हैं अपनी प्रियतमा महारानी इन्दुमती के वियोग से विरक्त हो राज-पाट को तिलाञ्जलि देने वाले तथा नित्यप्रति के यज्ञदीक्षान्त अभिषेकों से सम्पूर्ण कल्मषों को धो डालने वाले महाराज अज ।

भरतः—नमोऽस्तु श्लाघनीयपश्चात्तापाय । [दशरथस्य प्रतिमामवलोकयन् पर्याकुलो भूत्वा] भोः ! बहुमानव्याक्षिप्तेन मनसा सुव्यक्तं नावधारितम् । अभिधीयतां कस्तत्रभवान् ।

देवकुलिकः—अयं दिलीपः ।

भरतः—पितुः पितामहो महाराजस्य । ततस्ततः ।

देवकुलिकः—अत्रभवान् रघुः ।

भरतः—पितामहो महाराजस्य । ततस्ततः ।

देवकुलिकः—अत्रभवानजः ।

भरतः—पिता तातस्य । किमिति किमिति ।

देवकुलिकः—अयं दिलीपः, अयं रघुः, अयमजः ।

श्लाघनीयपश्चात्तापाय श्लाघनीयः विषयविरक्तिहेतुत्वात् प्रशंसनीयः, पश्चात्तापः विषयासक्तिविषयोऽनुतापः, यस्य तादृशाय । **पर्याकुलः** व्याकुलः । अविदितपितृनिधनवृत्तान्तो भरतः पितृप्रतिमां दृष्ट्वा सञ्जातशङ्कः स्वशङ्कां निवर्तयितुं पुनरपि देवकुलिकं दिलीपादिविषये पृच्छति—**भो** इति । **बहुमानादि**—बहुमानः प्रणामादिना आदरातिशयः, तेन व्याक्षिप्तम् अन्यत्रासक्तम्, तेन । **सुव्यक्तम्** सुस्पष्टम् । **नावधारितम्** न निश्चितम् । क इमे त्वया पूर्वं निर्दिष्टा इतीति शेषः । वृद्धप्रपितामहादिक्रमेण निर्दिष्टानां प्रतिमानां मध्ये चतुर्थी प्रतिमा पितुरेव व्यवतिष्ठते इति पुनरपि पृच्छति—**किमितीति** ।

भरत—सराहनीय पश्चात्ताप ने वाले के लिए मेरा नमस्कार । [दशरथ की प्रतिमा को देखते ही हक्काबक्का रहकर] **ओह ! मेरा मन महापुरुषों के गौरव-चिन्तन में तल्लीन रहने से मैं ठीक ठीक नहीं जान पाया । फिर से कहिए, ये महानुभाव कौन हैं ?**

देवकुलिक—ये महाराज दिलीप हैं ।

भरत—महाराज के पिता जी के दादा जी । आगे चलिए ।

देवकुलिक—ये महाराज रघु हैं ।

भरत—महाराज के दादा जी । आगे चलिए ।

देवकुलिक—ये महाराज अज हैं ।

भरत—पिता जी के पिता जी । क्या कहा ? क्या ?

देवकुलिक—ये दिलीप हैं, ये रघु हैं, ये अज हैं ।

भरतः—भवन्तं किञ्चित् पृच्छामि । धरमाणानामपि प्रतिमाः स्थाप्यन्ते ।

देवकुलिकः—न खलु, अतिक्रान्तानामेव ।

भरतः—तेन ह्यापृच्छे भवन्तम् ।

देवकुलिकः—तिष्ठ ।

येन प्राणाश्च राज्यं च स्त्रीशुल्कार्थे विसर्जिताः ।
इमां दशरथस्य त्वं प्रतिमां किं न पृच्छसे ॥८॥

इयं पितुरेव प्रतिमेति देवकुलिकवचनान्निश्चित्य जीवतः प्रतिमास्थापनस्यानौचित्यं मन्वानो भरतः पृच्छति—**धरमाणानाम्**िति। धरमाणानाम् जीवताम्। नेति—न खलु धरमाणानां प्रतिमाः स्थाप्यन्त इति भावः। **अतिक्रान्तानाम्** अतीतानां मृतानामित्यर्थः। यद्यतिक्रान्तानामेव प्रतिमाः स्थाप्यन्ते तर्हि न मे पितुरियं प्रतिमा भवितुमर्हति, जीवितत्वात् तस्य। न मया तन्निधनदुर्वृत्तान्तोऽद्यापि कर्णगोचरीकृतः। अतो भवेदियं कस्यापीक्ष्वाकुकुलोत्पन्नस्यान्यस्य महीपतेः प्रतिमा। किमस्याः प्रश्नेनेति मनसिकृत्य भरतो देवकुलिकाद् गन्तुमनुज्ञां याचते—**तेन** हीति। **आपृच्छे** गन्तुमनुज्ञां याचे ['आङि नुप्रच्छयोः' इति तङ्]।

"येने"ति—**येन, स्त्रीशुल्कार्थे** विवाहसमये स्त्रियै भार्यायै दातुं प्रतिज्ञातं धनं स्त्रीशुल्क इत्युच्यते, तदर्थे तन्निमित्तेनेत्यर्थः ['अर्थे' इति विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम्], **प्राणाश्च** जीवितं च, **राज्यं च, विसर्जिताः** त्यक्तानि। 'विसर्जिताः' इति पदं नपुंसकप्रथमैकवचनान्तं 'विसर्जितम्' इति प्रकल्प्य राज्यमित्यनेनापि सम्बन्धनीयम् [विसर्जिता इति सृजेर्बाहुलकात् स्वार्थे णिचि रूपम्। अत्र 'नपुंसकमनपुंसकेन—' इत्यादिसूत्रोक्तनपुंसकैकशेषेण 'विसर्जितम्' इति पाठ उचितः प्रतिभाति], तस्य **दशरथस्य, इमाम्** त्वत्पुरोवर्तिनीम्, **प्रतिमाम्** मूर्तिम्, अस्या विषय इत्यर्थः, **किम्** केन हेतुना,

---

भरत—आप से कुछ पूछना चाहता हूँ। क्या जीवितों की भी प्रतिमाएँ स्थापन की जाती हैं?

देवकुलिक—नहीं तो। केवल मरे हुओं की।

भरत—तो अब आप से बिदा माँगता हूँ।

देवकुलिक—ठहरिए,

—जिन्होंने अपने प्राण और राज्य सब कुछ स्त्री-शुल्क के निमित्त न्योछावर कर दिया, उन्हीं महाराज दशरथ की इस प्रतिमा के विषय में आप क्यों कुछ नहीं पूछ रहे? ॥८॥

भरतः—हा तात ! [मूर्च्छितः पतति । पुनः प्रत्यागत्य]

हृदय ! भव सकामं यत्कृते शङ्कसे त्वं
शृणु पितृनिधनं तद् गच्छ धैर्यं च तावत् ।
स्पृशति तु यदि नीचो मामयं शुल्कशब्द-
स्त्वथ च भवति सत्यं तत्र देहो विशोध्यः ॥९॥[2]

न पृच्छसे ? न जिज्ञाससे ? तिसृणां प्रतिमानां विषये त्वया जिज्ञासा कृता । परमस्याश्चतुर्थ्याः प्रतिमाया विषये त्वया किमप्यपृष्ट्वैव निवृत्यते, कोऽत्र हेतुः । इयं खलु स्त्रीशुल्कार्थे राज्यं जीवितं च त्यक्तवतो महाराजदशरथस्य प्रतिमाऽस्ति इति भावः ॥८॥

देवकुलिकाद् दशरथनिधनवृत्तान्तं श्रुत्वा भरतोऽनुशोचति—**हा तातेति** । **प्रत्यागत्य** संज्ञां लब्ध्वा ।

"हृदये"ति—**हृदय !** हे मम मनः ! **सकामम्** लब्धमनोरथम्, सत्यशङ्कमिति यावत्, **भव** । **यत्कृते** यद्विषये, **त्वम्**, **शङ्कसे** शङ्कां करोषि, अशङ्किष्ठा इति भावः ['वर्तमानसमीपे भूते लट्'], **तत्**, **पितृनिधनम्** पितुर्महाराजदशरथस्य, निधनं मरणम्, तद्वृत्तान्तम्, **शृणु** स्वकर्णाभ्यामेवाकर्णय । **धैर्यं** च, **गच्छ** प्राप्नुहि, धीरो भव, पितृनिधनवृत्तान्तजनितशोकेन व्याकुलो मा भूरिति भावः । **तु** किन्तु, **अयम्** देवकुलिकमुखादचिरश्रुतः, **नीचः** नीचताद्योतकः निन्दितः, **शुल्कशब्दः** शुल्क इति शब्दः, **यदि**, **मां स्पृशति** मामुद्दिशति मामुद्दिश्यैव देवकुलिकेनोच्चारितः,

---

भरत—हाय ! पिता जी ! [मूर्च्छित होकर गिर पड़ता है, फिर सँभलकर]

—अभागे हृदय ! अब तू बागबाग (सु-सन्तुष्ट) हो जा । जिस बात की तुझे शङ्का थी, वही होकर रही । पिता जी की मृत्यु सुन और धैर्य धारण कर । किन्तु हा ! यदि यह नीच शुल्क-शब्द मेरे विषय में हुआ (मेरे लिए प्रेरित हुई माता ने स्त्री-शुल्क में राज्याभिषेक माँगने का दुराग्रह किया हो) और सत्य प्रमाणित हुआ, तो फिर अग्नि आदि कड़ी परीक्षा में देह की शुद्धि करनी होगी ॥९॥

---

१ यत्र. २ इतः प्राक् श्लोकादनन्तरं च "देवकुलिकः—समाश्वसिहि समाश्वसिहि । भरतः—(समाश्वस्य)" इति पाठः क्वचिद् दृश्यते । परमेतस्मिन् पाठे देवकुलिक इत्यतः प्राक पुनर्मूर्च्छितः पततीति पाठ आवश्यको भवति ।

आर्य ! ।

देवकुलिकः—आर्येति इक्ष्वाकुकुलालापः खल्वयम् । कच्चित् कैकेयीपुत्रो भरतो भवान् ननु ।

भरतः—अथकिम् अथकिम् । दशरथपुत्रो भरतोऽस्मि न कैकेय्याः ।

देवकुलिकः—तेन ह्यापृच्छे भवन्तम् ।

भरतः—तिष्ठ । शेषमभिधीयताम्

देवकुलिकः—का गतिः । श्रूयताम् । उपरतस्तत्रभवान् दशरथः ।

मद्धितमुद्दिश्यैव मन्मात्रा तादृशः स्त्रीशुल्को याचितो येन पितुर्निधनमजनी-त्येवमभिप्रायो देवकुलिकस्य भवेदिति भावः, **अथच** किंच, तत् **सत्यम्** अवितथम् [सामान्ये नपुंसकम्], **भवति,** देवकुलिकाभिप्रायो यथार्थो भवेदिति भावः, **तत्र** तर्हि, **देहः** एतन्मे शरीरम्, **विशोध्यः** अग्निधार-णादिदिव्यपरीक्षया विशुद्धतां प्रापयितव्यः । यदि मन्मात्रा मद्धितकामनया तादृशः शुल्को याचितो येन पितृनिधनमुपनतं तर्हि मातुस्तादृशशुल्कयाचने ममापि सम्मतिं लोकाः संभावयेयुः, तां संभावनां निराकर्तुं मयाप्यग्नि-धारणादिदिव्यपरीक्षणेनात्मशुद्धिः कर्तुमापतितेति भावः । मालिनी छन्दः ॥९॥

आर्येति—भरतेन देवकुलिकस्य सम्बोधनम् । **आर्येतीति—इक्ष्वाकु-कुलालापः** इक्ष्वाकुकुलोत्पन्नानां संबोधनप्रकार इति भावः । **कच्चिदिति** प्रश्ने । **अथकिमिति**—अथकिमित्यङ्गीकारे । यत्सत्यमहमिक्ष्वाकुकुलोत्पन्नोऽ-स्मीति भावः । कदाचिदयं मत्सकाशात् सीतारामादिवृत्तान्तं विजिज्ञासेत, ततोऽस्य महान् मानसक्लेश उत्पत्स्यत इति हेतोर्देवकुलिको भरतसान्निध्यं परिहर्तुं ततो गन्तुमनुज्ञां याचते—**तेन हीति** । **का गतिरिति—गतिः**

आर्य !

देवकुलिक—'आर्य !' इस तरह यह, सचमुच, इक्ष्वाकु कुल वालों का बातचीत करने का तरीका है। तो क्या आप कैकेयी के पुत्र भरत तो नहीं ?

भरत—जी हाँ, जी हाँ। दशरथ का पुत्र भरत ही हूँ, कैकेयी का नहीं।

देवकुलिक—तो अब आप से बिदा होना चाहता हूँ।

भरत—ठहरिए, शेष भी कह सुनाइए।

देवकुलिक—विवश हूँ। अच्छा, सुनिए। महाराज दशरथ तो चल बसे।

सीतालक्ष्मणसहायस्य रामस्य वनगमनप्रयोजनं न जाने ।

भरतः—कथं कथम् आर्योऽपि वनं गतः । [द्विगुणं मोहमुपगतः]

देवकुलिकः—कुमार ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

भरतः—[समाश्वस्य]

अयोध्यामटवीभूतां पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम् ।
पिपासार्तोऽनुधावामि क्षीणतोयां नदीमिव ॥१०॥

उपायः । इदानीं नास्ति कश्चनोपायः सीतारामादिवृत्तान्तगोपनस्य, प्रश्नानुत्तरणस्यानुचितत्वादिति भावः । **उपरतः** मृतः । **सीतालक्ष्मणसहायस्य** सीतालक्ष्मणौ सहायौ सहगामिनौ यस्य तादृशस्येति विग्रहः ।

"अयोध्यामि"ति—**पित्रा** जनकेन महाराजदशरथेन, **भ्रात्रा** रामेण लक्ष्मणेन च, **वर्जिताम्** रहिताम्, अतएव **अटवीभूताम्** [अटवीवेत्यटवीभूता, अथवा अनटवी अटवीभूतेत्यटवीभूता, तामिति विग्रहः । 'श्रेण्यादयः कृतादिभिः' इत्यनेन समासः] अरण्यतुल्याम, **अयोध्याम्** साकेतपुरीम्, **क्षीणतोयाम्** क्षीणं नष्टं तोयं जलं यस्यास्तादृशीम्, **नदीम्** सरितम्, **पिपासार्त इव** पिपासया उदन्यया, आर्तः व्याकुलो जन इव, अहम्, **अनुधावामि** गच्छामि । यथा जलतृष्णया व्याकुलस्य जनस्य निर्जलनद्यनुधावनं व्यर्थम्, तथैव पितृभ्रात्रादिदर्शनोत्कण्ठितस्य मम तद्रहितायोध्यानुधावनमपि व्यर्थमेव, प्रत्युतानुधावनक्लेशो नैराश्यं चातिरिच्यते इति भावः । पूर्णोपमालङ्कारः । पिपासार्तो जन उपमानम् । पित्रादिदर्शनोत्कण्ठितभरत उपमेयः । अनुधावनं समानो धर्मः । इवशब्द उपमावाचकः ।

सीता और लक्ष्मण सहित राम क्यों वन को चले गये, इस रहस्य का मुझे पता नहीं ।

भरत—क्या ? क्या ? आर्य भी वन को चले गये ?

[द्विगुण मूर्च्छित हो जाता है]

देवकुलिक—कुमार ! धीरज धरो, धीरज धरो ।

भरत—[सँभलकर] हा !

—पिता और भ्राता से शून्य हो वन की भाँति उजाड़ हुई अयोध्या की ओर मैं भी इसी भाँति भागा भागा जा रहा हूँ, जैसे कि प्यास से बरबस व्याकुल (भटकता) हुआ शुष्क जल वाली नदी की ओर ॥१०॥

आर्य ! विस्तरश्रवणं मे मनसः स्थैर्यमुत्पादयति । तत् सर्वमनवशेषमभिधीयताम् ।

देवकुलिकः—श्रूयतां, तत्रभवता राज्ञाभिषिच्यमाने तत्रभवति रामे भवतो जनन्याभिहितं किल ।

भरतः—तिष्ठ ।

तं स्मृत्वा शुल्कदोषं भवतु मम सुतो राजेत्यभिहितं
तद्धैर्येणाश्वसत्या व्रज सुत ! वनमित्यार्योऽप्यभिहितः ।

अयोध्याया नद्याश्च, पित्रादेस्तोयस्य च परस्परं बिम्बप्रतिबिम्बभावः । पिपासार्तोऽनुधावति, अहं त्वनुधावामीति पुरुषभेदात् प्रक्रमभङ्गाख्योऽलङ्कारदोषस्तु प्रतिभाति । अटवीभूतामित्यार्थ्युपमा । अटवीभूतत्वस्य पित्रादिराहित्येन समर्थनात् काव्यलिङ्गम् ॥१०॥

आर्येति—**विस्तरश्रवणम्** विस्तरेण श्रवणम् । **तिष्ठेति**—तिष्ठ मास्माग्रे वदः । मज्जनन्या तदानीं किमभिहितं भवेदिति न दुरूहम्, अतो नावश्यकताग्रे कथनस्येति भावः ।

जनन्योक्तं स्वयमेवोहते—"**तं स्मृत्वे**"ति । **तम्** पूर्वोक्तं पित्रनुष्ठितम्, **शुल्कदोषम्** [शुल्को दोषः शुल्कदोषस्तम्] शुल्कप्रदानप्रतिज्ञारूपं दोषमिति भावः [शुल्कप्रदानप्रतिज्ञाया दोषत्वं महाराजनिधनादिहेतुत्वाद् बोध्यम्], **स्मृत्वा, मम** कैकेय्याः, **सुतः** पुत्रो भरतः, **राजा** राजसिंहासनेऽभिषिक्तः, **भवतु** । **इति, अभिहितम्** प्रोक्तम्, भवेज्जनन्येति शेषः । **तद्धैर्येण** राज्ञा स्वप्रार्थितस्वसुतराजत्वाभिषेचनस्वीकृत्या जनितेन धैर्येणेत्यर्थः, **आश्वसत्या** अन्यदप्युचितमनुचितं वा मम वाञ्छितं स्वीकरिष्यत इति विश्वासवत्या, मम मात्रा, **सुत** ! हे पुत्र ! राम ! **वनम्**

ओह ! आर्य ! विस्तार-पूर्वक सुनने से मेरे मन को कुछ सहारा मिल रहा है । इसलिए, सब बातें आप पूरे तौर से कह सुनाइए ।

देवकुलिक—सुनिए, जब माननीय महाराज राजकुमार राम का अभिषेक कर रहे थे तब, कहते हैं, आपकी माता ने कहा ।

भरत—बस करो ।

—उस अनर्थकारी विवाह-शुल्क का स्मरण हो आने से बोली होगी—'मेरा पुत्र राजगद्दी पर बैठे' । इस माँग में सफल हो उसका हौसला और भी बढ़ जाने से इसी भरोसे आर्य से भी बोली होगी—'जाओ,

तं दृष्ट्वा बद्धचीरं निधनमसदृशं राजा ननु गतः
पात्यन्ते धिक्प्रलापा ननु मयि सदृशाः शेषाः प्रकृतिभिः ॥११॥

[मोहमुपगतः]

[नेपथ्ये]

उस्सरह अय्या ! उस्सरह । उत्सरतार्याः ! उत्सरत ।

देवकुलिकः—[विलोक्य] **अये,**

अरण्यम्, **व्रज** गच्छ, **इति** एवम्, **आर्योऽपि** रामोऽपि, **अभिहितः** प्रोक्तः, भवेदिति पूर्ववच्छेषः [भरते मत्पुत्रे राज्यारूढेऽपि रामस्य विद्यमानतायां न तद् राज्यं निष्कण्टकं भविष्यतीति कण्टकापनिनीषया तयार्यो वने प्रवासित इति हृदयम्]। **तम्** आर्यं रामम्, मातुराज्ञया वनं गन्तुम्, **बद्धचीरम्** बद्धं धारितं चीरं वल्कलादि येन तादृशम्, **दृष्ट्वा**, **राजा** महाराजदशरथोऽपि, **असदृशम्** पुत्रवियोगजन्यतया अननुरूपम्, **निधनम्** मृत्युम्, **गतः** प्राप्तः, **ननु** निश्चयेनेत्यर्थः [वार्धक्ये मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजामिक्ष्वाकुकुलजानां नृपाणां पुत्रवियोगजं निधनं तत्स्वरूपाननुरूपमेवेति भावः], **प्रकृतिभिः** प्रजाजनैः, **शेषाः** मन्मातृजनितरामवनप्रवासमहाराजनिधनपरिणामभूताः, **सदृशाः** अनुरूपाः, **धिक्प्रलापाः** धिक्कारवचांसि, **मयि** भरते, **पात्यन्ते** निक्षिप्यन्ते, मामुद्दिश्योच्यन्त इत्यर्थः । **ननु** । मदुद्देशेनैव कैकेय्या रामप्रवासो राजनिधनं चोत्पादितमिति तत्पुत्रस्य मम धिक्कारपात्रतोचितैवेति भावः । सुवदना छन्दः । लक्षणमुक्तं प्राक् ॥११॥

उत्सरतेति—**उत्सरत** मार्गं परित्यज्यैकतो भवतेत्यर्थः ।

बेटा ! वन को'। वल्कल पहने राम को वन जाते देख बस महाराज तो आपे से बाहर हो अनहोनी मौत मर गये। अब क्या चाहिए था ? सारी प्रजा माता की इस सारी करतूत के फलरूप, सब अनर्थों की जड़ मुझे धिक्कार रही होगी, सो है भी उचित ही ॥११॥

[मूर्च्छित हो गया]

[नेपथ्य में]

हट जाइए, सज्जनो ! हट जाइए ।

देवकुलिक—[देखकर] **ऐं !**

काले खल्वागता देव्यः पुत्रे मोहमुपागते ।
हस्तस्पर्शो हि मातॄणामजलस्य जलाञ्जलिः ॥१२॥

[ततः प्रविशन्ति देव्यः सुमन्त्रश्च]

सुमन्त्रः—इत इतो भवत्यः ।

इदं गृहं तत् प्रतिमानृपस्य नः
समुच्छ्रयो यस्य स हर्म्यदुर्लभः ।

"काल" इति—**पुत्रे**, **मोहम्** मूर्च्छाम्, **उपागते** प्राप्ते, सति, **देव्यः** कौसल्यादयो राज्ञ्यः, **काले** उचितेऽवसरे, **आगताः** प्राप्ताः, **खलु** । **हि** यतः, **मातॄणाम्** (कर्त्रीणाम्), **हस्तस्पर्शः** पाणिस्पर्शमात्रम् [पुत्रस्य कर्मणः], **अजलस्य** जलरहितस्य जलार्थिनः पिपासितस्य, **जलाञ्जलिः** जलाञ्जलिवदाप्यायको भवतीत्यर्थः । यथा पिपासाकुलो जललाभेन परमं सुखमश्नुते तथैव दुःखितस्य पुरुषस्य तन्मातृपाणिस्पर्शो निरतिशयं सुखं जनयतीति भावः । मातृहस्तस्पर्शरूपकार्येण सामयिकं देव्यागमनरूपं कारणं समर्थ्यत इति कार्येण कारणसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासः । उत्तरार्धे वाक्यार्थ-निदर्शना । मोहमुपगतस्य पुत्रस्य मातॄणां हस्तस्पर्शोऽजलस्य जलाञ्जलि-रिवेत्युपमायां पर्यवसानात् । तदुक्तम्—'निदर्शना । अभवन् वस्तुसंबन्ध उपमा-परिकल्पकः' । वाक्यार्थरूपकं वा ॥१२॥

इत इति—**इतः** अस्यां दिशि । 'आगच्छन्तु' इति वाक्यशेषः ।

सुमन्त्रः प्रतिमागृहं वर्णयति—"**इदमि**"ति । **यस्य** गृहस्य, **सः** प्रसिद्धः, **हर्म्यदुर्लभः** हर्म्येषु राजप्रासादेष्वपि, दुर्लभः दुष्प्रापः, राजप्रासादातिशायी-त्यर्थः, **समुच्छ्रयः** उच्चत्वं विस्तारश्च, अस्ति, **तदिदम्**, **नः** अस्माकम्, **प्रतिमानृपस्य** प्रतिमारूपस्य नृपस्य, **गृहम्** मन्दिरम्, **अयन्त्रितैः**

—पुत्र मूर्च्छित हुआ ही था कि माताओं का भी ठीक ही समय पर आना हुआ । क्योंकि पुत्र के लिए माताओं का हस्तस्पर्श, प्यास से भटकते हुए के लिए जल की अञ्जलि की भाँति, जीवित कर देने वाला होता है ॥१२॥

[देवियों तथा सुमन्त्र का प्रवेश]

सुमन्त्र—इधर, इधर, देवियाँ ।

—यह रहा वह प्रतिमा-रूप से विराजमान हमारे महाराज का सदन, जिसकी ऊँचाई राज-महलों में भी मिलनी दुर्लभ है । यात्री यहाँ विना

अयन्त्रितैरप्रतिहारिकागतै-
विना प्रणामं पथिकैरुपास्यते ॥१३॥

[प्रविश्यावलोक्य] भवत्यः ! नखलु नखलु प्रवेष्टव्यम् ।

अयं हि पतितः कोऽपि वयस्स्थ इव पार्थिवः ।

देवकुलिकः—

परशङ्कामलं कर्तुं गृह्यतां भरतो ह्ययम् ॥१४॥

[निष्क्रान्तः]

प्रतिबन्धरहितैः, **अप्रतिहारिकागतैः** प्रतिहारिकाया अभाव इत्यप्रतिहारिकम् [अर्थाभावेऽव्ययीभावः, क्रियाविशेषणम्], अप्रतिहारिकमागतैः द्वाररक्षिकानिदेशनिरपेक्षं प्रविष्टैः, **पथिकैः** पान्थैः, **प्रणामं विना** प्रणतिमन्तरेणैव, **उपास्यते** सेव्यते आश्रीयते । यद्यपीदं राजप्रतिमागृहं स्वसमुच्छ्रयेण राजप्रासादानप्यतिशेते, तथाप्यत्र प्रतिहार्याद्यभावेन लोका अनियन्त्रितं प्रविशन्ति । लोका अपि न सर्वे, किन्तु मार्गश्रान्ता विश्रमकाङ्क्षिणः पान्था एव । तेऽपि न प्रणामपूर्वकम् । राजप्रासादेषु तु गण्यमान्या एव प्रविशन्ति, तेषामपि प्रवेशः समयवेषादिना नियन्त्रितः, द्वाररक्षकनिदेशेन प्रणामपूर्वकश्च भवति । प्रासादेष्वपि निवसतां जीवतामेव प्रभावो न मृतानामिति वस्त्वत्र व्यज्यते । वंशस्थं वृत्तम् । 'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ' इति तल्लक्षणम् ॥१३॥

भवत्य इति—**भवत्य** इति संबोधनम् । न प्रवेष्टव्यमित्युक्तम् ।

तत्राप्रवेशे हेतुमाह—"**अयं ही**"ति । **हि** यतः, **अयम्** सन्निहितः **कोऽपि** नामादिनाऽविज्ञातः, **वयस्स्थः** वयसि तिष्ठतीति वयस्स्थः युवा ['सुपि स्थः' इति कः, खर्परे शरि वा विसर्गलोपो वक्तव्यः], **पार्थिव इव** [पृथिव्या ईश्वरः, अण्] राजेव, विलोक्यमानः, **पतितः**, अस्ति । **परशङ्काम्** परस्य अनात्मीयस्य, शङ्काम् सन्देहम्, **कर्तुम् अलम्** न कुरुत । भूमिपतितेऽस्मिन् यूनि अनात्मीयजनशङ्का न कार्येति भावः । **हि, अयम्** भूमिपतितो जनः, **भरतः**, **गृह्यताम्** अवबुध्यताम् ॥१४॥

द्वारपाल की आज्ञा के बे-रोकटोक आते जाते नमस्कार के विना इसकी उपासना किया करते हैं ॥१४॥

[भीतर जाकर और देखकर] **देवियो ! नहीं, नहीं । अन्दर मत आओ ।**

—यहाँ कोई तरुण राजा-सा मूर्च्छित पड़ा दीख रहा है ।

देवकुलिक—पराये आदमी की शङ्का मत करो । सँभालो इन्हें । ये तो भरत हैं ॥१४॥ [प्रस्थान]

देव्यः—[सहसोपगम्य] **हा जाद ! भरद !** (हा जात ! भरत !)

भरतः—[किञ्चित् समाश्वस्य] **आर्ये !** ।

सुमन्त्रः—**जयतु महा** [इत्यर्धोक्ते सविषादम्] **अहो ! स्वरसादृश्यम् । मन्ये प्रतिमास्थो महाराजो व्याहरतीति ।**

भरतः—**अथ मातॄणामिदानीं कावस्था ।**

देव्यः—**जाद ! एसा णो अवत्था ।** [अवगुण्ठनमपनयन्ति]
जात ! एषा नोऽवस्था ।

सुमन्त्रः—**भवत्यः ! निगृह्यतामुत्कण्ठा ।**

भरतः—[सुमन्त्रं विलोक्य] **सर्वसमुदाचारसन्निकर्षस्तु मां सूचयति । कच्चित् तात ! सुमन्त्रो भवान् ननु ।**

हेति—**जात** वत्स । **आर्ये**ति—आर्येति भरतेन देवकुलिकस्य संबोधनम्, न सुमन्त्रस्य । सुमन्त्रोपस्थितेर्भरतेनाविज्ञानात् । **जयत्वि**ति—भरतमुखाद् आर्येति शब्दं श्रुत्वा स्वरसादृश्येन सुमन्त्रस्य मूर्च्छिते भरते महाराजदशरथभ्रमो जातः । अतएव स 'जयतु महाराज' इति वक्तुमुद्यतः, परमर्धोक्त एव तस्य भ्रमो नष्टः । **अथे**ति—एष देवकुलिकं प्रति भरतस्य प्रश्नः । **निगृह्यतामि**ति—**निगृह्यताम्** निरुध्यताम् । **उत्कण्ठा** शोकावेग इत्यर्थः । शोकसन्तप्तमनाः पर्यश्रुनेत्रो भरतः स्वसन्निहितमपि सुमन्त्रं परिचेतुं नाशकद्, अनुमानात्तु तेन विज्ञातं यदयं सुमन्त्र इति तदेवानुमानमाह—**सर्वे**ति । **सर्वे**त्यादि—सर्वेषाम्, समुदाचाराणाम् अवगुण्ठनापनयनोत्कण्ठानिग्रहोपदेशादीनां व्यवहाराणाम्, **सन्निकर्षः** सान्निध्यम्, विद्यमानतेति यावत् । **सूचयति** अनुमापयति । अयं सुमन्त्र इति शेषः । अयं भावः—

देवियाँ—[वेग से पास जाकर] **हा बच्चे ! भरत !**

भरत—[कुछ सँभलकर] **आर्य !**

सुमन्त्र—**जय हो महा**···[आधा कहकर ही शोक-पूर्वक] **अहो ! कैसा एक-जैसा स्वर है ? मानो प्रतिमा में से महाराज ही बोल रहे हों।**

भरत—**कहो, इस समय माताओं की क्या दशा है ?**

देवियाँ—**बच्चे ! हमारी यह दशा हो पड़ी !** [घूँघट हटाती हैं]

सुमन्त्र—**देवियो ! शोक को रोके रक्खो ।**

भरत—[सुमन्त्र को देखकर] **सब प्रकार के मर्यादोचित शिष्टाचारों में आपके पास रहने के कारण, मुझे अनुमान हो रहा है, तात ! क्या आप सुमन्त्र हैं न ?**

सुमन्त्रः—कुमार ! अथकिम् । सुमन्त्रोऽस्मि ।

अन्वास्यमानश्चिरजीवदोषैः
कृतघ्नभावेन विड(म्ब?म्ब्य)मानः ।
अहं हि तस्मिन् नृपतौ विपन्ने
जीवामि शून्यस्य रथस्य सूतः ॥१५॥

राज्ञीनामवगुण्ठनापनयनं न विश्वसनीयात्मीयजनातिरिक्तजनसन्निधौ घटते, नवात्मीयातिरिक्तो राजपत्नीः 'निगृह्यतामुत्कण्ठा' इत्यादेष्टुमर्हति । परमिहेदं सर्वं जातम्, तदयमवश्यं कश्चिदात्मीयः सुमन्त्रो वा भवेदिति । तदेव स्वानुमितमर्थं निर्णेतुं सुमन्त्रं पृच्छति—**कच्चिदि**ति । गणपतिशास्त्रिणस्तु 'सर्वस्मिन् समुदाचारेऽवगुण्ठापनयनरूपे सन्निकर्षः सन्निधिस्थितिस्तु मां सूचयति 'अमुको भवानि'त्यनुमापयतीति व्याचक्षते ।

कुमारेति—**अथकिमि**ति स्वीकृतौ ।

"**अन्वास्ये**"ति—**चिरजीवदोषैः** चिरं बहुकालं यावद्, जीवः जीवनम् [भावे घञ्] तस्य दोषैः स्वजनवियोगविपद्दर्शनादिरूपैः [अथवा चिरं जीवतीति चिरजीवः, पचाद्यच्, दीर्घायुः पुरुष इत्यर्थः, तस्य दोषैः तत्सुलभैर्विपद्दर्शनादिरूपैर्दोषैरिति व्याख्येयम्], **अन्वास्यमानः** संबध्यमानः, **कृतघ्नभावेन** कृतं हन्तीति कृतघ्नः तस्य भावस्तेन अकृतज्ञतयेत्यर्थः, **विडम्ब्यमानः** उपहस्यमानश्च, **अहं हि** सुमन्त्रः [हिरत्र पादपूर्तिप्रयोजनः], **तस्मिन्** प्रक्रान्ते प्रसिद्धे वा, **नृपतौ** महाराजे दशरथे, **विपन्ने** मृते सत्यपि, **शून्यस्य** रथिरिक्तस्य, **रथस्य** स्यन्दनस्य, **सूतः** सारथिः सन्, **जीवामि** प्राणान् धारयामि । चिरकालजीवनं नाम नैकदोषयुक्तं भवति । अत्र हि स्वजनानां विपद्, तद्वियोगजन्यं दुःखं चानुभवितुमापतति । यथा दीर्घजीविना मया महाराजवियोगदुःखमनुभूयते । किंचाहं कृतघ्नोऽस्मि, यत् स्वस्वामिनि मृतेऽपि जीवामि । अनया कृतघ्नतयोपहसनीयतामहं नीतोऽस्मि ।

सुमन्त्र—राजकुमार ! जी हाँ, मैं सुमन्त्र ही हूँ ।

—दीर्घ काल तक जीने की बुराइयों से पीछा किया गया (इन आँखों अपने प्रिय-जनों की विपत्ति देख-देख सन्तप्त-हृदय हुआ), (प्रिय-जनों के स्वर्ग सिधार जाने पर यहीं पड़ा पड़ा जीने से) कृतघ्नता से घुला जाता, उन महाराज के स्वर्ग सिधारने पर भी सूने रथ का सारथि मैं अभागा अब तक जी रहा हूँ ॥१५॥

भरतः—हा तात ! [उत्थाय] तात ! अभिवादनक्रममुपदेष्टु-मिच्छामि मातॄणाम् ।

सुमन्त्रः—बाढम् । इयं तत्रभवतो रामस्य जननी देवी कौसल्या ।

भरतः—अम्ब ! अनपराद्धोऽहमभिवादये ।

कौसल्या—जाद ! णिस्सन्दावो होहि । जात ! निःसन्तापो भव ।

भरतः—[आत्मगतम्] आक्रुष्ट इवास्म्यनेन । [प्रकाशम्] अनुगृहीतोऽस्मि । ततस्ततः ।

साम्प्रतं महाराजं विना रिक्तरथवाहकोऽस्मि संवृत्त इति भावः । सुमन्त्रनिष्ठो निर्वेदाख्यो भावः प्राधान्येनात्र व्यज्यते । निर्वेदः स्वावमाननमिति निर्वेदलक्षणम् । नित्यानित्यवस्तुविवेकजन्यत्वाभावान्नास्यात्र रसत्वम् । उपजातिश्छन्दः ॥१५॥

शोकपर्याकुलो भरतः स्वमातॄरपि ज्येष्ठत्वादिना ज्ञातुमशक्तस्ताः क्रमेणाभिवन्दितुकामः सुमन्त्रमभिवादनक्रमं पृच्छति—**तातेति** । **अभिवादनेति**—कतमा जननी मया प्रथमसभिवन्दितव्येत्येवं क्रमम् । **उपदेष्टुमित्यस्य** त्वयेति शेषः । त्वया सुमन्त्रेणाहं क्रमसुपदेष्टव्य इतीच्छामीति भावः [समानकर्तृकेषु तुमुन् विधीयते, तथाचासमानकर्तृकेऽप्ययं तुमुन्नपाणिनीयः ।] । मातॄणामिति षष्ठी अभिवादनकर्मणि । **बाढमिति**—बाढमिति स्वीकृतौ । उपदिशामीत्यर्थः । अम्बेति—**अनपराद्धः** अपराधरहितः, नाहं वस्तुतः सर्वानर्थमूले तत्रभवतो ज्येष्ठस्य रामस्य वनप्रवासे हेतुरस्मीति भावः । **जातेति**—निर्गतः सन्तापो मानसं दुःखं यस्य स निःसन्तापः । पुत्र ! यज्जातं तज्जातमेव, किमिदानीं सन्तापेन क्रियते । मा स्मेदानीं सन्ताप्सीरिति भावः । **आक्रुष्ट इति**—**आक्रुष्ट इव** निन्दित इव । **अनेन** 'निःसन्तापो भव' इत्यनेनाशीर्वादवचनेन । अपकारिण्या अपि कैकेय्याः सुते मयि ज्येष्ठाया मातुरयं शुभाशीर्वाद आक्रोश इव मां व्यथयतीति भावः । **ततस्ततः** द्वितीयां प्रणमनीयां ब्रूहीत्यर्थः ।

भरत—हाय तात ! [उठकर] तात ! मैं माताओं को अभिवादन करने के क्रम का उपदेश लिया चाहता हूँ ।

सुमन्त्र—बहुत अच्छा । ये हैं श्रीराम की माता देवी कौसल्या ।

भरत—माता जी ! मैं निरपराध आपको अभिवादन करता हूँ ।

कौसल्या—बच्चे ! तेरे सन्ताप दूर हों ।

भरत—[स्वगत] इस मङ्गलाशीर्वाद से तो मेरी भर्त्सना-सी जान पड़ती है । [प्रकट] आपका बहुत अनुगृहीत हुआ । तब, फिर ?

सुमन्त्रः—इयं तत्रभवतो लक्ष्मणस्य जननी देवी सुमित्रा ।
भरतः—अम्ब ! लक्ष्मणेन अतिसन्धितो[1]ऽहमभिवादये ।
सुमित्रा—जाद ! जसोभाई होहि । जात ! यशोभागी भव ।
भरतः—अम्ब ! इदं प्रयतिष्ये । अनुगृहीतोऽस्मि । ततस्ततः ।
सुमन्त्रः—इयं ते जननी ।
भरतः—[सरोषम् उत्थाय] आः पापे !

> मम मातुश्च मातुश्च मध्यस्था त्वं न शोभसे ।
> गङ्गायमुनयोर्मध्ये कुनदीव प्रवेशिता ॥१६॥

अम्ब ! लक्ष्मणेनेति—**अतिसन्धितः** वञ्चितः [अतिसन्धाशब्दात् तारकादित्वादितच्] स हि मां विहाय स्वयमेव ज्येष्ठानुगमनं कृतवानिति भावः । लक्ष्मणेनेति अतिसन्धानकर्तरि तृतीया । क्वचित्तु अतिसंहित इति पाठः । स च साधीयान् । अर्थः स एव ['दधातेर्हिः' इति हिरादेशः] । **जाते**ति—**यशोभागी** यशस्वी भव । पितृवद् राज्यपालनेन यशस्वी भवेति भावः । **अम्ब ! इदमिति**—**इदम्** यश उद्दिश्येत्यर्थः, **प्रयतिष्ये** यत्नं करिष्ये । रामानुगमनेन यशो लब्धुं प्रयतिष्य इति तु भरतस्य हृदयम् ।

"**ममे**"ति—हे पापे ! **त्वम्**, **मम** भरतस्य, **मातुश्च** ज्येष्ठाया अम्बायाः कौसल्यायाः, **मातुश्च** कनिष्ठाया जनन्याः सुमित्रायाश्च, **मध्यस्था** मध्ये तिष्ठन्ती, **गङ्गायमुनयोः**, **मध्ये**, **प्रवेशिता** स्थापिता, **कुनदीव** कुत्सिता क्षुद्रा सरिदिव, **न शोभसे** शोभां नावहसि [अथवा 'मम न

सुमन्त्र—ये हैं श्रीलक्ष्मण की माता देवी सुमित्रा ।
भरत—माता जी ! (अकेले अकेले राम की सेवा का लाभ उठा मुझे साझी न बनाने से) लक्ष्मण से ठगा गया मैं आपका अभिवादन करता हूँ ।
सुमित्रा—बच्चे ! तुम खूब यशस्वी होओ ।
भरत—माता जी ! इसके लिए प्रयत्न करूँगा । आपका बहुत अनुगृहीत हुआ । अच्छा, आगे ?
सुमन्त्र—ये हैं तुम्हारी माता ।
भरत—[बड़े क्रोध से उठकर] हाय पापिन !

—मेरी माता ये रहीं (कौसल्या); और मेरी माता ये रहीं (सुमित्रा) । इन दोनों के बीच में खड़ी हुई तुम इसी भाँति बहुत बुरी लग रही हो, जैसे पुण्यसलिला गंगा और यमुना के बीच में प्रविष्ट हुआ गन्दा नाला ॥१६॥

---

१ अतिसंहितो.

कैकेयी—जाद ! किं मए किदं । [जात ! किं मया कृतम् ।]
भरतः—किं कृतमिति वदसि ।

वयमयशसा चीरेणार्यो नृपो गृहमृत्युना
प्रततरुदितैः कृत्स्नायोध्या मृगैः सह लक्ष्मणः ।
दयिततनयाः शोकेनाम्बाः स्नुषाध्वपरिश्रमै-
र्धिगिति वचसा चोग्रेणात्मा त्वया ननु योजिताः ॥१७॥

शोभसे' इत्यन्वयः । मह्यं न रोचसे इति भावः । ममेति सम्बन्धसामान्ये षष्ठी] । उपमालङ्कारः । उपमानोपमेययोः पुरुषभेदाद् भग्नप्रक्रमत्वम् ॥१६॥

जातेति—मया कोऽसावपराधः कृतो येन कुनया मामुपमिमीषे—इत्यर्थः । विवाहकाले कृतां महाराजस्य प्रतिज्ञां यथार्थयितुमेव मया स्वपुत्राय राज्य-याचनं कृतमिति न तदपराधो भवितुमर्हति । अन्यथा महाराजो मिथ्याप्रतिज्ञः स्याद् इति कैकेय्या हृदयम् । **किमिति**—आत्मापराधं जानत्यपि पृच्छसि किमितीति भावः ।

तत्कृतमेव विवृणोति—"**वयमि**"ति । **त्वया** कैकेय्या, **वयम्** अहं भरत इत्यर्थः ['अस्मदो द्वयोश्च' इति बहुवचनम्], **अयशसा** अपकीर्त्या, **योजिताः** मेलिताः ['राज्यगृध्नुर्भरतो राजप्रियां स्वजननीं द्वारीकृत्य मुख्यं राज्याधिकारिणं रामं वने प्रवासितवान्' इत्येवंरूपा ममापकीर्तिस्त्वयोत्पादितेति भावः । 'योजिताः' इति पद्यान्तपदं सर्वत्र यथायथं विभक्तिविपरिणामेन योजनीयम् ।] । **आर्यः** पूजनीयो रामः, **चीरेण** वल्कलरूपेण मुनिवाससा, योजितः [रामो वल्कलं परिधाप्य वने प्रवासित इति भावः ।] । **नृपः** राजा दशरथः, **गृहमृत्युना** गृहे मरणेन, योजितः [इक्ष्वाकुकुलोत्पन्नाः क्षत्रियाश्चतुर्थे वयसि मुनिवृत्तिमाश्रित्य क्वचित्पुण्येऽरण्ये पवित्रे वा तीर्थे शरीरं त्यजन्ति, परं महाराजस्तु शोकाकुलो गृह एव शरीरं तत्याज, तदेतस्य

कैकेयी—बेटा ! मैंने क्या किया ?
भरत—अब भी कहती है, मैंने क्या किया ?

—मुझे अपयश से कलङ्कित कर दिया; आर्य राम को वल्कल पहना दिये; महाराज को घर पर ही अनहोनी मौत मार दिया; सारी अयोध्या को रुला रुला उजाड़ डाला; लक्ष्मण को मृगों के साथ (वनों में) खदेड़ दिया; सुतवत्सला माताओं को शोक-समुद्र में डुबो दिया; पुत्रवधू सीता को जंगलों के रास्तों की यातनाओं में धकेल दिया; और अपने आपको 'कैकेयी को धिक्कार है' इस प्रचण्ड अपयश से कलङ्कित कर दिया ॥१७॥

कौसल्या—जाद ! सव्वसमुदाआरमज्झत्थो किं ण वन्दसि मादरं ।

जात ! सर्वसमुदाचारमध्यस्थः किं न वन्दसे मातरम् ।

भरतः—मातरमिति । अम्ब ! त्वमेव मे माता । अम्ब ! अभिवादये ।

कौसल्या—णहि णहि । इअं दे जणणी ।

नहि नहि । इयं ते जननी ।

भरतः—आसीत् पुरा । न त्विदानीम् । पश्यतु भवती,

महाराजापमृत्योस्त्वमेव कारणमसीति भावः]। **कृत्स्ना** सकला, **अयोध्या** अयोध्यावासिन इत्यर्थः, **प्रततरुदितैः** प्रततानि निरन्तराणि, रुदितानि अश्रुविमोचनानि, तैः, योजिताः । **लक्ष्मणः, मृगैः** वन्यपशुभिः, **सह,** ['मृगः पशौ कुरङ्गे च' इति विश्वः ।] योजितः। **दयिततनयाः** दयितः प्रियः, तनयः पुत्रः, यासां तथाभूताः पुत्रवत्सला इति भावः । **अम्बाः** मातरः कौसल्यासुमित्रे इति यावत् [आदरार्थं बहुवचनम्], **शोकेन** पुत्रविरह-जनितदुःखेन, योजिताः । **स्नुषा** पुत्रवधूः सीता, **अध्वपरिश्रमैः** [अध्वनः परिश्रमाः, तैः] मार्गचलनजनितखेदैः, योजिता । **आत्मा च, धिगिति** 'त्वां धिक्' इति रूपेण, **उग्रेण** कठोरेण हृदयदारिणा, **वचसा** शब्देन, योजितः । **ननु** निश्चयेन [एवमनेकदोषोत्पादनहेतुना त्वमद्य लोकैर्धिक् क्रियस इति भावः]। हरिणीवृत्तम् ॥१७॥

सर्वेत्यादि—सर्वेषां समुदाचाराणां मध्ये तिष्ठतीति तादृशः सर्व-सद्व्यवहाराभिज्ञ इति यावत् । **मातरम्** कैकेयीम् । सर्वसमुदाचाराभिज्ञोऽपि त्वं मातृवन्दनां कुतो न करोषीति भावः । **मातरमिति**—मातरं वन्दितुं चेदा-दिशसि, तर्हि त्वमेव मे मातासि, त्वामहम्, **अभिवादये** वन्दे, न पुनरिमाम्। नेयं ममाम्बेति भावः। **आसीदिति**—पूर्वमियं मे मातासीद्, इदानीं नास्यां मे मातृबुद्धिरिति भावः । मातरि मातृबुद्ध्यभावकारणं निर्दिशति—**पश्यत्विति** ।

कौसल्या—बेटा ! सब प्रकार के मर्यादोचित शिष्टाचार को जानते हुए भी तुम क्यों अपनी माता को प्रणाम नहीं करते ?

भरत—अपनी माता को ? माँ ! मेरी माँ तो तुम ही हो । माँ ! तुम्हें अभिवादन करता हूँ ।

कौसल्या—नहीं, नहीं। तुम्हारी माता यह हैं ।

भरत—हाँ, पहले थी । अब नहीं । देखिए आप,

त्यक्त्वा स्नेहं शीलसङ्क्रान्तदोषैः
पुत्रास्तावन्नन्वपुत्राः क्रियन्ते ।
लोकेऽपूर्वं स्थापयाम्येष धर्मं
भर्तृद्रोहादस्तु माताप्यमाता ॥१८॥

"त्यक्त्वे"ति—**शीलसंक्रान्तदोषैः** शीलस्य स्वभावस्य संक्रान्तं संक्रमणम् [भावे क्तः], तस्य दोषैः तज्जनितैरविनयादिभिर्दोषैर्हेतुभिः, **पुत्राः**, **स्नेहम्** मातृभक्तिम् इत्यर्थः, **त्यक्त्वा**, **अपुत्राः** अपुत्रोचितव्यवहारवन्त इति भावः, **क्रियन्ते** भवन्तीत्यर्थः । मातृदोषाः पुत्रे संक्रामन्तीति नेदमप्राकृतिकम् । मातृदोषैर्दुःशीलत्वादिभिः पुत्रोऽपि दुःशीलो जायते । तथाच दुःशीलाया मातुर्जातोऽहं यदि दुःशीलतया मातृभक्तिं परित्यज्य स्वमातरि अपुत्रवद् व्यवहरामि तर्हि नात्र मे दोष इति भावः । क्रियन्त इत्यत्र क्रियासौकर्यद्योतनाय कर्मकर्तरि प्रत्ययः । अत एव समानकर्तृकत्वात् क्त्वा न विरुध्यते ।

गणपतिशास्त्रिणस्तु 'शीलसंक्रान्तदोषैः सहवासिपरिजनगतदुःस्वभावसंक्रमदोषैः [हेतुभिः] स्नेहं त्यक्त्वा पुत्रा अपुत्राः क्रियन्ते अनया [कैकेय्या] अपुत्रवदाचर्यन्ते द्विष्टव्यवहारविषयतां नीयन्ते, अथवा द्विष्टव्यवहारेण पुत्रानर्हे कर्मणि प्रवर्त्यन्त इत्यर्थः—इति व्याचख्युः । **एषः** भवत्याः पुरः स्थितोऽहं भरतः, **लोके**, **अपूर्वम्** पूर्वं केनापि नानुष्ठितं नूतनमिति यावत्, **धर्मम्** आचारमित्यर्थः, **स्थापयामि** प्रवर्तयामि, यद् **भर्तृद्रोहाद्** भर्त्रे द्रोहो भर्तृद्रोहः पतिविद्वेषः, तस्माद् हेतोः, **मातापि** जनन्यपि, **अमाता** अजननी, **अस्तु** भवतु । पतिविद्वेषमाचरन्ती जनन्यपि अजननीवद् व्यवहरणीया, तस्याः प्रणामादिकं न कर्तव्यमिति भावः । पूर्वार्धे विशेषे प्रस्तुते सामान्यस्य वचनादप्रस्तुतप्रशंसा । शालिनी छन्दः ॥१८॥

—दुःशील परिजनों के सहवास के दोषों से स्नेह को छोड़ (पुत्र-विरुद्ध आचरण करने से) इसने निश्चय ही अपने पुत्रों को भी पराया बना दिया । यह मैं आज से संसार में इस अपूर्व (लोकोत्तर) धर्म का स्थापन करता हूँ कि जो माता अपने भर्ता से द्रोह करे, वह माता होने पर भी मातृ-पद के योग्य नहीं ॥१८॥

कैकेयी—जाद ! महाराअस्स सच्चवअणं रक्खन्तीए मए तह उत्तं ।

जात ! महाराजस्य सत्यवचनं रक्षन्त्या मया तथोक्तम् ।

भरतः—किमिति किमिति ।

कैकेयी—पुत्तओ मे राआ होदु त्ति । पुत्रको मे राजा भवत्विति ।

भरतः—अथ स इदानीमार्योऽपि भवत्याः कः ।

पितुर्मे नौरसः पुत्रो न क्रमेणाभिषिच्यते ।
दयिता भ्रातरो न स्युः प्रकृतीनां न रोचते ॥१९॥

जातेति—रक्षन्त्येत्यत्र रक्षतेर्हेतौ शतृप्रत्ययः, महाराजवचनस्य सत्यत्वरक्षणहेतुनेत्यर्थः । महाराजेन विवाहकाले शुल्करूपेण त्वद्यौवराज्यं प्रतिज्ञातमासीत् । यद्यहं त्वदभिषेकं नावरिष्यम्, तर्हि रामस्य राज्याभिषेकेण महाराजप्रतिज्ञा मिथ्याऽभविष्यदिति भावः । **किमितीति**—उक्तमिति शेषः । **पुत्रक** इति—अत्राप्युक्तमिति शेषः । **अथेति**—अथेति प्रश्ने । **आर्यः** रामः । **कः** किं पुत्रो न भवतीत्यर्थः । यदि त्वया पुत्रार्थ एव राज्यमभिलषितम्, तर्हि रामोऽपि तव पुत्र एवास्ति, तस्मिन् राज्याधिरूढे तवाभिलाषः सिध्येदेवेति भावः ।

पुनरपि मातरं पृच्छति—"**पितुरि**"ति । 'स आर्यः' इति पदद्वयं पूर्ववाक्यादत्राप्यनुषञ्जनीयम् । **सः** उत्कृष्टधैर्यादिगुणैः प्रसिद्धः, **आर्यः** रामः, **मे** मम, **पितुः** महाराजदशरथस्य, **औरसः** स्वधर्मपत्न्यां स्ववीर्येणोत्पन्नः, **पुत्रः** सुतः, **न** नास्ति किम् । आर्यः पितुरौरस एव पुत्रोऽस्तीति भावः ।

कैकेयी—बेटा ! महाराज की सत्य प्रतिज्ञा की रक्षा के लिए मैंने वैसा कह दिया था ।

भरत—सो क्या ? सो क्या ?

कैकेयी—यह कि मेरा पुत्र राजा हो ।

भरत—अच्छा तो तनिक यह तो बताओ कि वह आर्य आपका अब क्या लगता है ?

—क्या वह मेरे पिता का औरस (अंगजात) पुत्र नहीं ? क्या वह (हमारी कुलमर्यादानुसार) ज्येष्ठ होने के कारण राज्याभिषेक का अधिकारी नहीं ? क्या हम सब भाई परस्पर सच्चे स्नेह वाले नहीं ? क्या वह प्रजा को अच्छा नहीं भाता ? ॥१९॥

कैकेयी—जाद ! सुक्कलुद्धा णणु पुच्छिदव्वा ।

जात ! शुल्कलुब्धा ननु प्रष्टव्या ।

भरतः—

वल्कलैर्हृतराजश्रीः पदातिः सह भार्यया ।
वनवासं त्वयाज्ञप्तः शुल्केऽप्येतदुदाहृतम् ॥२०॥

[सर्वत्र नशब्दे प्रश्नकाकुः ।] **क्रमेण** ज्येष्ठानुक्रमेण, **न अभिषिच्यते** अभिषेको न क्रियते किम् ? ज्येष्ठानुक्रमेणैवाभिषेको भवतीति भावः । **भ्रातरः** आर्यरामाद्या मत्सहिता भ्रातरः, **दयिताः** परस्परप्रीतिमन्तः, **न स्युः** न भवेयुः किम्, भ्रातरोऽपि परस्परं प्रीतिमन्त एवेति भावः । स आर्यः, **प्रकृतीनाम्** प्रजानाम् [सम्बन्धसामान्ये षष्ठी], **न रोचते** प्रीतिं नोत्पादयति किम् ? आर्यः प्रकृतिभ्यो रोचत एवेत्यर्थः । पितुरौरसो ज्येष्ठश्च सुतो राज्याधिकारी भवतीतीक्ष्वाकुकुलाचारः । आर्ये रामे औरसत्वं ज्येष्ठत्वं च विद्यत एवेति कथं त्वया स स्वाधिकाराद् भ्रंशितः । किं चानेकेषूत्तराधिकारिषु राज्यलाभायान्योन्यं कलहायमानेषु युज्येतापि पितुः प्रियस्यानधिकारिणोऽपि राज्याधिकारः, परमिहैतदपि नास्ति, वयं सर्वेऽपि भ्रातरोऽन्योन्यानुरक्ता रामं राज्याधिरूढमिच्छामः । कदाचिद् औरसोऽपि ज्येष्ठोऽपि भ्रात्रनुमतोऽपि प्रजाभिरनभिलषितत्वाद् राजसिंहासनं नाप्नुयादपि, परमार्ये रामे तु सर्वाः प्रजा अनुरक्ता इति सर्वात्मना स राज्याधिकारी भवति । तथाच त्वया तं राज्याद् विभ्रंश्य सर्वथानुचितमाचरितमिति भावः । रामस्य राज्याधिकारित्वं प्रस्तुतमवर्णयित्वाप्रस्तुतस्यौरसत्वादेः कारणस्य वर्णनादप्रस्तुतप्रशंसा ॥१९॥

जातेति—**नन्विति** प्रश्ने । **शुल्कलुब्धा** अपि किं प्रष्टव्या भवतीत्यर्थः । शुल्कलोलुपया मयैतत्कृतम्, मां प्रति 'पितुर्मे नौरस' इत्यादिप्रश्नो न कर्तव्य इति भावः ।

"**वल्कलै**"रिति—**वल्कलैः** वृक्षत्वग्भिः, वल्कलपरिधानेनेत्यर्थः, **हृतराजश्रीः** हृता अपनीता लुप्ता राजश्रीः राजलक्ष्मीः, यस्य तादृशः, **पदातिः** पादाभ्यामतति गच्छतीति पदातिः पादचारी ['अज्यतिभ्यां

कैकेयी—बेटा ! क्या यह भी विवाह-शुल्क के लिए ललचाई हुई से पूछा जाना चाहिए ?

भरत—जो तुमने आर्य को राजपाट से च्युत कर, चीर पहना, सीता सहित पैदल वन को खदेड़ दिया, क्या यह भी विवाह-शुल्क में कह दिया गया था ? ॥२०॥

कैकेयी—जाद ! देसकाले णिवेदेमि ।
जात ! देशकाले निवेदयामि ।

भरतः—

अयशसि यदि लोभः कीर्तयित्वा किमस्मान्
किमु नृपफलतर्षः किं नरेन्द्रो न दद्यात् ।
अथ तु नृपतिमातेत्येष शब्दस्तवेष्टो
वदतु भवति ! सत्यं किं तवार्यो न पुत्रः ॥२१॥

पादे च' इत्यततेरिण् प्रत्ययः, पादस्य पदादेशः], **भार्यया** पत्न्या, **सह**, सीतया सहित इति भावः, आर्यो रामः, **त्वया** कैकेय्या, **वनवासम्**, **आज्ञप्तः** वने वस्तुमादिष्टः । **शुल्के** शुल्कप्रदानप्रतिज्ञायामित्यर्थः, **एतदपि** सभार्यस्य रामस्य वनप्रवासनमपि, **उदाहृतम्** उल्लिखितं किम् ? त्वत्पुत्रस्य राज्य-प्रदानं शुल्करूपेण महाराजेन प्रतिज्ञातमासीदिति तद्वरणं शक्यं कथञ्चित् सोढुम् । परं सभार्यस्यार्यस्य वनवासोऽपि किं महाराजेन प्रतिश्रुतः, येन निरप-राधं वने प्रवासितवत्यसि इति भावः ॥२०॥

जातेति—**देशकाले** देशश्च कालश्चानयोः समाहारो देशकालम्, तस्मिन् । समुचिते देशे काले चेत्यर्थः ।

"**अयशसी**"ति—**यदि**, **अयशसि** अपकीर्तौ [विषयसप्तमी], **लोभः** लोलुपत्वम्, आसीदिति शेषः, यद्यपकीर्तिरेव ते वाञ्छिताभवदित्यर्थः, तर्हि **अस्मान्** मां भरतमित्यर्थः, **कीर्तयित्वा** उद्घोष्य, मदर्थं राज्य-याचनया मत्सम्बन्धं प्रतिपाद्येति भावः, **किम्** त्वया किं लब्धमित्यर्थः [यदि निरपराधरामप्रवासनेनायश एव तवाभीष्टमभवत्, तर्हि तत्र मन्नाम-ग्रहणेन मां किमर्थमयशोभागिनं कृतवत्यसि इति भावः] । **नृपफलतर्षः** नृपस्य नृपत्वस्य राज्यस्येत्यर्थः, फले अबाधितैश्वर्ये, तर्षः तृष्णा, **किमु ?**

कैकेयी—बेटा ! उचित स्थान पर समुचित अवसर मिलने पर कभी बताऊँगी ।

भरत—यदि तुम्हें अपयश की ही चाह थी तो बीच में मेरा नाम लेने की क्या आवश्यकता थी ? यदि राज्य-ऐश्वर्य की ही उत्कट लालसा थी तो महाराज क्या-कुछ तुम्हें न दे निहाल कर देते ? और यदि राजमाता कहलाने की ही तुम्हें बड़ी चाहना थी तो सचसच, तुम्हीं बताओ, क्या राम तुम्हारा पुत्र नहीं है ? ॥२१॥

कष्टं कृतं भवत्या,

त्वया राज्यैषिण्या नृपतिरसुभिर्नैव गणितः
सुतं ज्येष्ठं च त्वं व्रज वनमिति प्रेषितवती ।
न शीर्णं यद् दृष्ट्वा जनकतनयां वल्कलवती-
महो धात्रा सृष्टं भवति ! हृदयं वज्रकठिनम् ॥२२॥

आसीदिति शेषः । **नरेन्द्रः** राजा, **किम्** किं वस्तु, **न दद्यात्** दातुं न शक्नुयात्, सर्वमपि दातुं शक्नुयादित्यर्थः [मत्पुत्रे राजसिंहासनमलङ्कुर्वति राजमातृत्वादबाधितं म ऐश्वर्यं भविष्यति, न किञ्चिदपि मया दुर्लभं स्यात् इति मनसि कृत्वैव चेत्त्वया मदर्थं राज्यं याचितम्, आर्यश्च वने प्रवासितः, तदपीदं त्वयाऽकार्यमेवानुष्ठितम् । त्वद्वशीभूतो राजा त्वां किं न दद्यात्, यस्त्वन्मनोरथं पूरयितुमात्मनः प्राणानपि नापेक्षते स्म, तत्प्रसादात् तव न किमपि दुर्लभमभवत्, इति राज्यप्राप्तीच्छयापीदमनार्याचरणं तव न संगतमिति हृदयम्]। **अथ तु** यदि च, **नृपतिमाता** राजमाता, **इत्येषः, शब्दः, तव** भवत्याः कैकेय्याः, **इष्टः** वाञ्छितः, आसीत्, तर्हि भवती, **सत्यम्, वदतु** कथयतु, यद्, **आर्यः** रामः, **तव** भवत्याः, **पुत्रः, न भवति किम्** नास्ति किम् । यदि च वक्षि राजमातेति पदलिप्सैव मे भरतार्थं राज्ययाचने हेतुस्तदपि न युक्तियुक्तम्, आर्योऽपि दशरथौरसत्वाद् भवत्याः पुत्र एवेति तस्मिन्नपि राजपदारूढे तव राजमातृपदमक्षतमेव स्यात्, तथा च सर्वथा विचार्यमाणमिदं तवानार्याचरणं नितरां निरर्थकमेवेति भावः । मालिनीवृत्तम् ॥२१॥

कष्टमिति—कष्टम् अतिकठोरं कर्मेत्यर्थः ।

"त्वये"ति—राज्यैषिण्या राज्यमिच्छति राज्यैषिणी, तया राज्यलोलुपया, **त्वया, नृपतिः** राजा, **असुभिः** प्राणैर्निमित्तैरपि, **नैव गणितः** नापेक्षितः [राज्यलोभान्धया त्वया राज्ञो मृत्युरप्युपेक्षित इति भावः], असुभिरित्यस्य वियुज्यमान इति शेष इति गणपतिशास्त्रिणः । **त्वम्, ज्येष्ठम्,**

तुमने घोर पाप किया,

—राज्य की उत्कट लालसा से तुमने महाराज के प्राणों की कुछ सोच न की; अपने ज्येष्ठ पुत्र को तुमने 'जाओ वन को' इस तरह खदेड़ दिया; (आर्य के साथ वन जाते) जनकदुलारी सीता को वल्कल पहने देख जो तुम्हारा हृदय चूरचूर न हो पड़ा, आह ! जान पड़ता है, विधाता ने तुम्हारे हृदय को वज्र से भी कठोर बना रक्खा है ॥२२॥

सुमन्त्रः—कुमार ! एतौ वसिष्ठवामदेवौ सह प्रकृतिभिरभिषेकं पुरस्कृत्य भवन्तं प्रत्युद्गतौ विज्ञापयतः ।

गोपहीना यथा गावो विलयं यान्त्यपालिताः ।
एवं नृपतिहीना हि विलयं यान्ति वै प्रजाः ॥२३॥

भरतः—अनुगच्छन्तु मां प्रकृतयः ।

सुमन्त्रः—अभिषेकं विसृज्य क्व भवान् यास्यति ।

सुतम्, रामम्, 'वनं व्रज' इति एवमादिश्य **प्रेषितवती** गृहात् प्रवासितवती । **भवति !** हे श्रीमति ! **जनकतनयाम्** सीताम्, **वल्कलवतीम्** धृतवल्कलाम्, **दृष्ट्वा, यद्, न शीर्णम्** न विदीर्णम्, तत् ते, **हृदयम्, धात्रा** ब्रह्मणा, **अहो** विस्मयोत्पादकरूपेणेत्यर्थः, **वज्रकठिनम्** वज्रवत् कठोरम्, **सृष्टम्** उत्पादितम् । हृदयस्य वज्रवत् काठिन्यं हेतुना समर्थितमिति काव्यलिङ्गम् । शिखरिणी वृत्तम् ॥२२॥

कुमारेति—**प्रकृतिभिः** अमात्यादिभिः, **अभिषेकं पुरस्कृत्य** त्वदभिषेकोद्देशेनेत्यर्थः । **प्रत्युद्गतौ** प्रत्युद्गमनेन त्वदन्तिक उपस्थितौ । तदुक्तं रामायणे—"ततः प्रभातसमये दिवसेऽथ चतुर्दशे । समेत्य राज्यकर्तारौ भरतं वाक्यमब्रुवन् ॥ त्वमद्य भव नो राजा राजपुत्र महायशः । आभिषेचनिकं सर्वमिदमादाय राघव ॥ प्रतीक्षते त्वां स्वजनः श्रेणयश्च नृपात्मज ॥" इति ।

विज्ञापनामाह—"**गोपहीना**" इति । **यथा** येन प्रकारेण, **गोपहीनाः** गोपैः गोपालकैः, हीनाः रहिताः, अतएव, **अपालिताः** अरक्षिताः, **गावः, विलयम्** विनाशम्, **यान्ति** प्राप्नुवन्ति । **एवम्** तथैव, **नृपतिहीनाः** नृपतिना रहिताः, **प्रजाः** नराः, **विलयं यान्ति** । तदुक्तं रामायणे—'अगोपाला यथा गावस्तथा राष्ट्रमराजकम् ।' इति । उपमालङ्कारः ॥२३॥

सुमन्त्र—राजकुमार ! ये भगवान् वसिष्ठ और वामदेव, प्रजावर्ग तथा अमात्यों समेत, राज्याभिषेक के उपलक्ष्य में (सम्बन्ध में, उद्देश्य से) तुम्हारे स्वागत के लिए उपस्थित हो सूचित करते हैं,

—जिस प्रकार गोपालक के विना गायें पालन न होने से विनाश हो जाती हैं, ठीक इसी प्रकार राजा के विना प्रजा का नाश हो रहा है ॥२३॥

भरत—प्रजा के लोग मेरे साथ साथ चलें ।

सुमन्त्र—राज्याभिषेक को छोड़कर आप कहाँ जायँगे ?

भरतः—अभिषेकमिति । इहात्रभवत्यै प्रदीयताम् ।
सुमन्त्रः—क्व भवान् यास्यति ।
भरतः—

तत्र यास्यामि यत्रासौ वर्तते लक्ष्मणप्रियः ।
नायोध्या तं विनायोध्या सायोध्या यत्र राघवः ॥२४॥

[निष्क्रान्ताः सर्वे]

तृतीयोऽङ्कः ।

अभिषेकमितीति—**अत्रभवत्यै** कैकेय्यै । सोल्लुण्ठोक्तिरियम् । **प्रदीयताम्**इत्यस्य अभिषेक इति शेषः ।

"**तत्रे**"ति—**यत्र** यस्मिन् स्थाने, **लक्ष्मणप्रियः** लक्ष्मणः प्रियः प्रीतिपात्रम्, यस्य तादृशः, **असौ** रामः, **वर्तते**, **तत्र**, **यास्यामि** गमिष्यामि । **अयोध्या**, **तम्** राघवम्, **विना** राघवाभाव इत्यर्थः, **अयोध्या न** भवतीति शेषः । **सा** सैव, **अयोध्या** अस्ति, **यत्र**, **राघवः** रामः, विराजत इति शेषः । रामं विनाऽयोध्यारण्यसदृशीति भावः । विनोक्तिरलङ्कारः ॥२४॥

इति श्रीद्रोणाश्रमवास्तव्यश्रीमदच्युतानन्दशर्मतनुजन्म**श्रीपरमेश्वरानन्द**शर्मकृतायां प्रतिमानाटकव्याख्यायां तृतीयोऽङ्कः समाप्तः ।

भरत—अभिषेक ? अभिषेक इन माननीया को प्रदान करें ।
सुमन्त्र—आप कहाँ जायँगे ?
भरत—मैं वहीं जाऊँगा, जहाँ लक्ष्मण को प्यार करने वाले राम हैं। उसके विना अयोध्या अयोध्या नहीं रही । जहाँ राम, तहाँ अयोध्या ॥२४॥

[सब का प्रस्थान]

अथ चतुर्थोऽङ्कः ।

[ततः प्रविशतश्चेट्यौ]

विजया—हला णन्दिणिए ! भणेहि भणेहि । अज्ज कोसल्ला-पुरोगेहिं सव्वेहि अन्तेउरेहि पडिमागेहं दट्ठुं गदेहि तहिं किल भट्टिदारओ भरदो दिट्ठो । अहं च मन्द-भाआ दुवारे ट्ठिदा ।

हला नन्दिनिके ! भण भण । अद्य कौसल्यापुरोगैः सर्वैरन्तःपुरैः प्रतिमागेहं द्रष्टुं गतैस्तत्र किल भर्तृदारको भरतो दृष्टः । अहं च मन्दभागा द्वारे स्थिता ।

नन्दिनिका—हला ! दिट्ठो अह्मेहि कोदूहलेण भट्टिदारओ भरदो ।

हला ! दृष्टोऽस्माभिः कौतूहलेन भर्तृदारको भरतः ।

पूर्वाङ्के भरतस्य वने रामान्तिकगमननिश्चयः प्रोक्तः । अथ भरतस्य वनगमनं तत्र तस्य रामसमागमः, तत्पादुकानयनं चेत्याद्यर्थजातं वर्णयितुं चतुर्थमङ्क-मारभते—**अथे**ति । तत्रादौ वृत्तं भरतस्य वनप्रस्थानं चेटीसंवादात्मकप्रवेशकेन निवेदयितुं चेट्यौ प्रवेशयति—**तत** इति । **हले**ति—हलेति सख्या आह्वाने । **भण भणे**त्यस्य 'भट्टिनी कुमारेण किं भणिता' इत्यनेन वक्ष्यमाणेन प्रश्नेनान्वयः । **नन्दिनिके**ति द्वितीयस्याश्चेट्या नाम । **अद्ये**ति—**कौसल्ये**ति—कौसल्या पुरोगा अग्रगामिनी येषां तादृशैः कौसल्यादिभिरित्यर्थः । **अन्तःपुरैः** अन्तः-पुरवासिनीभी राज्ञीभिरित्यर्थः । **किले**ति वार्तायाम् । मयैषा वार्ता श्रुता यत् कौसल्यादिभिर्भरतो दृष्ट इति भावः । **अहमिति—द्वारे स्थिता** द्वाररक्षण-रूपं स्वकार्यमनुपालयन्तीत्यर्थः, द्रष्टुं नाशकमिति शेषः । **हला दृष्ट** इति—**कौतूहलेन** औत्सुक्येन ।

चौथा अंक

[दो चेरियों का प्रवेश]

विजया—सखी नन्दिनिका ! कहो, कहो । आज कौसल्या आदि सारा रनवास प्रतिमाघर के दर्शन करने गया था । वहाँ उन्होंने राजकुमार भरत देखा है क्या ? मैं मन्दभागिनी तो दरवाज़े पर खड़ी रही ।

नन्दिनिका—सखी ! हमने बड़े कौतूहल से राजकुमार भरत को देखा है ।

विजया—भट्टिणी कुमारेण किं भणिदा।

भट्टिनी कुमारेण किं भणिता।

नन्दिनिका—किं भणिदं। ओलोइदुं वि णेच्छदि कुमारो।

किं भणितम्। अवलोकितुमपि नेच्छति कुमारः।

विजया—अहो अच्चाहिदम्। रज्जलुद्धाए भट्टिदारअस्स रामस्स रज्जविब्भट्ठं करन्तीए अत्तणो वेहव्वं आदिट्ठं। लोओवि विणासं गमिओ। णिग्घिणा हु भट्टिणी। पापअं किदं।

अहो अत्याहितम्। राज्यलुब्धया भर्तृदारकस्य रामस्य राज्यविभ्रष्टं कुर्वत्यात्मनो वैधव्यमादिष्टम्। लोकोऽपि विनाशं गमितः। निर्घृणा खलु भट्टिनी। पापकं कृतम्।

नन्दिनिका—हला! सुणाहि। पइदीहि आणीदं अभिसेअं विसज्जिअ रामतवोवणं गदो कुमारो।

हला! शृणु। प्रकृतिभिरानीतमभिषेकं विसृज्य रामतपोवनं गतः कुमारः।

भट्टिनीति—**भट्टिनी** राज्ञी कैकेयीत्यर्थः। **किं भणितमिति**—दूरे भणनम्, कुमारस्तु तामवलोकितुमपि नेच्छतीत्यर्थः। **अहो** इति—**अत्याहितम्** महती विपदुपस्थितेत्यर्थः। **राज्यविभ्रष्टम्** राज्यभ्रंशम् [विभ्रष्टमित्यत्र भ्रश्यतेर्भावे क्तः]। **आदिष्टम्** उत्पादितमिति भावः। **लोकः** यश इत्यर्थः। **गमितः** प्रापितः। अथवा राज्यलोभेन पतिमृत्युहेतुतया स्वर्गादिलोकोऽपि नाशित इति लोकोऽपीत्यादेरर्थः। अथवा लोकः लोकपक्षः। राज्यलोभेन निरपराधरामप्रवासहेतुतया लोकपक्षोऽपि नाशितः, लोकः स्वप्रातिकूल्यं नीत इति भावः। **निर्घृणा** निष्करुणा। **हला शृण्विति**—**प्रकृतिभिः** अमात्यादिभिः, **आनीतम्** उपहृतम्, **अभिषेकम्** राज्याभिषेकम्, **विसृज्य** परित्यज्य, **रामतपोवनम्** रामस्य तपसो वनम्, यत्र रामस्तपस्तपति तत्रेत्यर्थः।

विजया—राजकुमार ने महारानी को क्या कहा?

नन्दिनिका—कहा क्या? राजकुमार तो उन्हें देखना तक नहीं चाहते!

विजया—ओह! कैसा अन्धेर (अन्याय) है? राज्य की लोभिनी ने राजकुमार राम को राज्य-च्युत करते हुए अपने आपको विधवा बना लिया; प्रजा का भी विध्वंस कर डाला। सचमुच, रानी बड़ी क्रूर है। घोर पाप किया।

नन्दिनिका—सखी! सुनो। अमात्य आदि द्वारा किये कराये राज्याभिषेक के सारे साज को ठुकराकर राजकुमार राम के पास तपोवन को चले गये।

विजया—[सविषादम्] हम् । एवं गदो कुमारो । णन्दिणिए ! एहि, अह्ले भट्टिणिं पेक्खामो ।

हम् । एवं गतः कुमारः । नन्दिनिके ! एह्यावां भट्टिनीं पश्यावः ।

[निष्क्रान्ते]

प्रवेशकः ।

[ततः प्रविशति भरतो रथेन सुमन्त्रः सूतश्च]

भरतः—

स्वर्गं गते नरपतौ सुकृतानुयात्रे
पौराश्रुपातसलिलैरनुगम्यमानः ।
द्रष्टुं प्रयाम्यकृपणेषु तपोवनेषु
रामाभिधानमपरं जगतः शशाङ्कम् ॥१॥

हमिति—हमित्यसम्मतौ निपातः । असम्मतमनभिमतमिदं जातमित्यर्थः । **एवमिति**—सत्यं कुमारो वनं गत इत्यर्थः । अथवा एवं गतः एवमवस्थामापन्नः, **कुमारः** भरतः, अस्तीति शेष इति गणपतिशास्त्रिणः । **प्रवेशक** इति—प्रवेशकलक्षणमुक्तं प्राक् ।

"**स्वर्गमि**"ति—**सुकृतानुयात्रे** अनु यात्रा यस्य तद् इत्यनुयात्रम्, सुकृतं पुण्यम्, अनुयात्रम् अनुगन्तृ, यस्य तादृशे, धर्ममात्रसहाय इत्यर्थः, **नरपतौ** राज्ञि दशरथे, **स्वर्गम्**, **गते** याते, सति, **पौराश्रुपातसलिलैः** पौराणां पुरवासिनाम्, अश्रुपातसलिलैः अश्रुजलैरित्यर्थः [षष्ठीसमासः], **अनुगम्यमानः** अनुस्रियमाणः [कर्मणि शानच्], अहम्, **अकृपणेषु**

विजया—[शोक से] **आह ! इस प्रकार राजकुमार भी गये । नन्दिनिका ! आ, हम दोनों रानी को चल देखें ।**

[दोनों का प्रस्थान]

प्रवेशक

[रथ में बैठे हुए भरत और सारथि सुमन्त्र का प्रवेश]

भरत—महाराज दशरथ अपनी पुण्यगति से स्वर्ग को सिधार गये । मैं, नगर के नर-नारियों के छलछलाते अश्रु-जल के साथ, उदार तपोवनों में रम रहे राम नाम के दूसरे चाँद को देखने जा रहा हूँ ॥१॥

सुमन्त्रः—एष एष आयुष्मान् भरतः,

दैत्येन्द्रमानमथनस्य नृपस्य पुत्रो
यज्ञोपयुक्तविभवस्य नृपस्य पौत्रः ।
भ्राता पितुः प्रियकरस्य जगत्प्रियस्य
रामस्य रामसदृशेन पथा प्रयाति ॥२॥

कार्पण्यरहितेषु फलमूलादिसमृद्धिमत्सु, **तपोवनेषु** तपश्चर्योपयुक्तेषु अरण्येषु, विद्यमानम्, **रामाभिधानम्** रामनामानम्, **जगतः**, **अपरम्** द्वितीयं प्रसिद्धादन्यम्, **शशाङ्कम्** चन्द्रमसम्, **द्रष्टुम्** साक्षात्कर्तुम्, **प्रयामि** गच्छामि । अपरत्वोक्त्या ताद्रूप्यरूपकम् । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥१॥

एष इति—एष इत्यादिपदचतुष्टयं वक्ष्यमाणश्लोकान्वयि ।

"**दैत्येन्द्रे**"ति—**दैत्येन्द्रमानमथनस्य** दैत्येन्द्राणाम् असुरश्रेष्ठानाम्, मानस्य अभिमानस्य, मथनः भञ्जनः [मथनशब्दे मथ्नातेर्ल्युः] तस्य, **नृपस्य** राज्ञो दशरथस्य [पुरा किलासुरैः सह देवानां युद्ध उपस्थिते इन्द्रेण स्वसाहाय्यार्थमाहूतो दशरथोऽसुरान् पराजिग्य इत्यैतिहासिकं वृत्तमिहानुसन्धेयम्], **पुत्रः**, **यज्ञोपयुक्तविभवस्य** यज्ञे यज्ञानुष्ठाने, उपयुक्तः व्ययितः, विभवः सम्पत्तिः, येन तादृशस्य नित्यं यज्ञानुष्ठानशीलस्य, **नृपस्य** राज्ञोऽजस्य, **पौत्रः**, **पितुः** स्वपितुर्महाराजदशरथस्य, **प्रियकरस्य** आज्ञापालनेन प्रीतिमुत्पादयितुः [करोतीति करः, प्रियस्य कर इति विग्रहः । प्रियं करोतीति विग्रहे तु 'क्षेमप्रिय—' इत्यादिनाण्खचौ स्याताम्], **जगत्प्रियस्य** जगतां लोकानाम्, प्रियस्य प्रेमपात्रस्य, **रामस्य**, **भ्राता**, **रामसदृशेन** रामानुसृतमार्गसदृशेनेत्यर्थः [रामस्यानुगुणेनेति गणपतिशास्त्रिणः], **पथा** न्याय्येन मार्गेण, **प्रयाति** गच्छति । यथा रामः पितृवचनपालनपरो राज्यं परित्यक्तवान्, तथैवायमपि भरतो ज्येष्ठे भ्रातरि जीवति कनिष्ठस्य राज्यमन्याय्यमिति मत्वा राज्यं परिहृतवानिति भावः । विशेषणानि भरतस्य राममार्गानुसरण औचित्यं व्यञ्जयन्तीति परिकरालङ्कृतिः । छन्दः पूर्ववत् ॥२॥

सुमन्त्र—यह यह चिरजीवी भरत,

—दैत्यराज के अभिमान को चूरचूर करने वाले महाराज दशरथ का पुत्र; सारी राज्य-सम्पदा को यज्ञों में लगा देने वाले महाराज अज का पौत्र; पिता का अभिलषित करने वाले, जगत् के प्यारे राम का भाई राम के सदृश आदर्श पथ से जा रहा है ॥२॥

भरतः—भोस्तात !

सुमन्त्रः—कुमार ! अयमस्मि ।

भरतः—क्व तत्रभवान् ममार्यो रामः । क्वासौ महाराजस्य प्रतिनिधिः । क्व सन्निदर्शनं सारवताम् । क्वासौ प्रत्यादेशो राज्यलुब्धायाः कैकेय्याः । क्व तत् पात्रं यशसः । क्वासौ नरपतेः पुत्रः । क्वासौ सत्यमनुव्रतः ।

मम मातुः प्रियं कर्तुं येन लक्ष्मीर्विसर्जिता ।
तमहं द्रष्टुमिच्छामि दैवतं परमं मम ॥३॥

क्वेति—**तत्रभवान्** पूज्य इत्यर्थः । **प्रतिनिधिः** सदृशः, औदार्यादिभिर्गुणैर्महाराजस्य सदृश इत्यर्थः ['प्रख्यप्रतिनिधी अपि' इति सादृश्यवाचकप्रस्तावे दण्डी । अथवा महाराजस्य प्रतिनिधिः महाराजाभावे तज्ज्येष्ठतया तत्कार्यसम्पादक इत्यर्थः], **सारवताम्** सारं प्रशस्तगुणसम्पद् [वरेऽन्यवत् सारमुदाहरन्ति—रामाश्रमी] तद्वताम्, अथवा सारो धैर्यबलम्, तद्वतामित्यर्थः । **सन्निदर्शनम्** श्रेष्ठमुदाहरणम्, सारवतामादर्शभूत इत्यर्थः । **प्रत्यादेशः** निराकृतिः, तिरस्कृतिरिति भावः ['प्रत्यादेशो निराकृति'रित्यमरः], राज्ये निरतिशयनिःस्पृहताप्रकटनेन राज्यलुब्धायाः कैकेय्यास्तिरस्कार इव रामेण कृत इति भावः । **नरपतेः पुत्रः** पित्राज्ञापालनरूपपुत्रधर्मानुव्रततया राम एव वस्तुतो महाराजस्य पुत्र इति भरतहृदयम् । **अनुव्रतः** दृढमनुगतः । अनुकूलं व्रतं यस्य स इति विग्रहः ।

"**ममे**"ति—**येन** रामेण, **मम** भरतस्य, **मातुः** जनन्याः कैकेय्याः, **प्रियम्** इष्टं मद्राज्यप्राप्तिलक्षणम्, **कर्तुम्** सम्पादयितुम्, **लक्ष्मीः** राज्यलक्ष्मीः, **विसर्जिता** त्यक्ता, **मम**, **परमम्** उत्कृष्टम्, **दैवतम्** आरा-

---

भरत—तात !

सुमन्त्र—राजकुमार ! मैं यह हूँ ।

भरत—कहाँ है मेरा पूज्य महानुभाव आर्य राम ? कहाँ है वह महाराज का प्यारा प्रतिनिधि ? कहाँ है वह वीरों का श्रेष्ठ उदाहरण ? कहाँ है वह राज्य-लोलुप कैकेयी का तिरस्कर्ता (अप्रत्यक्ष रूप से पराभव करने वाला) ? कहाँ है वह यश का भाजन ? कहाँ है वह महाराज का आदर्श पुत्र ? कहाँ है वह सत्यसंकल्पपरायण ?

—मेरी माता का मनवाञ्छित करने के लिए जिसने राज्य-ऐश्वर्य को ठुकरा दिया; अपने उसी परम आराध्य देव के दर्शनों की मुझे इच्छा है ॥३॥

सुमन्त्रः—कुमार ! एतस्मिन्नाश्रमपदे ।

अत्र रामश्च सीता च लक्ष्मणश्च महायशाः ।
सत्यं शीलं च भक्तिश्च येषु विग्रहवत् स्थि(ताः॰तम्) ॥४॥

भरतः—तेन हि स्थाप्यतां रथः ।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । [तथा करोति]

भरतः—[रथादवतीर्य] सूत ! एकान्ते विश्रामयाश्वान् ।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । [निष्क्रान्तः]

ध्यम्, **तम्** रामम्, **द्रष्टुम्** साक्षात्कर्तुम्, **अहम्**, **इच्छामि** अभिलष्यामि, क्व स वर्तत इति शेषः । भरतनिष्ठो रामविषयो रतिभावः प्राधान्येन व्यज्यते ॥३॥

कुमारेति—वर्तत इति शेषः ।

"अत्रे"ति—**अत्र** पुरोदृश्यमान आश्रमे, **रामश्च, सीता च, महायशाः** महद् यशः कीर्तिर्यस्य तादृशः ज्येष्ठानुगत्या कीर्तिमान्, **लक्ष्मणश्च,** वसन्तीति शेषः [अथवा 'महायशा' इति विशेषणं रामादित्रितयसाधारणं मत्वा 'महायशा रामश्च' इत्यादिविधया आदौ योज्यम्], **येषु** रामादिषु, **सत्यम्** सत्यसन्धता, **शीलं च** सद्वृत्तं च ['शीलं स्वभावे सद्वृत्ते' इत्यमरः], **भक्तिश्च** भ्रात्रनुरागश्च, **विग्रहवत्** विग्रहः शरीरं विद्यते यस्य तादृशं मूर्तिमदिवेत्यर्थः [एकशेषनियमेन नपुंसकैकशेषः], **स्थिता** यथाक्रमं स्थितानीत्यर्थः [अत्र नपुंसकैकशेषेण 'स्थितम्' इति नपुंसकपाठ उचितः] । सत्यादीनां क्रमेण रामादिभिरन्वयाद् यथासंख्यालङ्कारः । सत्यादीनां विग्रहवत्त्वोत्प्रेक्षणादुत्प्रेक्षा च, सा चेवादीनामप्रयोगात् प्रतीयमाना ॥४॥

सुमन्त्र—राजकुमार ! इसी आश्रम में,

—महायशस्वी राम, सीता और लक्ष्मण निवास किये हुए हैं; जिनमें सत्य, शील और भक्ति साक्षात् रूप धारण किये हुए विराजमान हैं ॥४॥

भरत—अच्छा तो रथ को खड़ा कर दो ।

सूत—जो आज्ञा चिरजीवी की ! [रथ को खड़ा कर देता है]

भरत—[रथ से उतरकर] सारथि ! घोड़ों को एक ओर ले जाकर विश्राम दो ।

सूत—जो आज्ञा चिरजीवी की !

[प्रस्थान]

भरतः—भोस्तात ! निवेद्यतां निवेद्यताम् ।

सुमन्त्रः—कुमार ! किमिति निवेद्यते ।

भरतः—राज्यलुब्धायाः कैकेय्याः पुत्रो भरतः प्राप्त इति ।

सुमन्त्रः—कुमार ! अलं गुरुजनापवादमभिधातुम् ।

भरतः—सुष्ठु, न न्याय्यं परदोषमभिधातुम् । तेन हि उच्यतामिक्ष्वाकुकुलन्यङ्गभूतो भरतो दर्शनमभिलषतीति ।

सुमन्त्रः—कुमार ! नाहमेवं वक्तुं समर्थः । अथ पुनर्भरतः प्राप्त इति ब्रूयाम् ।

भरतः—न न । नाम केवलमभिधीयमानमकृतप्रायश्चित्तमिव

भोस्तातेति—निवेद्यतामित्यस्य 'आर्यं रामं प्रती'ति शेषः । कुमारेति—गुरुजनापवादम् गुरुजनस्य पूजनीयाया मातुरित्यर्थः, अपवादं निन्दाम् । 'राज्यलुब्धायाः कैकेय्याः' इत्येवं मातुरपवादो न वक्तव्य इति भावः । सुष्ठ्विति—सुष्ठु गुरुजनापवादो नाभिधातव्य इति त्वया साधूक्तमिति भावः । न न्याय्यमित्यादि—स्वातिरिक्तस्य मातुरन्यस्य वा कस्याचिदपि दोषोद्घाटनमनुचितमेवेति भरतस्य हृदयम् । इक्ष्वाकुकुलेत्यादि—इक्ष्वाकूणां कुलस्य न्यङ्गभूतः [निकृष्टमङ्गं न्यङ्गम्, प्रादिसमासः, न्यङ्गमिव न्यङ्गभूतः] कलङ्कभूत इत्यर्थः । कुमारेति—एवम् इक्ष्वाकुकुलन्यङ्गभूतो भरत इत्येवम् । अथेति—ब्रूयाम् ['अर्हे कृत्यतृचश्च' इति अर्हार्थे लिङ्] 'भरतः प्राप्तः' इति वक्तुमर्हामीत्यर्थः । न नेति—मम निरुपपदं नाम नोच्चारणीयमिति भावः । केवलम् इक्ष्वाकुकुलन्यङ्गभूत इत्युपपदरहितम् । अकृतेत्यादि—न कृतं न सूचितम्, प्रायश्चित्तम् अनुतापो येन ताद-

---

भरत—तात ! सूचना दीजिए, सूचना दीजिए ।

सुमन्त्र—राजकुमार ! कैसी सूचना ?

भरत—यह कि राज्य-लोलुप कैकेयी का पुत्र भरत आया है ।

सुमन्त्र—राजकुमार ! बस करो । गुरु-जनों को निन्दावचन (बुरा-भला) मत कहो ।

भरत—बहुत ठीक । दूसरे के दोषों का बखान करना पाप है । अच्छा तो कहिए कि इक्ष्वाकुकुलकलङ्क भरत आपके दर्शन करना चाहता है ।

सुमन्त्र—राजकुमार ! ऐसा मैं नहीं कह सकता । अच्छा तो यह कह दूँ कि भरत आ पधारे हैं ।

भरत—नहीं, नहीं । केवल नाम लेने से मुझे प्रायश्चित्त नहीं हुआ जान

मे प्रतिभाति । किं ब्रह्मघ्नानामपि परेण निवेदनं क्रियते । तस्मात् तिष्ठतु तातः । अहमेव निवेदयिष्ये । भो भो ! निवेद्यतां निवेद्यतां तत्रभवते पितृवचनकराय राघवाय—

निर्घृणश्च कृतघ्नश्च प्राकृतः प्रियसाहसः ।
भक्तिमानागतः कश्चित् कथं तिष्ठतु यात्विति ॥५॥

शमिव । किमिति—**ब्रह्मघ्नानाम्** ब्रह्माणं घ्नन्तीति ब्रह्मघ्नाः [मूलविभुजादित्वात् कः] तेषाम् ब्रह्मघ्नसदृशानां मादृशाम्, **परेण** अन्येन, **निवेदनम्** प्राप्तिसूचनम्, **क्रियते किम्** न क्रियत इत्यर्थः । ये सद्वृत्ता महात्मानस्तेषामेवागमनं परेण सूच्यते । अहं तु पितृनिधनज्येष्ठप्रवासहेतुर्ब्रह्मघ्नतुल्यो न परेण सूचनामर्हामीति भावः । **तस्मादिति**—यतो मत्प्राप्तिर्न परेण सूचनार्हा, तस्माद् हेतोः, **तातः** सुमन्त्रः, **तिष्ठतु** मत्प्राप्तिनिवेदनाद् विरमतु । **निवेदयिष्य** इत्यस्य स्वप्राप्तिमिति शेषः ।

निवेद्यतामिति पूर्वमुक्तम् । किं निवेद्यतामिति जिज्ञासायामाह—"**निर्घृणश्चे**"ति—**निर्घृणश्च** निर्गता घृणा दया यस्मात् सः, निर्दयश्चेत्यर्थः, **कृतघ्नश्च** कृतं परेणानुष्ठितमुपकारम्, हन्ति विलोपयतीति तादृशः, उपकारिणोऽप्यपकर्ता, **प्राकृतः** पामरः ['विवर्णः पामरो नीचः प्राकृतश्चे'त्यमरः] **प्रियसाहसः** प्रियं साहसं दुष्करं कर्म यस्य तादृशोऽपि, **भक्तिमान्** त्वयि निरतिशयानुरागवान् [भूम्नि मतुप्], **कश्चित्** कृतघ्नत्वादिदोषादश्रवणीयनामधेयः, **आगतः** प्राप्तः, भवद्दर्शनार्थमिति शेषः । सः, **कथम्** किमित्यर्थः, **तिष्ठतु** त्वद्दर्शनं प्रतीक्षताम्, उत **यातु** दर्शनायोग्यत्वाद् गच्छतु ? **इति** निवेद्यतामिति पूर्वेण सम्बन्धः । यद्यपि भरतेन नैर्घृण्यादिदोषापादकं न किञ्चिदपि कृतम्, तथापि स मातृदोषानात्मन्यारोप्य वदति निर्घृणश्चेत्यादि । यद्यहं नाभविष्यं तर्हि न कैकेय्या निर्घृणताद्यवसरोऽजनिष्यत । अहमेव

पड़ता । क्या ब्रह्म-हत्यारों की भी कभी दूसरे से सूचना दी जाती है ? इसलिए, तात ! तुम ठहरो । मैं स्वयं ही सूचना दूँगा । ओ लोगो ! सूचना दीजिए, सूचना दीजिए, पिता जी के वचनों को निभाने वाले उन महानुभाव रघुकुलतिलक को—

एक नृशंस (क्रूर), कृतघ्नी, अधम और उद्दण्ड किन्तु दृढ़ भक्ति वाला व्यक्ति आया है । क्या वह दरवाज़े पर आपके दर्शनों की प्रतीक्षा करे या लौट जाय ? ॥५॥

[ततः प्रविशति रामः सीतालक्ष्मणाभ्याम्]

रामः—[आकर्ण्य सहर्षम्] सौमित्रे ! किं शृणोषि । अयि विदेहराजपुत्रि ! त्वमपि शृणोषि ।

कस्यासौ सदृशतरः स्वरः पितुर्मे
गाम्भीर्यात् परिभवतीव मेघनादम् ।
यः कुर्वन् मम हृदयस्य बन्धुशङ्कां
सस्नेहः श्रुतिपथमिष्टतः प्रविष्टः ॥६॥

तस्या निर्घृणतादिदोषे हेतुः । मम राज्यप्राप्तिमुद्दिश्यैव तया पुत्रनिर्विशेषं रामं प्रवास्य नैर्घृण्यं प्रदर्शितम्, पत्युरुपकारं विस्मृत्य स्वार्थान्धयाऽसामयिकं तन्निधनमपि न गणितम्, प्राकृतपुरुषवत् परिणाममविचार्य रामप्रवासनसाहसं कृतमिति भावः ॥५॥

"**कस्ये**"ति—मे मम, **पितुः** पितृस्वरस्येत्यर्थः, **सदृशतरः** अधिकसदृशः, **असौ** श्रूयमाणः, **कस्य**, **स्वरः**, **गाम्भीर्याद्** गम्भीरतया ['विभाषा गुणे स्त्रियाम्' इति हेतौ पञ्चमी], **मेघनादम्** मेघशब्दम्, **परिभवतीव** अतिशेत इव ? **यः** स्वरः, **मम** रामस्य, **हृदयस्य** हृदये इत्यर्थः, **बन्धुशङ्काम्** बन्धुविषयभ्रमम्, उच्चारयितरीति शेषः, **कुर्वन्** जनयन्, **सस्नेहः** स्नेहेन सहितः, वक्तुरान्तरं स्नेहं प्रकटयन्निति भावः, **इष्टतः** इष्टरूपेण प्रियतयेत्यर्थः [सार्वविभक्तिकस्तसिः], **श्रुतिपथम्** श्रोत्रयोः, **प्रविष्टः** । निर्घृणश्चेत्यादि भरतवाक्यं श्रुत्वा रामः कथयति—एष स्वरः पितृस्वरमनुकरोति । गाम्भीर्येण घनगर्जितमप्यतिशेते । एतदुच्चारयितरि 'कश्चन बन्धुरेवायमस्माकं भवेद्' इति मे मनसि शङ्का समुत्पद्यते । किञ्चायं वक्तुः स्नेहं प्रकटयति । न ज्ञायते कस्यायं स्वरो भवेदिति भावः । उपमालङ्कारः । प्रहर्षिणी छन्दः ॥६॥

[सीता और लक्ष्मण सहित राम का प्रवेश]

राम—[सुनकर, हर्ष के साथ] **लक्ष्मण ! क्या सुन रहे हो ? जनकनन्दिनी ! क्या तुम भी सुन रही हो ?**

—मेरे पिता जी के स्वर (आवाज़) से इतना अधिक मिलने वाला, गंभीरता में मेघ-गर्जना को भी मात करने वाला यह किसका स्वर हो सकता है ? जो कि, मेरे हृदय में भ्रातृ-सन्देह को पैदा करता हुआ, स्नेह से भरपूर रोचकता से मेरे कर्णगोचर हो रहा है ॥६॥

लक्ष्मणः—आर्य ! ममापि खल्वेष स्वरसंयोगो बन्धुजनबहुमानमावहति । एष हि,

घनः स्पष्टो धीरः समदवृषभस्निग्धमधुरः
कलः कण्ठे वक्षस्यनुपहतसञ्चाररभसः ।
यथास्थानं प्राप्य स्फुटकरणनानाक्षरतया
चतुर्णां वर्णानामभयमिव दातुं व्यवसितः ॥७॥

आर्येति—एषः अनुभूयमानः, **स्वरसंयोगः** स्वरसम्बन्धः, **ममापि** लक्ष्मणस्यापि, **बन्धुजनबहुमानम्** बन्धुजनोचितं बहुमानम्, **आवहति** उत्पादयति, वक्तरीति शेषः । लक्ष्मणः स्वरं वर्णयति—**एष हीति** । 'एष ही'ति पदद्वयमुत्तरपद्यान्वयि ।

"**घन**" इति—**घनः** सान्द्रः, **स्पष्टः** स्फुटः, **धीरः** मन्द्रः, **समदवृषभस्निग्धमधुरः** समदः मद्युक्तः, वृषभः, तस्य स्वर इव स्निग्धः सरसः, मधुरः रमणीयः, **कलः** कोमलः, **कण्ठे**, **वक्षसि** हृदये च, **अनुपहतसञ्चाररभसः** अनुपहतः अस्खलितः, सञ्चारस्य सञ्चरणस्य स्वोद्भवस्य रभसो वेगः ['रभसो वेगहर्षयो'रिति विश्वः] यस्य तादृशः अप्रतिरुद्धमुत्पद्यमान इति भावः, **यथास्थानम्** ताल्वादिस्वस्वस्थानमनतिक्रम्य, **प्राप्य** संस्पृश्य यस्य वर्णस्य यत् स्थानं तत् स्थानं स्पृष्ट्वेत्यर्थः, **स्फुटकरणनानाक्षरतया** स्फुटम् स्पष्टमभिव्यक्तम्, करणम् आभ्यन्तरादियत्नः, येषां तादृशानि, अतएव नाना पृथक् पृथक् श्रूयमाणानि, अक्षराणि वर्णा यत्र तादृशानि [बहुव्रीहिगर्भो बहुव्रीहिः] तेषां भावस्तत्ता, तया उपलक्षितः [उपलक्षणे तृतीया], यथास्थानं यथाकरणं चोच्चारणेन यत्र वर्णाः स्पष्टं श्रूयन्त इति भावः, एष स्वरसंयोगः, **चतुर्णाम्** चतुर्विधानाम्, **वर्णानाम्** स्वरस्पर्शा-

---

लक्ष्मण—आर्य ! यह स्वर, निश्चय ही, मेरे मन में बन्धु-जन का अत्यधिक सम्मान-भाव उत्पन्न कर रहा है । क्योंकि यह,

—घहराता हुआ, सु-स्पष्ट, गम्भीर, मदमाते साँड के स्वर की भाँति रसीला और मिठास से भरा, अभिराम लगने वाला तथा जिस अक्षर का जो स्थान है उस उस स्थान को पहुँच सभी अक्षरों का विभिन्न उच्चारण प्रयत्नों से अनायास स्पष्ट उच्चारण होने के कारण गले और छाती में अप्रतिहत वेग से प्रवेश करने वाला प्रभावशाली स्वर मानो (ब्राह्मण आदि) चारों वर्णों को अभयदान देने के लिए उद्यत हुआ है ॥७॥

रामः—सर्वथा नायमबान्धवस्य स्वरसंयोगः । क्लेदयतीव मे हृदयम् । वत्स ! लक्ष्मण ! दृश्यतां तावत् ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः । [परिक्रामति]

भरतः—अये कथं न कश्चित् प्रतिवचनं प्रयच्छति । किन्नु खलु विज्ञातोऽस्मि कैकेय्याः पुत्रो भरतः प्राप्त इति ।

लक्ष्मणः—[विलोक्य] अये अयमार्यो रामः । न न । रूपसादृश्यम् ।

मुखमनुपमं त्वार्यस्याभं शशाङ्कमनोहरं
मम पितृसमं पीनं वक्षः सुरारिशरक्षतम् ।

न्तःस्थोष्मणाम् [ब्राह्मणादिचातुर्वर्ण्यस्येति ध्वनिः, सम्बन्धसामान्ये षष्ठी], **अभयम्** निर्भयताम् [स्पर्शादिवर्णपक्षे ग्रस्तत्वादिदोषनिवृत्त्या, चातुर्वर्ण्यपक्षे प्रजापीडकजनशासनेन], **दातुम्**, **व्यवसितः** कृतनिश्चय **इव** लक्ष्यते । उत्प्रेक्षालङ्कृतिः । शिखरिणी छन्दः ॥७॥

सर्वथेति—**क्लेदयतीव** स्नेहार्द्रमिव करोति । **दृश्यताम्** साक्षात्कारेण निर्णीयतां कस्तावदयमिति । **अये** इति—**प्रतिवचनं** प्रत्युत्तरम् । **किन्नु** इति—कदाचित् 'पापिष्ठायाः कैकेय्याः पुत्रः पापिष्ठो भरत उपस्थित' इति विज्ञाय मद्दर्शनपरिजिहीर्षया न कश्चन प्रतिब्रवीतीति भावः । लक्ष्मणोक्तौ **अये** इति । रूपसादृश्याद् भरते लक्ष्मणस्य रामभ्रमः ।

"**मुखमि**"ति—अस्य पुरोदृश्यमानस्य पुरुषस्य, **मुखम्** आननम्, **अनुपमम्** न उपमा यस्य तादृशम्, उपमारहितमद्वितीयशोभम्, **आर्यास्याभम्** आर्यस्य रामस्य, आस्यं मुखम्, तस्य आभेव कान्तिरिव, आभा यस्य तादृशम्, कान्त्या रामाननसदृशमिति भावः, **शशाङ्कमनोहरम्** शशाङ्कश्चन्द्रमाः, तद्वत् मनोहरं रमणीयम्, अस्ति । **वक्षः** वक्षःस्थलम्, **मम**, **पितृसमम्** पितुर्दशरथस्य वक्ष इवेत्यर्थः, **पीनम्** अतिविस्तृतम्

राम—निश्चय ही, यह स्वर बन्धुजन के सिवाय और किसी का नहीं। इसे सुन मेरा हृदय पसीजा (द्रवित हुआ) जाता है। वत्स! लक्ष्मण! जा देखो तो।

लक्ष्मण—जो आज्ञा आर्य की। [प्रस्थान]

भरत—ऐं ! क्या कोई प्रत्युत्तर नहीं देता ? क्या मुझे जान लिया है कि (कुटिल) कैकेयी का पुत्र भरत आया है ?

लक्ष्मण—[भरत की ओर देखकर] ओहो ! यह तो आर्य राम हैं। नहीं, नहीं। हू-बहू आकृति मिल-जुल रही है।

—चाँद के समान मन को हर लेने वाला, आर्य से हू-बहू मिलता-जुलता कैसा अनुपम मुख है। (देवासुरसंग्राम में देवताओं की सहायता करते

द्युतिपरिवृतस्तेजोराशिर्जगत्प्रियदर्शनो
नरपतिरयं देवेन्द्रो वा स्वयं मधुसूदनः ॥८॥

[सुमन्त्रं दृष्ट्वा] अये तातः ।

सुमन्त्रः—अये कुमारो लक्ष्मणः ।

भरतः—एवं, गुरुरयम् । आर्य ! अभिवादये ।

[प्यायतेः क्तः, प्यायः पी, 'ओदितश्च' इति निष्ठानत्वम्], **सुरारिशरक्षतम्** सुरारीणां दानवानाम्, शरैर्बाणैः, क्षतं जातव्रणम्, अस्ति । स्वयं च **द्युतिपरिवृतः** द्युत्या दीप्त्या, परिवृतः परिवेष्टितः देदीप्यमानः, **तेजोराशिः** तेजःपुञ्ज इव स्थितः [अथवा तेजसः प्रभावस्य, राशिः समूहः, 'तेजः प्रभावे दीप्तौ च' इत्यमरः], **जगत्प्रियदर्शनः** जगतां लोकानाम्, प्रियं प्रीतिकरम्, दर्शनं यस्य तादृशः, अयं पुरुषः, **नरपतिः** कश्चन राजा स्यात्, **वा** अथवा, ईदृशस्य तेजसो नरेषु दुर्लभतया, **देवेन्द्रः** देवराजः, भवेत्, **वा, स्वयम्** आत्मनावतीर्णः, **मधुसूदनः** मधुनामकदैत्यमर्दनो नारायणो वा भवेत् ।

पूर्वार्धे उपमा । उत्तरार्धे ससन्देहः । अत्र मुखस्यानुपमत्वं प्रतिपाद्य शशाङ्कमनोहरमिति शशाङ्केन तदुपमित्या व्याहतत्वमर्थदोषः । तदुक्तम्—'उत्कर्षोऽवापकर्षो वा प्राग् यस्यैव निगद्यते । तस्यैवाथ तदन्यश्चेद् व्याहतोऽर्थस्तदा भवेत् ॥' किञ्च असुरैः सह युद्धावसरे तच्छरैर्दशरथवक्षसः क्षतत्वमितिहासप्रसिद्धम् । परं वनगमनात् प्राग् भरतस्यासुरैः सह युद्धस्य क्वाप्यदर्शनात् तद्वक्षसोऽसुरशरक्षतत्वं चिन्त्यमित्यलङ्कारदोषश्च । हरिणी छन्दः ॥८॥

सुमन्त्रवाक्याल्लक्ष्मणपरिचयं प्राप्य जातप्रसादो भरत आह—**एवमिति** । **एवमि**त्यवधारणे । **गुरु**र्वयसा ज्येष्ठः । भरतलक्ष्मणयोः कस्य ज्यायस्त्वमित्यत्रैतिहासिकानां विवाद एव । भासस्तु लक्ष्मणस्यैव ज्यायस्त्वं मेने । भरतस्य ज्यायस्त्वे तु—"ततो लक्ष्मणमासाद्य वैदेहीं च परंतपः । अभिवाद्य ततः प्रीतो भरतो नाम चाब्रवीत् ॥" इत्यत्र रामायणपद्ये

समय) असुरों के बाणों के घावों से चिह्नित हुई, मेरे पिता जी से हू-बहू मिलती-जुलती कैसी चौड़ी छाती है। चारों ओर बिखर रही जगमगाहट से दमकता हुआ, तेज का पुंज (तेजस्वी), संसार की आँखों को प्यारा लगने वाला (नयनाभिराम) यह क्या महाराज हैं, या देवराज इन्द्र हैं, या स्वयं मधुसूदन विष्णु भगवान् हैं ? ॥८॥

[सुमन्त्र को देखकर] **ओहो ! ये तो तात हैं ।**

सुमन्त्र—ओहो ! क्या राजकुमार लक्ष्मण हैं ?

भरत—ऐसा ! ये गुरु हैं । आर्य ! अभिवादन करता हूँ ।

लक्ष्मणः—एह्येहि । आयुष्मान् भव । [सुमन्त्रं वीक्ष्य] तात ! कोऽत्रभवान् ।

सुमन्त्रः—कुमार !

रघोश्चतुर्थोऽयमजात् तृतीयः
पितुः प्रकाशस्य तव द्वितीयः ।
यस्यानुजस्त्वं स्वकुलस्य केतो-
स्तस्यानुजोऽयं भरतः कुमारः ॥९॥

लक्ष्मणः—एह्येहीक्ष्वाकुकुमार ! वत्स ! स्वस्त्यायुष्मान् भव ।

भरतकर्तृकलक्ष्मणाभिवादानुपपत्तिः ।

पुरःस्थितं भरतमपरिचिन्वानो लक्ष्मणस्तत्परिचयेच्छया सुमन्त्रं सम्बोध्य पृच्छति—तात ! कोऽत्रेति ।

"**रघो**"रिति—**अयम्** त्वत्पुरःस्थितो जनः, **रघोः** रघुनाम्नो महाराजात्, **चतुर्थः** पुत्रपौत्रादिपरम्परायां चतुर्थः पुरुषः [रघुः प्रथमः, तत्पुत्रोऽजो द्वितीयः, तत्सुतो दशरथस्तृतीयः, तदात्मजोऽयं चतुर्थ इत्येवं क्रमेणेति भावः]; **अजाद्** रघुसुताद् अजनाम्नो नृपतेः, **तृतीयः**, **प्रकाशस्य** प्रथितकीर्तेः [प्रकाशतेः पचाद्यच्, पितृविशेषणम्], **तव**, **पितुः** जनकस्य दशरथस्य, **द्वितीयः**, अस्तीति शेषः । किञ्च **स्वकुलस्य** स्ववंशस्य, **केतोः** ध्वजरूपस्य, स्वकुलविजयवैजयन्तीरूपस्येत्यर्थः, **यस्य** रामस्य, **अनुजः** कनीयान् भ्राता, **त्वम्** असि, **अयम्** अपि, **तस्य** रामस्यैव, **अनुजः**, **कुमारः**, **भरतः**, अस्ति । आत्मीय एवायं युष्माकम्, नात्र परत्वशङ्का कार्या । किञ्च यस्यानुजस्त्वं तस्यैवायमपीत्यनेन त्वद्धृदयमप्यार्यं राममनुव्रतः, न तद्विरोधीति सुमन्त्रहृदयं प्रतिभाति । उपेन्द्रवज्रा छन्दः ॥९॥

लक्ष्मण—आओ, आओ । चिरजीवी होओ । [सुमन्त्र की ओर देखकर] **तात ! ये महानुभाव कौन हैं ?**

सुमन्त्र—राजकुमार !

—ये हैं महाराज रघु से चौथे; महाराज अज से तीसरे; तुम्हारे जगद्-विख्यात पिता—महाराज दशरथ से दूसरे; और जिन रघुकुल-तिलक (अपने वंश की ध्वजा) राम के तुम छोटे भाई हो, उन्हीं के छोटे भाई राजकुमार भरत ॥९॥

लक्ष्मण—आओ, आओ, इक्ष्वाकुवंशभूषण राजकुमार ! वत्स ! तुम्हारा कल्याण हो । तुम चिरजीवी होओ ।

असुरसमरदक्षैर्वज्रसंघृष्टचापै-
रनुपमबलवीर्यैः स्वैः कुलैस्तुल्यवीर्यः ।
रघुरिव स नरेन्द्रो यज्ञविश्रान्तकोशो
भव जगति गुणानां भाजनं भ्राजितानाम् ॥१०॥

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

"असुरे"ति—**असुरसमरदक्षैः** असुरैः दैत्यैः सह, समरे संग्रामे, दक्षैः निपुणैः, **वज्रसंघृष्टचापैः** वज्रेण इन्द्रायुधेन, संघृष्टः प्राप्तसंघर्षः [इन्द्रेण सह युद्धावसरे] चापः धनुर्येषां तादृशैः [अथवा वज्रेण संघृष्टः जातस्पर्धः तुल्य इति भावः, चापो येषां तादृशैरिति व्याख्येयम् । असुर-दमनकारित्वाच्चापस्य वज्रतुल्यता ज्ञेया], **अनुपमबलवीर्यैः** अनुपमम् उपमाशून्यम्, अनन्यसाधारणम्, बलम् शारीरशक्तिः, वीर्यं च निरतिशय-शक्तियुक्तोऽध्यवसायश्च ['उत्साहोऽध्यवसायः स्यात् स वीर्यमतिशक्तिभाक्' इत्यमरः] येषां तादृशैः, **स्वैः कुलैः** स्वकुलजैः नराधिपैः, **तुल्यवीर्यः** तुल्यं समानं वीर्यं पराक्रमः, यस्य तादृशः, **सः** प्रसिद्धः, **यज्ञविश्रान्त-कोशः** यज्ञे विश्वजिद्यागे, विश्रान्तः पर्यवसितः व्ययितः, कोशः अर्थराशिर्यस्य तादृशः [तदुक्तं रघुवंशे—'तमध्वरे विश्वजिति क्षितीशं निःशेषविश्राणित-कोशजातम्' इति], **नरेन्द्रः** नरपतिः, **रघुरिव** रघुनामकनृपतिवत्, त्वम्, **जगति, भ्राजितानाम्** दीप्तानां स्पृहणीयानाम्, **गुणानाम्** दयादाक्षि-ण्यादीनाम्, **भाजनम्** पात्रम् आश्रयः, **भव** । अत्र पद्ये भरतागमनेन किमर्थमयमागतो भवेत् पितृदत्तं राज्यं परित्यज्य, कदाचिदयमात्मराज्यं निष्कण्टकं विधित्सुरिह वने रामपरिस्थितिं विलोक्य अस्मदभिषेणनं निश्चिनुयादिति जातशङ्को लक्ष्मणः कृतानतेर्भरतस्याशीर्वादमुखेन रघुवद् धर्मपरायणत्वमुपदिशन्निव प्रतिभाति । उपमालङ्कृतिः । रघुरभवत्, त्वं च भवेति विधेरुपमानासम्बन्धादलङ्कारदोषः । मालिनीवृत्तम् ॥१०॥

—असुरों के साथ संग्राम भिड़ने में कुशल, असुर-संहार करने में देवेन्द्र के वज्र को भी मात कर देने वाले धनुषों वाले, अतुल बल-पराक्रम वाले अपने पुरखाओं के तुल्य पराक्रमी बनो और सारे ऐश्वर्य को यज्ञों में लगा देने वाले उन लोकविश्रुत महाराज रघु की भाँति संसार में देदीप्यमान गुणों के भाजन बनो ॥१०॥

भरत—मैं आपका बड़ा अनुगृहीत हुआ ।

लक्ष्मणः—कुमार ! इह तिष्ठ । त्वदागमनमार्याय निवेदयामि ।
भरतः—आर्य ! अचिरमिदानीमभिवादयितुमिच्छामि । शीघ्रं निवेद्यताम् ।
लक्ष्मणः—बाढम् । [उपेत्य] जयत्वार्यः । आर्य !

अयं ते दयितो भ्राता भरतो भ्रातृवत्सलः ।
संक्रान्तं यत्र ते रूपमादर्श इव तिष्ठति ॥११॥

रामः—वत्स ! लक्ष्मण ! किमेवं भरतः प्राप्तः ।
लक्ष्मणः—आर्य ! अथकिम् ।

आर्येति—**अचिरम्** शीघ्रम् । **अभिवादयितुम्** प्रणन्तुम्, आर्यरामिति शेषः । **बाढमिति**—**बाढमिति** स्वीकृतौ । आं शीघ्रं निवेदयामीति भावः । उपेत्य रामान्तिकं गत्वा ।

"**अयमि**"ति—**ते** तव, **दयितः** प्रियः, **भ्राता**, **भ्रातृवत्सलः** भ्रातरि वत्सलः प्रीतिमान्, **भरतः**, **अयम्**, द्वारि उपस्थितः, वर्तत इति शेषः [इदंशब्दप्रयोगोऽत्र सन्निकर्षबोधनाय । तदुक्तम्—'इदमस्तु सन्निकृष्टे समीपतरवर्ति चैतदो रूपम्। अदसस्तु विप्रकृष्टे तदिति परोक्षे विजानीयात् ॥']। **यत्र** यस्मिन् भरते, **आदर्श इव** दर्पण इव, **संक्रान्तम्** प्रतिफलितम्, **ते** तव, **रूपम्**, **तिष्ठति** । यथादर्शे दृश्यमानस्य प्रतिबिम्बस्य बिम्बेन सह न कश्चन भेदो लक्ष्यते, तथैव तद्रूपत्वद्रूपयोर्न कोऽपि भेदः । नितरां त्वत्समानाकृतिरसाविति भावः । अत्रापि 'ते दयितो भ्राता' इति सोल्लुण्ठोक्त्या लक्ष्मणस्य भरतं प्रति पूर्वपद्यवत् सशङ्कहृदयत्वमेव सूच्यते ॥११॥

वत्सेति—**किमेवमिति**—किं सत्यं भरतः प्राप्त इति भावः ।

लक्ष्मण—कुमार ! यहाँ ठहरो । मैं तुम्हारे आने की सूचना आर्य को दिये देता हूँ ।
भरत—आर्य ! मैं अब शीघ्र ही उन्हें अभिवादन करना चाहता हूँ । जल्दी ही उन्हें सूचना दे दीजिएगा ।
लक्ष्मण—बहुत अच्छा । [राम के पास आकर] जय हो आर्य की । आर्य !
—यह लो, आपके प्यारे भाई भ्रातृ-वत्सल भरत आ पहुँचे, जिनमें दर्पण की नाईं हू-बहू आर्य की रूपरेखा प्रतिबिम्बित है ॥११॥
राम—वत्स ! लक्ष्मण ! क्या सचमुच भरत आ पहुँचे ?
लक्ष्मण—आर्य ! जी हाँ, बिलकुल ठीक है ।

रामः—मैथिलि ! भरतावलोकनार्थं विशालीक्रियतां ते चक्षुः।
सीता—अय्यउत्त ! किं भरदो आअदो।
आर्यपुत्र ! किं भरत आगतः।
रामः—मैथिलि ! अथकिम्।

अद्य खल्ववगच्छामि पित्रा मे दुष्करं कृतम्।
कीदृशस्तनयस्नेहो भ्रातृस्नेहोऽयमीदृशः ॥१२॥

लक्ष्मणः—आर्य ! किं प्रविशतु कुमारः।

मैथिलीति—विशालीक्रियतामित्यनेन उदारदृष्ट्या भरतः साक्षात्करणीयः, तदागमनं प्रति कथमपि स्वहृदयं दुःशङ्कापङ्किलं न कार्यमिति धीरोदात्तस्य रामस्य हृदयं निवेदितम्।

"अद्ये"ति—मे मम, पित्रा महाराजदशरथेन, मद्वियोगे, दुष्करम् अतिकठिनम् निरतिशयक्लेशानुभवरूपं कर्म, कृतम् विहितम्, इति, अहम् रामः, अद्य अस्मिन् क्षणे, अवगच्छामि अनुभवामि, खलु। यदि, अयम् भरतेन प्रदर्शितः, भ्रातृस्नेहः भ्रातृवात्सल्यम्, ईदृशः एवंविधः, तर्हि, तनयस्नेहः पुत्रवात्सल्यम्, कीदृशः कथंविधः, स्यात्। अद्य मद्विरहातुरो भरतः पितृदत्तं राज्यमप्युपेक्ष्य मद्दर्शनोत्कण्ठयेह वने समुपस्थितः। यदि भ्रातृस्नेहोऽपि मानवमित्थं व्याकुलयति तर्हि सुतस्नेहस्तु नैकविधलालनपालनादिसमुपचितस्ततोऽप्यधिकतरं व्याकुलयेदिति संभाव्यते। अतो मत्पिता दशरथः पुत्रवात्सल्यातिशयाद् मद्वियोगमसहमानोऽवश्यं किमपि दुष्करमकरोदिति निश्चीयत इति भावः। उत्तरार्धे कैमुतिकन्यायेन काव्यार्थापत्तिः। काव्यार्थापत्त्युपक्षिप्तहेतुना पितुर्दुष्करकरणानुमानादनुमानं च ॥१२॥

आर्येति—कुमारः भरतः। भरतप्रवेशोऽनुज्ञायतां किमिति भावः।

राम—मैथिली ! भरत के दर्शन के लिए अपनी आँखें विशाल कर लो।
सीता—आर्यपुत्र ! क्या भरत आये हैं ?
राम—मैथिली ! हाँ, भरत आये हैं।

—सचमुच, मैं यह आज समझा कि मेरे वियोग में पिता जी कितने अधिक व्याकुल हुए होंगे—उन्होंने कितना अधिक पुत्र-बिछोह-शोक सहारा होगा। भला, पुत्र-स्नेह कैसा विलक्षण होता होगा, जब भ्रातृ-स्नेह ही अहा ! यह इस तरह का है ॥१२॥

लक्ष्मण—आर्य ! क्या कुमार भीतर आ जाय ?

रामः—वत्स ! लक्ष्मण ! इदमपि तावदात्माभिप्रायमनुवर्तयितुमिच्छसि । गच्छ सत्कृत्य शीघ्रं प्रवेश्यतां कुमारः ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः ।

रामः—अथवा तिष्ठ त्वम् ।

इयं स्वयं गच्छतु मानहेतोर्मातेव भावं तनये निवेश्य ।
तुषारपूर्णोत्पलपत्रनेत्रा हर्षास्रमासारमिवोत्सृजन्ती ॥१३॥

वत्स **लक्ष्मणे**ति—**इदमपि तावद्** भ्रातृप्रवेशनमपि नाम, **आत्माभिप्रायमनुवर्तयितुम्** मदभिप्रायानुसारि कर्तुम् इति गणपतिशास्त्रिणः । भ्रातृप्रवेशने मदनुज्ञायाः काऽवश्यकता । अनात्मीयश्चेत् कश्चित् प्रवेष्टुमिच्छति, तत्कृते कामं प्रष्टव्योऽस्मि । भरतस्तु ममेव तवापि प्रियो भ्रातैव, स त्वपृष्ट्वापि मां प्रवेशनानुज्ञामर्हत्येवेति भावः । अत्र धीरोदात्तेन रामेण भरतं प्रति सन्दिहानो लक्ष्मणः प्रियोक्त्या निपुणं कटाक्षितः ।

"**इयमि**"ति—**तुषारपूर्णोत्पलपत्रनेत्रा** तुषाराः अवश्यायबिन्दवः, तैः पूर्णे आच्छादिते, उत्पलपत्रे इव कमलदले इव नेत्रे नयने, यस्यास्तादृशी, **आसारमिव** धारासम्पातमिव, **हर्षास्रम्** आनन्दाश्रूणि, **उत्सृजन्ती** मुञ्चन्ती, **तनये** पुत्रे, **मातेव** जननीव, **भावम्** वात्सल्यम्, **निवेश्य** स्थिता, **इयं** सीता, **स्वयम्** आत्मना, **मानहेतोः** भरतसम्मानार्थम्, भरतं प्रत्युद्गन्तुम् इत्यर्थः [निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनमिति हेतोरिति पञ्चमी षष्ठी वा], **गच्छतु** भरतान्तिकं यातु । तुषारेत्यादिपदे लुप्तोपमा । उत्पलदलनेत्रयोरुपमानोपमेयभावः । तुषाराश्रुबिन्दूनां बिम्बप्रतिबिम्बभावः । उपजातिश्छन्दः ॥१३॥

राम—वत्स ! लक्ष्मण ! क्या यह भी मेरा अभिप्राय मालूम कर (मुझसे पूछकर) ही किया चाहते हो ? जाओ, आदर-पूर्वक जल्दी ही कुमार को अन्दर लिवा लाओ ।

लक्ष्मण—जो आर्य की आज्ञा ।

राम—लक्ष्मण ! अथवा तुम ठहरो ।

—ओस की बूँदों से भरे (युगल) कमल-दलों की भाँति हर्ष के आँसुओं से सराबोर नयनों से, बरसा की झड़ी की नाईं अविरत आनन्दाश्रु-धारा बहाती हुई, यह सीता ही, पुत्र के प्रति माता के समान वात्सल्य भाव धारण किये दरसाती हुई, स्वयं भरत का सत्कार करने जावे ॥१३॥

सीता—जं अय्यउत्तो आणवेदि । [उत्थाय परिक्रम्य भरतमवलोक्य] हं तदो तं वेलं दाणि णिक्कन्तो अय्यउत्तो । णहि णहि । रूवसादिस्सं ।

यदार्यपुत्र आज्ञापयति । हं ततस्तां वेलामिदानीं निष्क्रान्त आर्यपुत्रः । नहि नहि । रूपसादृश्यम् ।

सुमन्त्रः—अये वधूः ।

भरतः—अये इयमत्रभवती जनकराजपुत्री ।

इदं तत् स्त्रीमयं तेजो जातं क्षेत्रोदराद्धलात् ।
जनकस्य नृपेन्द्रस्य तपसः सन्निदर्शनम् ॥१४॥

भरते रूपसादृश्यातिरेकेण जातरामभ्रमा सीता विस्मयते—**हमिति** । **हमिति** विस्मयावबोधकमव्ययम् । **तां वेलां** तस्यां वेलायामित्यर्थः । यस्यां वेलायामहमुटजाद् भरतं प्रत्युद्गन्तुं निष्क्रान्ता, तस्यां वेलायामार्यपुत्रस्तत्रैवोटजेऽभूत्, परं कथम्, **इदानीं निष्क्रान्तः** मदपेक्षयापि पूर्वं निष्क्रम्येह स्थितः । **नहि** नहि नायमार्यपुत्र इति भावः । **रूपसादृश्यम्** आर्यपुत्रस्य रूपसादृश्यातिरेकोऽत्र विद्यत इति भावः ।

"**इदमि**"ति—**इदम्** पुरोदृश्यमानम्, **नृपेन्द्रस्य** नृपाणां राज्ञाम्, इन्द्रः श्रेष्ठः, तस्य, **जनकस्य** जनकवंशधुरन्धरस्य राज्ञः सीरध्वजस्य, **तपसः** तपस्यायाः, **सत्** सर्वोत्तमम्, **निदर्शनम्** ख्यापकम् फलमिति यावत् [फलेनैव कारणमनुमीयते], **तत्** प्रसिद्धम्, **स्त्रीमयम्** स्त्रीरूपम्, **तेजः** धाम, अस्ति, यद्, **हलाद्** हलकृष्टादिति भावः, **क्षेत्रोदराद्** क्षेत्रमध्याद्, **जातम्** उत्पन्नम् । तदुक्तं रामायणे बालकाण्डे—'अथ मे कृषतः क्षेत्रं लाङ्गलादुत्थिता ततः । क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता' ॥१४॥

सीता—जो आर्यपुत्र की आज्ञा । [उठकर, घूमकर, भरत को देखकर] हुँ ! क्या वहाँ से उसी समय आर्यपुत्र भी यहाँ मुझसे पहले ही बाहर निकल आये ? नहीं, नहीं । आकृति की समानता है ।

सुमन्त्र—ऐं ! क्या बहू जी हैं ?

भरत—ओहो ! ये तो पूजनीया जनकराजपुत्री हैं ।

—यह है वह देदीप्यमान स्त्री-रूप तेज, जो खेत के बीच में से हल चलाते प्रकट (प्रादुर्भूत) हुआ था; और जो राजाधिराज (राजर्षि) जनक के तप का ज्वलन्त उदाहरण है ॥१४॥

आर्ये ! अभिवादये भरतोऽहमस्मि ।

सीता—[आत्मगतम्] णहि रूपं एव्व । सरजोओ वि सो एव्व । [प्रकाशम्] वच्छ ! चिरं जीव ।

नहि रूपमेव । स्वरयोगोऽपि स एव । वत्स ! चिरं जीव ।

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

सीता—एहि वच्छ ! भादुमणोरहं पूरेहि ।

एहि वत्स ! भ्रातृमनोरथं पूरय ।

सुमन्त्रः—प्रविशतु कुमारः ।

भरतः—तात ! इदानीं किं करिष्यसि ।

सुमन्त्रः—

अहं पश्चात् प्रवेक्ष्यामि स्वर्गं याते नराधिपे ।
विदितार्थस्य रामस्य ममैतत् पूर्वदर्शनम् ॥१५॥

नहीति—**स एव** रामसदृश एवेत्यर्थः । एहीति—**भ्रातृमनोरथम्** भ्रातुः स्वज्येष्ठस्य रामस्य, मनोरथम् अभिलाषम् त्वद्दर्शनालिङ्गनरूपम् । **पूरय** सम्पादय । तातेति—**किं करिष्यसि** मया सह पश्चाद् वा प्रवेक्ष्यसि ? इति भावः ।

"**अहमि**"ति—**अहम्, पश्चात्** त्वत्प्रवेशानन्तरम्, **प्रवेक्ष्यामि** रामदर्शनार्थमिति शेषः । तत्र हेतुमाह—**स्वर्गमि**ति । **नराधिपे** राजनि दशरथे, **स्वर्गं याते** निधनं गते सति, **विदितार्थस्य** ज्ञातपितृस्वर्गगमन-

---

आर्ये ! मैं भरत आपको अभिवादन करता हूँ ।

सीता—[स्वगत] केवल रूप ही नहीं । स्वर भी हू-बहू वही है । [प्रकट] वत्स ! चिरंजीव ।

भरत—आपका बड़ा अनुगृहीत हुआ ।

सीता—आओ वत्स ! अपने भाई जी के मनोरथ को परिपूर्ण करो ।

सुमन्त्र—कुमार भीतर चलें ।

भरत—तात ! इस समय आप क्या करेंगे ?

सुमन्त्र—मैं पीछे आऊँगा । महाराज के स्वर्ग सिधारने के पश्चात्, इस वृत्तान्त के विदित हो जाने पर राम के दर्शन करने का मेरा यह सब से पहला अवसर है (कहीं मुझे देखते ही पितृ-शोक उमड़ने से राम रो न पड़ें) ॥१५॥

भरतः—एवमस्तु । [राममुपगम्य] आर्य ! अभिवादये भरतोऽहमस्मि ।

रामः—[सहर्षम्] एह्येहि इक्ष्वाकुकुमार ! स्वस्ति, आयुष्मान् भव ।

वक्षः प्रसारय कवाटपुटप्रमाण-
मालिङ्ग मां सुविपुलेन भुजद्वयेन ।
उन्नामयाननमिदं शरदिन्दुकल्पं
प्रह्लादय व्यसनदग्धमिदं शरीरम् ॥१६॥

वृत्तान्तस्य, रामस्य [कर्मभूतस्य], एतत् करिष्यमाणम्, मम मत्कर्तृकम् [केचिदविशेषेण विभाषामिच्छन्तीति वचनात् कर्तरि षष्ठी], पूर्वदर्शनम् प्रथमसाक्षात्कारः, अस्तीति शेषः । महाराजदशरथनिधनानन्तरं रामेणैष मम प्रथमः समागमोऽस्ति । तद् यद्यहं प्रथमं प्रविशेयं तर्हि सर्वदा स्वपितृसहचारिणं मां दृष्ट्वा तस्य पितृवियोगदुःखं स्मर्यमाणमभिनवीभविष्यति । तदेतद् भ्रातृदर्शनजनितानन्दानुभवेऽन्तरायमुत्पादयेत्, अवाञ्छितं चेदम् । अतो मया त्वामन्वेव प्रवेष्टव्यमिति भावः । समर्थनसापेक्षस्य पश्चात्प्रवेशस्य कारणेन समर्थनात् काव्यलिङ्गम् । शोकोद्दीप्तिरूपे कार्ये प्रस्तुते तत्कारणोपन्यासादप्रस्तुतप्रशंसा च ॥१५॥

"वक्ष" इति—कवाटपुटप्रमाणम् कवाटपुटं कवाटयुग्ममित्यर्थः, प्रमाणं परिच्छेदसाधनम्, उपमानमिति यावत्, यस्य तादृशं कवाटपुटवद् अतिविस्तीर्णमिति भावः, वक्षः वक्षःस्थलम्, प्रसारय विस्तारय । सुविपुलेन बृहता आजानुलम्बिना, भुजद्वयेन भुजयोर्द्वयेन बाहुयुगलेन, माम् रामम्,

---

भरत—ऐसा ही सही । [राम के पास पहुँचकर] आर्य ! मैं भरत आपको अभिवादन करता हूँ ।

राम—[हर्ष के साथ] आओ, आओ, इक्ष्वाकुकुमार ! तुम्हारा कल्याण हो । तुम चिरजीवी होओ ।

—किवाड़ों की चौखट के समान अपनी विशाल छाती को फैलाओ; और अपनी दोनों बड़ी बड़ी भुजाओं द्वारा मुझसे गले लगकर लिपटो । शरद् ऋतु के चाँद-जैसे इस मुखड़े को ऊपर उठाओ; और शोक से जले हुए मेरे इस शरीर को आह्लादित करो ॥१६॥

---

१ कपाट०.

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि ।
सुमन्त्रः—[उपेत्य] जयत्वायुष्मान् ।
रामः—हा तात !

गत्वा पूर्वं स्वसैन्यैरभिसरिसमये स्वं समानैर्विमानै-
र्विख्यातो यो विमर्दे स स इति बहुशः सासुराणां सुराणाम् ।
स श्रीमांस्त्यक्तदेहो दयितमपि विना स्नेहवन्तं भवन्तं
स्वर्गस्थः साम्प्रतं किं रमयति पितृभिः स्वैर्नरेन्द्रैर्नरेन्द्रः ॥१७॥

आलिङ्ग परिष्वजस्व । शरद इन्दुः शरदिन्दुः, ईषदूनः शरदिन्दुरिति **शरदिन्दुकल्पम्** निर्मलकान्तितया शारदचन्द्रोपमम्, **इदम्** स्वकीयम्, **आननम्** [आनयति जीवयतीत्याननम्] मद्धृदयसन्तर्पणं मुखम्, **उन्नामय** उन्नतं कुरु । **व्यसनदग्धम्** व्यसनैः स्वजनवियोगदुःखैः, **दग्धम्** म्लानम्, **इदम्**, **शरीरम्** मम देहम्, **प्रह्लादय** सुखय । भ्रातृवात्सल्यं प्राधान्येन व्यज्यते । तत्र कनिष्ठो भरत आलम्बनम् । चिरदर्शनाद्युद्दीपनम् । आलिङ्गनादिविधिरनुभावः । हर्षस्मृत्यादयो व्यभिचारिणः । प्रथमे तृतीये च पादे आर्थ्युपमा । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥१६॥

"**गत्वे**"ति—यः, **पूर्वम्** पूर्वस्मिन् काले, **सासुराणाम्** असुरसहितानाम्, **सुराणाम्** देवानाम्, **विमर्दे युद्धे**, देवासुराणां परस्परसंग्राम इत्यर्थः, **अभिसरिसमये** अभिसरिः अभिसरणं देवतानां साहाय्यार्थमभियानम्, तत्समये, **स्वसैन्यैः** स्वसेनाभिः सह [सहार्थयोगे तृतीया], **समानैः** देवविमानसदृशैः, **विमानैः** व्योमयानैः [करणैः],

---

भरत—मैं आपका बहुत अनुगृहीत हुआ ।
सुमन्त्र—[आकर] जय हो आयुष्मान् की ।
राम—हा तात !

—जो महाराज पहले देवासुर-संग्रामों में देवताओं की सहायता के लिए प्रयाण करते समय, अपनी सेनाओं के साथ देवताओं के विमानों-जैसे आकाशयानों में बैठ स्वर्गलोक जा (असुरों से घमासान युद्ध में वीरता दिखाते हुए) 'वे रहे महाराज दशरथ, वे रहे महाराज दशरथ' इस प्रकार बहुत बहुत लोकविख्यात थे; वे ऐश्वर्यशाली महाराज शरीर त्याग कर, प्रीति के पात्र आप-जैसे सस्नेही के भी विना, स्वर्ग में निवास करते हुए इस समय अपने पितर राजाओं के साथ क्या आमोद-प्रमोद कर पाते होंगे ? ॥१७॥

सुमन्त्रः—[सशोकम्]

नरपतिनिधनं भवत्प्रवासं भरतविषादमनाथतां कुलस्य ।
बहुविधमनुभूय दुष्प्रसह्यं गुण इव बह्वपराद्धमायुषा मे ॥१८॥

खम् आकाशम्, **गत्वा** उत्पत्य, स्थितः सन्, **सः सः इति** महारथिनामग्रेसरः प्रतिपक्षविद्रावणात्रिदशानां सुहृद् महाराजो दशरथः स वर्तते स वर्तत इत्येवम्, **बहुशः** अनेकशः, **विख्यातः** विनिर्दिष्टः, अभवत्, **सः श्रीमान्** प्रशस्तैश्वर्यः [प्राशस्त्ये मतुप्], **नरेन्द्रः** महाराजदशरथः, **साम्प्रतम्**, **त्यक्तदेहः** त्यक्तो देहः स्थूलं भौतिकशरीरम्, येन तादृशः, **दयितम्** प्रियम्, **स्नेहवन्तम्** स्वविषयानुरागवन्तम्, **अपि**, **भवन्तम्**, **विना**, **स्वर्गस्थः** सन्, **पितृभिः** परेतैः, **स्वैः** स्वपूर्वजैः, **नरेन्द्रैः** दिलीपादिभिर्नृपतिभिः, सह, **रमयति किम्** ? आत्मानमिति शेषः ।

पुरा किल देवानामसुरैः सह सङ्ग्रामः प्रवृत्तः । तत्रेन्द्रेण स्वसाहाय्यं प्रार्थितो महाराजदशरथोऽनेनैव स्थूलदेहेन विमानमधिरुह्यासुरानभिषेणयितुममरपुरं जगाम । किञ्च तदानीं सङ्ग्रामेऽभ्यमित्रीणमिमं द्रष्टुमुत्कण्ठिता देवाः 'स वर्तते रथिनां धुरन्धरो महाराजो दशरथ' इत्यन्योन्यमङ्गुलिसङ्केतेन विनिर्दिदिशुरिति पुरातनं वृत्तं प्रथमार्धे निर्दिष्टम् । द्वितीयार्धस्य त्वयमभिप्रायः—य एवं पुरा स्थूलदेहेनैव स्वामिभक्ते त्वयि निरतिशयस्नेहतया त्वया साकमेव स्वर्गं प्रति प्रातिष्ठत, स इदानीं त्वां स्थूलदेहं च विनैव स्वर्गमुपगतः तत्रस्थैः स्वपूर्वजैर्दिलीपादिभिर्नरेन्द्रै रमते किम् ? महाराजो मृतः किमिति भावः । समानानामपि विमानत्वमिति विरोधः । स च व्यङ्ग्यः । स्रग्धरा छन्दः । 'म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्" इति तल्लक्षणम् ॥१७॥

"**नरपती**"ति—**नरपतिनिधनम्** नरपते राज्ञः, निधनम् मरणम्, **भवत्प्रवासम्** भवतां त्रयाणाम् प्रवासम् अयोध्यां परित्यज्य वनवासम्, **भरतविषादम्** भरतस्य विषादम् पितृनिधनभवत्प्रवासादिनिमित्तं

सुमन्त्र—[शोक के साथ]

—**महाराज की मृत्यु, आपका वनवास, भरत का विषाद, कुल की अनाथता-जैसे नाना प्रकार के अति असह्य उलट-फेर भोग कर मेरी इस हत आयु ने (चिरकाल के भोगे हुए विविध प्रकार के आमोद-प्रमोद रूप) गुणों के साथ घोर अपराध किया ॥१८॥**

सीता—रोदन्तं अय्यउत्तं पुणो वि रोदावीअदि तादो ।
रुदन्तमार्यपुत्रं पुनरपि रोदयति तातः ।

रामः—मैथिलि ! एष पर्यवस्थापयाम्यात्मानम् । वत्स ! लक्ष्मण ! आपस्तावत् ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः ।

दुःखम्, **कुलस्य** इक्ष्वाकुवंशस्य, **अनाथताम्** अस्वामिकत्वम् [राज्ञो निधनाद्, तव च वनप्रवासाद्, भरतस्य च राज्यास्वीकारादिति भावः], इत्येवम्, **बहुविधम्** अनेकप्रकारम्, **दुष्प्रसह्यम्** दुःखेन सोढुं शक्यं क्लेशजातम्, **अनुभूय** स्थितस्य अनुभूतवत इत्यर्थः, **मे** मम, **आयुषा** जीवनकालेन, **गुणे** दीर्घत्वरूपे गुणे, **बहु** अत्यधिकम्, **अपराद्धमिव** अपराधः कृत इव । यद्यहं दीर्घजीवी नाभविष्यं न तर्हि मम स्वस्वामि-निधनादिशोकानुभवसमयः समुपास्थास्यत । तथाचेदानीं मम शोकानुभवे ममायुषो दीर्घत्वमेवापराध्यति, नान्यत् किमपीति भावः । गणपति-शास्त्रिणस्तु—गुणे चिरानुभूतनानाप्रकारप्रमोदरूपे, बहु अपराद्धमिव अनल्प उपघातः कृत एवेत्यर्थ इत्येवं व्याख्यातवन्तः । गुणेऽपराधत्वोत्प्रेक्षणाद् उत्प्रेक्षा । दीर्घजीवित्वस्य गुणस्यानेकदुःखानुभवहेतुतया दोषत्वकल्पनाद् लेशालङ्कारः । तदुक्तं कुवलयानन्दे—'लेशः स्याद् दोषगुणयोर्गुणदोषत्वकल्पनम्' इति । नरपतिनिधनादीनां दुःखदातृत्वरूपदोषेण दीर्घजीवित्वस्य तद्दुःखानुभवहेतुतया दोषवर्णनाद् उल्लासश्च । तदुक्तं तत्रैव—'एकस्य गुणदोषाभ्यामुल्लासोऽन्यस्य तौ यदि' । अत्र नरपतिनिधनस्य भवत्प्रवास-हेतुकत्वात् तदनन्तरं कीर्तनमुचितमासीत् । पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥१८॥

मैथिलीति—**पर्यवस्थापयामि** प्रकृतिस्थं करोमि । शोकं निगृह्णामीति तात्पर्यम् । **आपस्तावदि**त्यपां याचनमश्रुक्लिन्नमुखक्षालनार्थम् ।

सीता—रोते हुए आर्यपुत्र को तात और भी रुला रहे हैं ।

राम—मैथिली ! यह लो, मैं अपने आपको सम्हाले लेता हूँ । वत्स लक्ष्मण ! जल ले आओ ।

लक्ष्मण—जो आर्य की आज्ञा ।

भरतः—आर्य ! न खलु न्याय्यम् । क्रमेण शुश्रूषयिष्ये । अहमेव यास्यामि । [कलशं गृहीत्वा निष्क्रम्य प्रविश्य] इमा आपः ।

रामः—[आचम्य] मैथिलि ! विशीर्यते खलु लक्ष्मणस्य व्यापारः ।

सीता—अय्यउत्त ! णं एदिणा पि सुस्सूसइदव्वो ।

आर्यपुत्र ! नन्वेतेनापि शुश्रूषयितव्यः ।

रामः—सुष्ठु खल्विह लक्ष्मणः शुश्रूषयतु । तत्रस्थो मां भरतः शुश्रूषयतु ।

भरतः—प्रसीदत्वार्यः ।

आर्येति—न्याय्यम् उचितम् । कनिष्ठे मयि विद्यमाने लक्ष्मणस्य मज्ज्येष्ठस्य जलानयनोद्योगोऽनुचित इति भावः । क्रमेण कनिष्ठत्वानुक्रमेण । शुश्रूषयिष्ये शुश्रूषां करिष्ये । [शुश्रूषाशब्दात् तत्करोतीति णिच्] कनिष्ठ एव ज्येष्ठं शुश्रूषत इत्येव शिष्टक्रमः । अहं च कनिष्ठ इति मयैव भवच्छुश्रूषा विधेयेति भावः । यास्यामीत्यस्य जलमानेतुमिति शेषः । मैथिलीति—विशीर्यते विहन्यते । व्यापारः मत्परिचरणरूपोद्योगः । आर्यपुत्रेति—लक्ष्मण इवायं भरतोऽपि ते कनिष्ठः, अतोऽनेनापि त्वं शुश्रूषणीय एव । तथा चास्याप्यवसरो दातव्य एवेति सीताया हृदयम् । सुष्ठु खल्विति—उभयोः शुश्रूषणेऽधिकारः समान इति साधु त्वयोपन्यस्तम् । नचैकं कर्म द्वाभ्यां युगपत् कर्तुं शक्यम् इति लक्ष्मणो मामिह साहाय्यप्रदानेन शुश्रूषताम्, भरतस्तु अयोध्यायां स्थित्वा राजकार्यपरिचालनेन मां परिचरतु इति भावः । तत्रस्थः अयोध्यास्थः सन् । प्रसीदत्विति—अत्रैव वने भवच्चरणपरिचर्यामनुज्ञातुं मयि सानुग्रहो भवत्वार्य इति भावः ।

भरत—आर्य ! यह न्याय-युक्त नहीं । उत्पत्तिक्रमानुसार (छोटा होने की वज़ह से) मैं आपकी शुश्रूषा करूँगा । मैं ही जल लेने जाऊँगा । [कलश उठाकर, बाहर जाकर और जल लिये आकर] यह लीजिए जल !

राम—[आचमन करके] मैथिली ! लक्ष्मण का काम-धन्धा विच्छिन्न हुआ जा रहा है ।

सीता—आर्यपुत्र ! इनने भी तो आपकी शुश्रूषा करनी है ।

राम—अच्छा तो यहाँ लक्ष्मण शुश्रूषा करे । वहाँ भरत शुश्रूषा करे ।

भरत—मुझ पर दया करो आर्य !

इह स्थास्यामि देहेन तत्र स्थास्यामि कर्मणा ।
नाम्नैव भवतो राज्यं कृतरक्षं भविष्यति ॥१९॥

रामः—वत्स ! कैकेयीमात ! मा मैवम् ।

पितुर्नियोगादहमागतो वनं
न वत्स ! दर्पान्न भयान्न विभ्रमात् ।

ननु त्वयीह स्थिते को राजकार्यं करिष्यति, अराजकं च राज्यं क्षिप्रं विनश्यतीत्यत आह—"**इहे**"ति । इह अरण्ये, **देहेन** शरीरेण, **स्थास्यामि** त्वत्परिचर्यार्थं निवत्स्यामि, **तत्र** अयोध्यायां तु, **कर्मणा** शासनकार्यरूपेण, **स्थास्यामि**, इहैव वर्तमानस्त्वदाज्ञया शासनकार्यं करिष्यामीति भावः । **भवतः**, **नाम्नैव** नाममात्रेण 'रामोऽत्र शासकः' इति त्वन्नामसम्बन्धमात्रेणैवेति भावः, **राज्यम्**, **कृतरक्षम्** कृता रक्षा यस्य तादृशम्, **भविष्यति** । भवत ईदृशप्रभावो यद्भवन्नामश्रवणमात्रेणैव न स्तेनादयः प्रजाः पीडयेयुः, सर्वेऽपि जना यथायथं राजनियमान् अनुवर्तेरन्, शान्ताश्च तिष्ठेयुरिति भावः ॥१९॥

वत्सेति—**कैकेयीमात** कैकेय्याः श्लाघनीयसूनो ! [बहुव्रीहिसमासे मातृशब्दस्य मातजादेशः । 'कैकेयीमातः' इति सविसर्गपाठस्त्वपपाठ इति पुरस्तात् प्रतिपादितम्] । **मा मैवम्** एवं मा वादीरिति भावः ।

"**पितुरि**"ति—**वत्स !** हे प्रियभ्रातः ! **अहम्**, **पितुः नियोगाद्** अनुशासनाद्, **वनम्** अरण्यम्, **आगतः** अस्मि । **दर्पाद्** अभिमानाद्, ज्येष्ठोऽहं कनिष्ठाभिषेचनेन पित्रा कथमपमानित इत्यवलेपादिति भावः । **न** आगत इति शेषः । **भयात्** राजदण्डभीतेः, **न** आगतः । **विभ्रमाद्** राज्याप्राप्तिजनिताद् व्यामोहाद् वा, **न** आगतः । **नः** अस्माकम्, **कुलम्** वंशः, **सत्यधनम्** सत्यमेव धनं यस्य तादृशम् सत्यसन्धम्, अस्ति । अतः, **ते** तुभ्यम्, **ब्रवीमि** बोधयामि—**भवान्** सत्यसन्धकुलप्रसूतो भरतः, **नीचपथे**

—देह से मैं यहीं (आपकी शुश्रूषा में) रहूँगा, वहाँ केवल मैं (राज्य-प्रबन्ध के) कार्य से रहूँगा (मेरा देह यहाँ रहेगा और राज्य-प्रबन्ध का कार्य वहाँ) । आपके नाममात्र ही से रामराज्य सुरक्षित रहा करेगा ॥१९॥

राम—वत्स ! कैकेयीनन्दन ! नहीं, नहीं, ऐसा मत कहो ।

—मैं पिता जी की आज्ञा से वन को आया हूँ । वत्स ! मैं न तो अभिमान से यहाँ चला आया, न भय से और न चित्त-विभ्रम से ही । हमारा

कुलं च नः सत्यधनं ब्रवीमि ते
कथं भवान् नीचपथे प्रवर्तते ॥२०॥

सुमन्त्रः—अथेदानीमभिषेकोदकं क्व तिष्ठतु ।
रामः—यत्र मे मात्राभिहितं, तत्रैव तावत् तिष्ठतु ।
भरतः—प्रसीदत्वार्यः । आर्य ! अलमिदानीं व्रणे प्रहर्तुम् ।

नीचे पथि ['ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे' इत्यप् समासान्तः] राज्यपरित्यागेन पित्राज्ञापालनवैमुख्यरूपे कुमार्गे, **कथम्** केन हेतुना, **प्रवर्तते** विचरति ? राज्ये त्वदभिषेचनं मम च वनप्रवासः पित्राज्ञप्तम् । तदहं पित्राज्ञापालन-लक्षणधर्मपरवश एव वनमायातोऽस्मि । यद्यहमवलेपात् त्वदभिषेचनेन रुष्टः, अनुचिताया अपि राजाज्ञाया अस्वीकारे राजदण्डभीत्या वा, राज्याप्राप्तिजनित-बुद्धिव्यामोहाद् वा वनमागच्छेयम्, तदा कनिष्ठस्य भ्रातृनिष्ठस्य तव मदर्थं राज्यपरित्यागः कथञ्चिद् युज्येतापि । परं वत्स ! नैतदस्ति । तत्त्वयाऽपि मामनुसरता राज्यं स्वीकृत्य पित्राज्ञा पालनीयैव । नात्रोचितमनुचितं वेति विचारणीयम् । पितुर्वचनमपालयित्वा सत्यसन्धं रघुकुलं कलङ्कपङ्किलं न करणीयम् । पित्राज्ञाया अननुसरणमुत्पथगामिनां मार्गो न सतामिति रामस्य हृदयम् । राज्यं स्वीकृत्य पित्राज्ञा त्वया पालनीयेत्यर्थे प्रस्तुते तदन्यस्याप्रस्तुतस्यो-पन्यासाद् अप्रस्तुतप्रशंसा । अत्र वत्सेति सम्बोधनेनैव युष्मदर्थस्य वचन-कर्मतावगतेः 'ते' इति पदमनुपयुक्तार्थं सदप्रतार्योपदेश्यत्वलक्षणेऽ-र्थान्तरे सङ्क्रान्तम् । एवं ब्रवीमीत्यप्युपदेशलक्षणेऽर्थान्तरे सङ्क्रान्तम् । तेन च 'त्वया हितसाधिका मदुक्तिरवधेयैवे'ति व्यज्यते । वंशस्थं वृत्तम् ॥२०॥

अथेदानीमिति—राज्याभिषेकः कस्य क्रियताम्, भवतो भरतस्य वेति भावः । **यत्रेति**—**मात्रा** कैकेय्या । राज्याभिषेको भरतस्य क्रियतामिति भावः । **प्रसीदत्विति**—**अलम्** अयुक्तम् । दुःखितस्य पुनर्दुःखाकरणं न युज्यते इति भावः ।

कुल सत्य का धनी होता आया है, यह मैं तुम्हें कहे देता हूँ। तब फिर तुम (पितृप्रदत्त राज्य-परित्याग रूप) नीच पथ पर कैसे प्रवृत्त हुआ चाहते हो ? ॥२०॥

सुमन्त्र—तो बताइए, अब अभिषेक का जल किस पर छोड़ा जाय ?
राम—जिस पर मेरी माता ने कहा है, उसी पर छोड़िए ।
भरत—आर्य ! मुझ पर दया करो । आर्य ! अब घाव पर चोट न लगाओ (घाव पर नमक न छिड़को) ।

अपि सुगुण ! ममापि त्वत्प्रसूतिः प्रसूतिः
स खलु निभृतधीमांस्ते पिता मे पिता च ।
सुपुरुष ! पुरुषाणां मातृदोषो न दोषो
वरद ! भरतमार्तं पश्य तावद् यथावत् ॥२१॥

सीता—अय्यउत्त ! अदिकरुणं मन्तेअइ भरदो । किं दाणिं अय्यउत्तेण चिन्तीअदि ।

"अपी"ति—**सुगुण** ! हे दयादाक्षिण्यादिसद्गुणशालिन् ! ज्येष्ठ-भ्रातः ! **अपि** यदीत्यर्थः, स चाग्रेषु त्रिष्वपि वाक्येषु सम्बध्यते, **त्वत्प्रसूतिः** [प्रसूयतेऽनयेति प्रसूतिः, उत्पत्तिस्थानं कुलमिति यावत्] त्वत्कुलमेव, **ममापि** मम भरतस्यापि, **प्रसूतिः** कुलमस्ति । यदि **निभृतधीमान्** निभृतः विनययुक्तः, **धीमान्** प्रशस्तबुद्धिः, **सः** समस्त-लोकप्रसिद्धः, **ते** तव, **पिता च, मे, पिता** अस्ति । **सुपुरुष** ! हे सज्जन ! यदि **मातृदोषः** मातुर्दोषः अपराधः, **पुरुषाणाम्, दोषः** दुष्टतापादकः, **न** भवति [यदि मातुरपराधेन तत्सुतोऽपराधी न मन्यत इति भावः], तर्हि **वरद !** अभीष्टप्रद ! [अनेन मम त्वत्कनिष्ठस्य त्वां शरणं गतस्य प्रार्थना त्वयावश्यस्वीकरणीयेति व्यज्यते] **आर्तम्** अतिदुःखितम्, **भरतम्, यथावत्** यथोचितमनपराधिनम्, **पश्य** बुध्यस्व, **तावत्** ।

तव मम च वंशः पिता च समानावेव । न च तौ कलङ्कमलिनौ । केवलं मातावयोर्विभिद्यते मम मातुराग्रहेणैव पिता मदभिषेचनं तव वनप्रवासं चानुजानाति स्म । न चात्र मनागपि मम सम्मतिर्विद्यते । मदनुपस्थितावेवैतत् सर्वमभूत् । न च मातृदोषेण पुरुषा दुष्यन्ति । एतेन मातुरपराधेन न खलु नास्मि सन्तप्तः । तथा च हे भ्रातः ! मामनपराधिन-मेव विज्ञाय त्वया स्वराज्यं स्वीकरणीयमेवेति भावः ॥२१॥

—हे सुन्दर गुणों वाले ! यदि मेरा जन्म भी उसी कुल में हुआ है, जिसमें कि तुम्हारा; यदि मेरे भी वे ही श्रेष्ठ बुद्धि वाले प्रतापी पिता हैं, जो कि तुम्हारे; और यदि हे श्रेष्ठ पुरुष ! पुरुषों के लिए माता का किया हुआ दोष, दोष नहीं गिना जाता तो ऐ अभिलषित वरों को देने वाले ! व्यथित भरत को दयादृष्टि से देखो, उपेक्षा न करो ॥१२॥

सीता—आर्यपुत्र ! भरत का वार्तालाप बहुत करुणापूर्ण है । आर्यपुत्र ! इस समय क्या सोच रहे हैं ?

१ यदि.

आर्यपुत्र ! अतिकरुणं मन्त्रयते भरतः। किमिदानीमार्यपुत्रेण चिन्त्यते।

रामः—मैथिलि !

तं चिन्तयामि नृपतिं सुरलोकयातं
येनायमात्मजविशिष्टगुणो न दृष्टः।
ईदृग्विधं गुणनिधिं समवाप्य लोके
धिग् भो! विधेर्यदि बलं पुरुषोत्तमेषु ॥२२॥

आर्यपुत्रेति—**अतिकरुणम्** हृदयद्रावकम्। **मन्त्रयते** भाषते।

"**तमि**"ति—**सुरलोकयातम्** सुराणां देवानाम्, लोके स्वर्गे, यातम् गतम्, मृतमिति भावः, **तम्**, **नृपतिम्** राजानम्, महाराजदशरथम्, **चिन्तयामि** स्मरामि, **येन**, **अयम्** मत्पुरःस्थितः, **आत्मजविशिष्टगुणः** [आत्मजश्चासौ विशिष्टगुणश्चेति कर्मधारयः। पूर्वनिपातविधेरनित्यत्वाद् विशिष्टगुणेति विशेषणस्य न पूर्वनिपातः] विशिष्टा विलक्षणाः, गुणाः सौभ्रात्रादयो यस्य तादृशः, आत्मजः पुत्रो भरतः, **न दृष्टः** स्वर्गमनात् प्राङ् न दृष्टः [यदीममद्रक्ष्यद् महाराजो न तर्हीदं सर्वं करुणदृश्यमघटिष्यतेति भावः। गणपतिशास्त्रिणस्तु—'आत्मजेषु स्वपुत्रेषु चतुर्षु, मध्ये, विशिष्टगुणः, अयं भरतः, न दृष्टः विशिष्टगुणवत्त्वेन रूपेण न प्रत्यक्षितः' इति व्याख्यान्ति। एतस्यां व्याख्यायाम्—दशरथो भरतस्यैवंगुणविशिष्टत्वं न जानाति स्मेति प्रतीयते। परमिदं रामायणाद् विरुध्यते—'न कथञ्चिद् ऋते रामाद् भरतो राज्यमावसेत्। रामादपि हि तं मन्ये धर्मतो बलवत्तरम् ॥' इति दशरथोक्तेः। आत्मजस्य स्वपुत्रस्य भरतस्य, विशिष्टगुणः विशिष्टो विलक्षणो भ्रातृप्रेमान्यायाचरणपराङ्मुखतादिरूपः, न दृष्टः न लक्षितः, इति कालेमहोदयस्य व्याख्यानम्]। **लोके**, **ईदृग्विधम्** [ईदृशी विधा प्रकारो यस्येति विग्रहः] ईदृशम्, **गुणनिधिम्** गुणानाम् निर्व्याजभ्रातृप्रेमसदसद्विवेकादीनाम्, निधिम् आकरम्, पुत्रम्, **समवाप्य** अधिगत्य, स्थितेषु **पुरुषोत्तमेषु** श्रेष्ठपुरुषेषु, अपि,

---

राम—मैथिलि !

—मैं उन दिवंगत महाराज की सोच में मग्न हूँ, जो अपने इस अनुपम गुणों वाले पुत्ररत्न को न देख पाये। इस-जैसे गुणागार सु-पुत्र को पाकर, संसार में पुरुषश्रेष्ठ पिताओं पर भी काल का प्रबल झपट्टा हो पड़ता है तो दैव को धिक्कार है ॥२२॥

वत्स ! कैकेयीजात !

यत्सत्यं परितोषितोऽस्मि भवता निष्कल्मषात्मा भवां-
स्त्वद्वाक्यस्य वशानुगोऽस्मि भवतः ख्यातैर्गुणैर्निर्जितः ।
किन्त्वेतन्नृपतेर्वचस्तदनृतं कर्तुं न युक्तं त्वया
किञ्चोत्पाद्य भवादृशं भवतु ते मिथ्याभिधायी पिता ॥२३॥

यदि, विधेः दैवस्य, बलम् दुःखदात्री शक्तिः, फलत इति शेषः, तर्हि, भोः, धिग् अतिगर्हितमिदमिति भावः ।

अयं भावः—यस्मिन् समये भरताभिषेचनाय मम वनप्रवासाय च महाराजेनाज्ञप्तं तदानीं यदि भरतो भवेत् न तर्हि मम वनप्रवासो भवेत्, न च महाराजस्याकस्मिकमननुरूपं निधनं स्यात् । स हि औचित्यानौचित्यविचारचतुरो मध्यमामम्बां साधु प्रबोधयेत्, निदर्शयेच्च स परिणामदर्शी वर्त्तमानं सर्वैरनुभूयमानं दुरुदर्कम् । तथाच निर्व्याजभ्रातृवात्सल्यः सदसद्विवेकी भरतो नाम यस्य पुत्रः, स हि 'सन्ततिः पुण्यमाख्याति' इति न्यायेन पुण्यवानस्ति । तस्यापि चेद् विपत्तिरुपतिष्ठते, तर्हि हन्त पुण्यवत्स्वपि कर्मलाणं विगिदं गर्वदुर्विधं दैवम्, इति । वसन्ततिलका ॥२२॥

"**यत्सत्यमि**"ति—वत्स ! भरत ! **भवता, यत्सत्यम्** वस्तुतः, **परितोषितोऽस्मि** परमां प्रीतिं प्रापितोऽस्मि । **भवान् निष्कल्मषात्मा** निष्कल्मषः निष्पापः, आत्मा यस्य तादृशः निरपराधः अस्ति । अहम्, **ख्यातैः** प्रथितैः, **भवतः** तव, **गुणैः, निर्जितः** पराजितः सन्, **त्वद्वाक्यस्य** त्वदुक्तस्य, **वशानुगः** वश्यः सन् अनुगामी अस्मि [यथा वक्ष्यसि तथा करिष्यामीति भावः]। **किन्तु त्वया, नृपतेः** महाराजस्य, **एतद् वचः** 'भरतो राज्येऽभिषेचनीयः' एतदनुशासनम्, **अनृतम्** अयथार्थम्, **कर्तुम्, न युक्तम्** नोचितम् [पितृवचनसत्यापनं त्वां

वत्स ! कैकेयीनन्दन !

—तुमने मुझे सचमुच बहुत ही सन्तुष्ट किया । तुम्हारी अन्तरात्मा अतीव निर्मल है । तुम्हारे वचनों ने मुझे अपना वशवर्ती बना लिया । तुम्हारे जगद्-विख्यात गुणों ने मुझे जीत लिया । पर महाराज का यह वचन दिया हुआ है (कि भरत को राजगद्दी मिले) । इसे झूठा करना योग्य नहीं । तुम्हीं बताओ, तुम-जैसे धर्म-धुरन्धर पुत्र को उत्पन्न करके तुम्हारा पिता असत्यवादी बने ? ॥२३॥

भरतः—

यावद् भविष्यति भवन्नियमावसानं
तावद् भवेयमिह ते नृप ! पादमूले ।

रामः—

मैवं नृपः स्वसुकृतैरनुयातु सिद्धिं
मे शापितो न परिरक्षसि चेत् स्वराज्यम् ॥२४॥

राज्यमारोढुमनुरुन्ध इति भावः], **किञ्च भवद्विधम्** भवादृशं गुणनिधिं पुत्रम्, **उत्पाद्य, ते, पिता, मिथ्याभिधायी** [मिथ्या अभिधत्त इति विग्रहे 'सुप्यजातौ–' इति णिनिः, युगागमः] असत्यवचनः, **भवतु** किम् ? यदि भवादृशे गुणनिधौ पुत्रेऽपि पिता नात्मवचनं पालयितुं शक्तः, तर्हि किं गुणवत्पुत्रकामनया । दुर्यशो न जायेतेत्येव गुणवन्तः पुत्राः काम्यन्ते, यद्यगुण इव गुणवत्यपि दुर्यशस्तुल्यं तर्हि सुतरां तत्प्राप्त्यभिलाषो व्यर्थ इति भावः । शार्दूलविक्रीडितम् ॥२३॥

"यावदि"ति—**नृप** हे राजन् ! **यावद्** यदवधि, **भवन्नियमावसानम्** भवतः, नियमस्य चतुर्दशवर्षाणि यावद् वनवासरूपस्य व्रतस्य, अवसानम् समाप्तिः, **भविष्यति, तावत्** तदवधि, **इह** वने, **ते** तव, **पादमूले** चरणयोरन्तिके, चरणपरिचर्यायामिति भावः, **भवेयम्** स्थास्यामि [वनवासव्रतान्तं यावत् त्वां परिचरितुमिहैव वने स्थास्यामि, यतः पितुर्ज्येष्ठत्वाद् वस्तुतस्त्वमेव राजासि, त्वत्कनिष्ठेन मया त्वत्सेवानिरतेनैव भाव्यमिति भरतस्य हृदयम्]। एतदननुजानन् राम आह—**मैवमिति । मैवम्** एवं मा वादीः, **नृपः** महाराजो दशरथः, **स्वसुकृतैः** स्वपुण्यैः, **सिद्धिम्** उत्तमलोकप्राप्तिरूपं फलम्, **अनुयातु** प्राप्नोतु । [तव राज्यास्वीकारे पिता, मिथ्यावचनः स्यात्, तथा सति च न केवलं तस्योत्तमलोकप्राप्तिर्विहन्येत, प्रत्युत नरके वासः स्यात् । तदुक्तं रामायणे—'भवानपि तथेत्येव पितरं सत्यवादिनम् । कर्तुमर्हसि राजेन्द्र ! क्षिप्रमेवाभिसिञ्चनात् (?) ॥ ऋणान् मोचय राजानं मत्कृते भरत ! प्रभुम् । तस्मात् त्राहि नरश्रेष्ठ ! पितरं नरकात् प्रभो ॥'

भरत—जब तक आपके चौदह बरस के वनवास-रूप व्रत की अवधि समाप्त हो ले, राजन् ! तब तक मैं यहीं आपकी चरण-शुश्रूषा में रहूँगा।

राम—ऐसा हठ मत करो। पिता जी अपने किये पुण्यों से निर्विघ्न सद्गति के भोग भोगें । तुम्हें मेरी सौगन्ध ! यदि तुमने राज्य-भार न सँभाला ॥२४॥

भरतः—हन्त ! अनुत्तरमभिहितम् । भवतु समयतस्ते राज्यं परिपालयामि ।

रामः—वत्स ! कः समयः ।

भरतः—मम हस्ते निक्षिप्तं तव राज्यं चतुर्दशवर्षान्ते प्रतिग्रहीतुमिच्छामि ।

रामः—एवमस्तु ।

भरतः—आर्य ! श्रुतम् । आर्ये ! श्रुतम् । तात ! श्रुतम् ।

अतस्त्वया पितुर्हितमुद्दिश्यापि राज्यत्यागहठो न कार्य इति भावः ।] **चेत्** यदि, **स्वराज्यम्** पित्रा दत्तत्वात् स्वकीयं राज्यम्, **न परिरक्षसि** न पालयसि, तर्हि, **मे** मत्सम्बन्धेन ममासुभिरिति यावत्, **शापितः** असि [यदि त्वं मद्वचनाद् राज्यं न स्वीकरिष्यसि तर्हि मज्जीवितापहरणपापफलमवाप्स्यसीति भावः]। भावार्थोक्तिरीत्या नृपेति विशेष्यपदस्य साभिप्रायतया परिकराङ्कुरः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥२४॥

हन्तेति—**अनुत्तरम्** न उत्तरं प्रतिवचनं यस्य तादृशम् । राज्यस्वीकृतये यदि मे ज्येष्ठः स्वजीवितेन शपति तर्हि राज्यस्वीकारादन्यदत्र किमप्युत्तरमुचितमिति भावः । **भवतु** अस्तु भवदुक्तम्, **समयतः** संविदा, **परिपालयामि** परिपालयिष्यामि । समयमाह भरतः—**ममेति** । **निक्षिप्तम्** न्यासीकृतम् । **प्रतिग्रहीतुम्** प्रतिग्राहयितुम्, अन्तर्भावितण्यर्थोऽत्र ग्रहिः, त्वयेति प्रयोज्यकर्ताऽध्याहर्तव्यः । राज्यं तवैवास्ति, अहं च त्वदर्पितन्यासरूपेण तत्परिपालयिष्यामि । यदा च न्यासावधिः चतुर्दशवर्षात्मकः समाप्तिमियात्, तदेदं तव राज्यं त्वया प्रतिग्रहीतव्यं भविष्यति—इत्येष समय इति भावः । रामः 'त्वद्वाक्यस्य वशानुगोऽस्मि' इति स्वोक्त्यनुसारेण स्वीकरोति—**एवमिति** । भरतो रामस्वीकृतौ लक्ष्मणादीन् साक्षीकरोति—**आर्येति** लक्ष्मणं प्रति सम्बोधनम् । **आर्ये** इति सीतां प्रति । **तातेति** सुमन्त्रं प्रति ।

भरत—अफ़सोस ! आपके कहे का कुछ उत्तर नहीं । अच्छा, एक शर्त पर आपका राज्य सँभालूँगा ।

राम—वत्स ! कौन-सी शर्त ?

भरत—मैं चाहता हूँ कि मेरे हाथ धरोहर रक्खा हुआ अपना राज्य चौदह बरस बीतने पर आप स्वयं ले लें ।

राम—ऐसा ही सही ।

भरत—आर्य ! सुना ? वैदेही ! सुना ? तात ! सुना ?

सर्वे—वयमपि श्रोतारः।
भरतः—आर्य! अन्य(द?म)पि वरं हर्तुमिच्छामि।
रामः—वत्स! किमिच्छसि। किमहं ददामि। किमहमनुष्ठास्यामि।
भरतः—

पादोपभुक्ते तव पादुके मे
एते प्रयच्छ प्रणताय मूर्ध्ना।
यावद् भवानेष्यति कार्यसिद्धिं
तावद् भविष्याम्यनयोर्विधेयः॥२५॥

'चतुर्दशवर्षान्तेऽहं स्वराज्यं भरतात् प्रतिग्रहीष्यामि' इति रामोक्तौ यूयं सर्वे साक्षिण इति भावः।

सर्वे इति—**वयम्** लक्ष्मणादयः। **श्रोतारः** साक्षिण इति भावः। **आर्येति**—**हर्तुम्** प्राप्तुम्।

"पादोपभुक्ते" इति—**एते**, **तव** भवतः, **पादोपभुक्ते** पादाभ्याम्, उपभुक्ते उपयुक्ते, **पादुके** [कर्मणि द्वितीयाद्विवचनम्], **मूर्ध्ना** शिरसा, **प्रणताय** विनताय, **मे** मह्यं भरताय, **प्रयच्छ** देहि। **यावद्** यावन्तं कालं यावत्, **भवान्**, **कार्यसिद्धिम्** कार्यस्य चतुर्दशवर्षाणि यावद् वनवासरूपस्य कार्यस्य, सिद्धिम् अवसानम्, **एष्यति** गमिष्यति, **तावत्** तावन्तं कालं यावत्, अहम्, **अनयोः** तव पादुकयोः, **विधेयः** आज्ञानुवर्ती, **भविष्यामि**। अहं वनात् त्वन्निवर्तनावधि त्वत्प्रतिनिधिभूते इमे त्वत्पादुके राजसिंहासने प्रतिष्ठाप्य तदाज्ञयेव राज्यशासनं कर्तुमिच्छामि। अहं भवचरणयोः प्रणतोऽस्मि। कृपयेमे पादुके मह्यं देहीति भावः। तदुक्तं रामायणे—'चतुर्दश हि वर्षाणि जटाचीरधरो ह्यहम्। फलमूलाशनो वीर भवेयं रघुनन्दन॥ तव पादुकयोर्न्यस्य राज्यतन्त्रं परंतप!॥' इति। इन्द्रवज्रा छन्दः॥२५॥

सब—हम सब सुनने वाले साक्षी हैं।
भरत—आर्य! एक वरदान और भी लिया चाहता हूँ।
राम—वत्स! क्या चाहते हो? मैं तुम्हें क्या दूँ? मुझे तुम्हारे लिए क्या करना होगा?
भरत—अपने पैरों में पहनी हुई ये दोनों चरण-पादुकाएँ मुझ नत-मस्तक को दे दीजिए। आप जब तक कार्य-सिद्धि (चौदह बरस के वनवास की अवधि समाप्त) करके आयँगे, मैं तब तक इन्हीं के अधीनस्थ रहूँगा॥२५॥

रामः—[स्वगतम्] हन्त भोः !

सुचिरेणापि कालेन यशः किञ्चिन्मयार्जितम् ।
अचिरेणैव कालेन भरतेनाद्य सञ्चितम् ॥२६॥

सीता—अय्यउत्त ! णं दीयदि खु पुढमजाअणं भरदस्स ।
आर्यपुत्र ! ननु दीयते खलु प्रथमयाचनं भरताय ।

रामः—तथास्तु । वत्स ! गृह्यताम् ।

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि । [गृहीत्वा] आर्य ! अत्राभिषेकोदकमावर्जयितुमिच्छामि ।

स्वगतमिति—स्वगतम् अप्रकाशम् । **हन्तेति** हर्षसूचकमव्ययम् ।

"सुचिरेणे"ति—मया रामेण, **सुचिरेण अपि कालेन, किञ्चित्** स्वल्पमेव, **यशः** कीर्तिः, **अर्जितम्** उत्पादितम्, **भरतेन** तु, **अद्य अचिरेणैव कालेन** अतिशीघ्रम्, विपुलं यशः, **सञ्चितम्** समुपार्ज्य राशीकृतमित्यर्थः । मया तु वनवासेन पित्राज्ञापालनमात्रजन्याल्पीयस्येव कीर्तिरासादिता, सापि चतुर्दशवर्षात्मको महान् कालो यदि मया वने नेष्यते तदैवाखण्डिता भविष्यति, न तु ततः प्राक्, प्रत्युत नियतावधेः प्राग् वनवासत्यागे महती मेऽपकीर्तिर्जनिष्यते । भरतस्तु पित्रा दत्तमपि राज्यं न्यायानुरोधेन निर्व्याजज्येष्ठभक्त्या च मन्न्यासरूपेणैव शासितुकामोऽचिरेणैव विपुलं यशः सञ्चितवान् इति यत् सत्यं धन्यो भरत इति भावः । व्यतिरेकालङ्कारः ॥२६॥

आर्यपुत्रेति—प्रथमयाचनम् इतः प्राग् भरतेन न किञ्चिदप्यस्मत्सकाशाद् याचितमितीदं तस्य प्राथमिकं याचनम् । **अनुगृहीतोऽस्मीति—अत्र** भवत्पादुकयोः । **आवर्जयितुम्** क्षेप्तुम् । तदुक्तं रामायणे—'ततस्तु भरतः श्रीमानभिषिच्यार्यपादुके । तदधीनस्तदा राज्यं कारयामास सर्वदा ॥' इति ।

राम—[स्वगत] **अहा !**

—मैंने चिरकाल में भी कुछ ही यश उपार्जन किया । भरत ने तो स्वल्प समय में ही आज अनन्त यश बटोर लिया है ॥२६॥

सीता—आर्यपुत्र ! देते हो भरत को उसकी प्रथम-प्रार्थित वस्तु ?

राम—वैसा ही हो । वत्स ! लो, यह रही पादुकाएँ ।

भरत—आपका बहुत अनुगृहीत हुआ । [पादुकाओं को लेकर] **आर्य ! इनमें अभिषेक-जल छोड़ना चाहता हूँ ।**

रामः—तात ! यदिष्टं भरतस्य, तत् सर्वं क्रियताम् ।

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् ।

भरतः—[आत्मगतम्] हन्त भोः,

श्रद्धेयः स्वजनस्य पौररुचितो लोकस्य दृष्टिक्षमः
स्वर्गस्थस्य नराधिपस्य दयितः शीलान्वितोऽहं सुतः ।
भ्रातॄणां गुणशालिनां बहुमतः कीर्तेर्महद् भाजनं
संवादेषु कथाश्रयो गुणवतां लब्धप्रियाणां प्रियः ॥२७॥

"**श्रद्धेय**" इति—रामानुग्रहेण स्वाभीष्टसिद्ध्यात्मानं धन्यं मन्यमानः स्वमनस्याह भरतः—इदानीम्, अहम्, **स्वजनस्य** आत्मीयजनस्य बन्धुवर्गस्य, **श्रद्धेयः** श्रद्धाभाजनम् आदरणीयः ['श्रद्धादरे च काङ्क्षायाम्' इति मेदिनी], जातोऽस्मीति सर्वत्र शेषः कल्पनीयः; **पौररुचितः** पौरेभ्यो रुचितः ['रुच्यर्थानां प्रीयमाणः' इति चतुर्थ्यन्तेन चतुर्थीति योगविभागात् समासः] पुरवासिनां प्रीतिकरः; **लोकस्य, दृष्टिक्षमः** दर्शनयोग्यः [लोकस्येति दर्शनक्रियायाः कर्मणि कर्तरि च श्लिष्टा षष्ठी, लोकोऽपि मां प्रीत्या पश्येत्, अहमपि च तं स्वशिर उन्नमय्य द्रष्टुं शक्नुयामिति भावः]; **स्वर्गस्थस्य, नराधिपस्य** राज्ञो दशरथस्य, **दयितः** प्रियः, **शीलान्वितः** शीलेन सद्वृत्तेन, अन्वितः युक्तः, **सुतः** पुत्रः; **गुणशालिनाम्** गुणैः शालन्त इति गुणशालिनः, तेषाम्, दयादाक्षिण्यादिगुण-

---

राम—तात ! जो-कुछ भरत चाहता है, वह सब पूरा कर दो ।

सुमन्त्र—जो आज्ञा आयुष्मान् की ।

भरत—[स्वगत] अहा !

—अब हो पाया हूँ मैं सगे-सम्बन्धियों का श्रद्धाभाजन, नगर के नर-नारियों का मनभावना, संसार को अपना मुँह दिखाने योग्य, दिवंगत महाराज का चरित्रशाली प्यारा पुत्र, अपने उच्च गुणों से लब्ध-प्रतिष्ठ भाइयों में बहुमान्य, सुकीर्ति (सुयश) का महान् भाजन, गुणवानों के परस्पर वार्तालापों में चर्चा का विषय तथा सफलमनोरथ हुए जनों का प्रीतिभाजन ॥२७॥

रामः—वत्स ! कैकेयीमातः ! राज्यं नाम मुहूर्तमपि नोपेक्षणीयम् । तस्मादद्यैव विजयाय प्रतिनिवर्ततां कुमारः ।

सीता—हं, अज्ज एव्व गमिस्सदि कुमारो भरदो ।

हम्, अद्यैव गमिष्यति कुमारो भरतः ।

युक्तानाम्, भ्रातॄणाम् रामलक्ष्मणादीनाम्, **बहुमतः** [बहु यथा स्यात् तथा मतः, भूतपूर्ववत् समासः । मत इत्यत्र मन्यतेर्वर्तमाने क्तः । भ्रातॄणामिति 'क्तस्य च वर्तमाने' इत्यनेन षष्ठी] अतिशयेन माननीयः; **कीर्तेः** यशसः, **महद्** उत्कृष्टम्, **भाजनम्** पात्रम्; **गुणवताम्** गुणशालिनां विदुषाम्, **संवादेषु** परस्परालापेषु, **कथाश्रयः** चर्चाविषयः; **लब्धप्रियाणाम्** लब्धं प्रियं स्वात्मसाक्षात्काररूपमिष्टं यैस्तादृशा आप्तकामा वीतरागाः, तेषाम्, **प्रियः** प्रेमपात्रम् [अथवा लब्धं प्रियं रामस्य राज्यप्राप्तिरूपं यैस्तेषां सुमन्त्रादीनां प्रियः] । इदानीं मम राज्यास्वीकरणेन सिंहासने रामपादुकयोरभिषेचनेन च 'नायं मातरमनुप्रविश्य रामविवासनहेतुरस्तीति' निश्चित्य बन्धुजनो मामाद्रियेत, नगरवासिनो मयि प्रीतिं दर्शयेयुः, लोका मां घृणादृष्ट्या न पश्येयुः, अहं च तान् निरपराधतया उन्नतशिरस्को द्रष्टुं शक्नुयाम्, स्वज्येष्ठं प्रति मम निर्व्याजमनुरागं सच्छीलतां च विलोक्य स्वर्गस्थो महाराजोऽपि प्रीयेत, गुणवन्तो मे भ्रातरोऽपि मां बहु मन्येरन्, कीर्तिरपि मे सर्वत्र प्रथेत, सज्जनाः कथाप्रसङ्गेषु सौभ्रात्रादर्शतया मामुदाहरेयुः, आप्तकामा वीतरागा अपि मयि स्निह्येयुः, अथवा रामराज्यैषिणः सुमन्त्रादयोऽपि मम राज्यत्यागं दृष्ट्वा मय्यनुरज्येयुः—इति भावः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥२७॥

वत्सेति—**विजयाय** उत्कर्षलाभाय, राजकार्यनिर्वाहाय वा ।

सीतोक्तौ **अद्यैवेति**—प्रश्नकाकुरियम् । अद्यैवागतस्याद्यैव गमनं नोचितम्, अस्माकं चिरदर्शनोत्कण्ठां विगमय्य गमिष्यति—इति भावः ।

राम—वत्स ! कैकेयीनन्दन ! देखो, राज्य की थोड़ी देर के लिए भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए । इसलिए कुमार आज ही राज्य-कार्य-संचालन के लिए लौट जायँ ।

सीता—हूँ ! क्या आज ही चले जायँगे कुमार भरत ?

रामः—अलमतिस्नेहेन । अद्यैव विजयाय प्रतिनिवर्ततां कुमारः ।

भरतः—आर्य ! अद्यैवाहं गमिष्यामि ।

आशावन्तः पुरे पौराः स्थास्यन्ति त्वद्दिदृक्षया ।
तेषां प्रीतिं करिष्यामि त्वत्प्रसादस्य दर्शनात् ॥२८॥

सुमन्त्रः—आयुष्मन् ! मयेदानीं किं कर्तव्यम् ।

रामः—तात ! महाराजवत् परिपालयतां कुमारः ।

सुमन्त्रः—यदि जीवामि, तावत् प्रयतिष्ये ।

रामः—वत्स ! कैकेयीमातः ! आरुह्यतां ममाग्रतो रथः ।

भरतः—यदाज्ञापयत्यार्यः ।

[रथमारोहतः]

अलमिति—अतिस्नेहो न कर्तव्यः ।

"**आशावन्त**" इति—**पुरे** अयोध्यायाम्, **पौराः** पुरवासिनः, **त्वद्दिदृक्षया** त्वद्दर्शनेच्छया, **आशावन्तः** 'भरतो राममनुनीय वनात् प्रतिनिवर्तयेद्' इत्येवमाशां दधानाः, **स्थास्यन्ति** । **त्वत्प्रसादस्य** त्वत्प्रसन्नताफलरूपस्य तव पादुकाद्वयस्य, **दर्शनात्**, **तेषाम्** त्वन्निवर्तनं प्रत्याशावतां प्रजाजनानाम्, **प्रीतिम्** सन्तोषम्, **करिष्यामि** ॥२८॥

राम—बस करो, अतिस्नेह अच्छा नहीं । कुमार आज ही राज्य-कार्य-सञ्चालन के लिए लौट जायँ ।

भरत—आर्य ! लो, आज ही चला जाता हूँ ।

—नगरनिवासी आशा लगाये लगाये आपके दर्शनों के लिए अधीर हो बाट जोह ही रहे होंगे । मैं आपसे मिले हुए प्रसाद (चरण-पादुकाओं) को दिखा उन्हें प्रसन्न-चित्त करूँगा ॥२८॥

सुमन्त्र—आयुष्मन् ! अब मुझे क्या करना चाहिए ?

राम—तात ! महाराज की तरह सब प्रकार से कुमार की पालना करते रहो ।

सुमन्त्र—यदि जीता रहा तो प्रयत्न करूँगा ।

राम—वत्स ! कैकेयीनन्दन ! मेरे सामने रथ में बैठ जाओ ।

भरत—जो आर्य की आज्ञा !

[दोनों रथ में बैठ जाते हैं]

रामः—मैथिलि ! इतस्तावत् । वत्स ! लक्ष्मण ! इतस्तावत् । आश्रमपदद्वारमात्रमपि भरतस्यानुयात्रं भविष्यामः ।

[इति निष्क्रान्ताः सर्वे]

चतुर्थोऽङ्कः ।

रामोक्तौ—**आश्रमेत्यादि** । **आश्रमपदद्वारमात्रम्** [आश्रमपदस्य द्वारमेवेति विग्रहः, मयूरव्यंसकादित्वात् समासः] केवलम् आश्रमस्थानस्य द्वारपर्यन्तमित्यर्थः । **अनुयात्रम्** [यात्रामनु इति अनुयात्रम्, 'अव्ययं विभक्ति-' इत्यादिना समासः] भरतानुगामिनो **भविष्याम** इति भावः ।

इति श्रीद्रोणाश्रमाभिजनश्रीमदच्युतानन्दशर्मतनुजन्म**श्रीपरमेश्वरानन्द**शर्म-कृतायां प्रतिमानाटकव्याख्यायां चतुर्थोऽङ्कः समाप्तः ।

राम—मैथिली ! आओ इधर । वत्स ! लक्ष्मण ! आओ इधर । चलो, आश्रम के द्वार तक भरत के साथ चले चलें ।

[सब का प्रस्थान]

अथ पञ्चमोऽङ्कः ।

[ततः प्रविशति सीता तापसी च]

सीता—अय्ये ! उवहारसुमणाइण्णो सम्मज्जिदो अस्समो । अस्समपदविभवेण अणुट्ठिओ देवसमुदाआरो । ता जाव अय्यउत्तो ण आअच्छेदि, दाव इमाणं बाल-रुक्खाणं उदअप्पदाणेण अणुक्कोसइस्सं ।

आर्ये ! उपहारसुमनआकीर्णः संमार्जित आश्रमः । आश्रम-पदविभवेनानुष्ठितो देवसमुदाचारः । तद् यावदार्यपुत्रो नागच्छति, तावदिमान् बालवृक्षानुदकप्रदानेनानुक्रोशयिष्यामि ।

तापसी—अविग्घं से होदु । अविघ्नमस्य भवतु ।

अथ मायाविना रावणेन सीताया हरणं सीतामपहृत्य नयन्तं रावणमभि-वेगेन जटायुषोभिधावनं च वर्णयितुं पञ्चममङ्कमारभते—**अथेति** । अथ सीताहर-णार्थं कपटभिक्षो रावणस्य प्रवेशमवतारयितुं रामाश्रमवर्णनाय तापसीसहितां सीतां प्रवेशयति—**तत** इति । **आर्ये** इति—**उपहारसुमनआकीर्णः** उपहाराः उपहाररूपा देवेभ्य उपायनीकृताः इदानीं निर्माल्यभूताः सुमनसः पुष्पाणि [अथवोपहारस्य सुमनस इति सम्बन्धसामान्यषष्ठ्या समासः] ताभिराकीर्णः व्याप्तः ['स्त्रियां सुमनसो भूम्नि पुष्पे जातौ तु मेदत' इति व्याडिः] । **संमा-र्जितः** संशोधितः । **आश्रमपदविभवेन** आश्रमपदस्य आश्रमस्थानस्य, विभव ऐश्वर्यं पत्रपुष्पफलजलम्, तेन । **देवसमुदाचारः** देवपूजा, आश्रम-स्थानवैभवानुरूपा देवपूजा कृतेति भावः । **अनुक्रोशयिष्यामि** अनुग्रही-ष्यामि [बाहुलकात् स्वार्थे णिच्] । **अविघ्नमिति**—विघ्नस्याभाव इत्यविघ्नम् । अर्थाभावेऽव्ययीभावः । **अस्य** वृक्षसेचनकर्मणः ।

पाँचवाँ अंक

[सीता और तापसी का प्रवेश]

सीता—आर्ये ! पूजा के बिखरे पड़े फूलों से आच्छादित हुआ आश्रम झाड़-बुहार दिया है । आश्रम-सुलभ फल-फूल आदि उपकरणों से देवपूजन कर लिया है । तो जब तक आर्यपुत्र नहीं आते, तब तक इन नन्हे नन्हे पौधों ही को सींच दूँ ।

तापसी—परमात्मा करे, तुम्हारे इस काम में कोई बाधा न हो ।

[ततः प्रविशति रामः]

रामः—[सशोकम्]

त्यक्त्वा तां गुरुणा मया च रहितां रम्यामयोध्यां पुरी-
मुद्यम्यापि ममाभिषेकमखिलं मत्सन्निधावागतः ।
रक्षार्थं भरतः पुनर्गुणनिधिस्तत्रैव सम्प्रेषितः
कष्टं भो ! नृपतेर्धुरं सुमहतीमेकः समुत्कर्षति ॥१॥

[विमृश्य] ईदृशमेवैतत् । यावदिदानीमीदृशशोकविनोदनार्थमवस्थाकुटुम्बिनीं मैथिलीं पश्यामि । तत् कनु-

---

"**त्यक्त्वा**" इति—**रम्याम्** रमणीयामपि, **गुरुणा** पित्रा, **मया** ज्येष्ठेन रामेण, **च**, **रहिताम्** त्यक्ताम्, **ताम्** प्रसिद्धाम्, **अयोध्याम्** पुरीम्, **त्यक्त्वा**, **अखिलम्** समग्रम्, **मम**, **अभिषेकम्** अभिषेकसामग्रीम्, **उद्यम्य** आयोज्य, **मत्सन्निधौ** मम पार्श्वे, **आगतः** प्राप्तः, **अपि**, **रक्षार्थम्** राज्यरक्षायै, **पुनस्तत्रैव** अयोध्यायामेव, **सम्प्रेषितः** सम्यगाश्वास्य प्रतिनिवर्तितः । **गुणनिधिः** सकलसद्गुणैकभाजनम्, **भरतः**, **एकः** असहायः सन्, **सुमहतीम्** विपुलाम्, **नृपतेः** राज्ञः, **धुरम्** भारम्, राज्यभारम् इति भावः, **समुत्कर्षति** समुद्वहतीति, **कष्टम्**, **भोः !** ।

राज्यभारोद्वहने भरतस्य साहाय्यविरह एव रामस्य कष्टे हेतुरिति काव्यलिङ्गमलङ्कृतिः । एवं पूर्वार्धे रम्याया अयोध्यायास्त्यागे पितुर्मम च विरह एव हेतुरिति तदेवालङ्कारः ॥१॥

ईदृशमेवैतत्—एतद् राज्यभारोद्वहनम् ईदृशमेव एकसमुद्वहनीयमेव, अस्तीति शेषः । **ईदृशेत्यादि**—ईदृशस्य, शोकस्य, विनोदनार्थम् दूरीकरणार्थम् । **अवस्थाकुटुम्बिनीम्** सर्वास्ववस्थासु सहायभूताम् ।

[राम का प्रवेश]

राम—[शोक के साथ]

—पूज्य पिता जी और मुझसे रहित हुई उस रमणीय अयोध्या नगरी को छोड़कर मेरे राज्याभिषेक के सारे साज सजाकर मेरे पास आये हुए भी गुणनिधान भरत को मैंने साम्राज्य की रक्षा के लिए फिर वहीं वापस भेज दिया है। ओह ! महाराज के गुरुतर राज्य-भार को वह अकेला ही उठाये हुए है ! ॥१॥

[सोचकर] **यह राज-तन्त्र ऐसा ही है । तो अब इस प्रकार के**

खलु गता वैदेही । [परिक्रम्यावलोक्य] अये इमानि खलु प्रत्यग्राभिषिक्तानि वृक्षमूलानि अदूरगतां मैथिलीं सूचयन्ति । तथाहि,

भ्रमति सलिलं वृक्षावर्ते सफेनमवस्थितं
तृषितपतिता नैते क्लिष्टं पिबन्ति जलं खगाः ।

प्रत्यग्रेति—प्रत्यग्रम् अभिषिक्तानि अचिरदत्तजलानि, **अदूरवर्तिनीम्** निकटस्थामित्यर्थः । **सूचयन्ति** अनुमापयन्ति ।

"**भ्रमति**" इति—**सलिलम्** जलम्, **वृक्षावर्ते** वृक्षाणाम्, आवर्ते आलवाले, **अवस्थितम्** मृदा अशोषितम्, **सफेनम्** फेनसहितं सत्, **भ्रमति** परिवर्तते [यदि जलसेकश्चिरकृतो भवेत् तर्हि तज्जलं मृदा शोषणाद् नेदानीं यावत् स्थातुमर्हति, न चाधिकत्वात् तदशुष्कमिति मन्तव्यम्, अधिकेऽपि चिरनिषिक्ते जले सफेनता न साधु सङ्गच्छते । जलनिषेकसमये समुत्पन्नाः फेना न चिरमवतिष्ठन्ते, किन्तु क्षणमनु विनश्यन्ति । किञ्चेमानि जलानि वृक्षालवालं परितोऽद्यापि भ्रमन्ति विलोक्यन्ते । भ्रमणकारणाभावात् चिरनिषिक्तानां स्थैर्यमुचितम्, तथाचैभिर्हेतुभिर्विज्ञायते यज्जलनिषेकस्य न चिरमभूदिति] । **तृषितपतिताः** तृषिताः पिपासिताः, अत एव पतिताः जलं पातुमालवालान्तिक आगता अपि ['पूर्वकालिक—' इत्यादिना सूत्रेण स्नातानुलिप्तवत् समासः], **एते** पुरोदृश्यमानाः, **खगाः** पक्षिणः, **क्लिष्टम्** मलिनम्, **जलम्**, **न पिबन्ति** [यदि जलं चिरनिषिक्तमभविष्यत्, न तर्हि तन्मलिनमभविष्यत्, सेकानन्तरं जले स्थिरे सति मृदणूनां तलावस्थानेन मालिन्याप्रसङ्गात् । अथवा क्लिष्टमिति क्रियाविशेषणम्, क्लिष्टं क्लेशेन, न पिबन्ति, अपितु सुखेन पिबन्ति, आलवालानां जलपूर्णत्वात् सुखेन चञ्चूप्रवेशात् । यदि जल-

---

शोक को भुलाने के लिए अपने सुख-दुःखों की नित्य-सहचरी मैथिली से मिलूँ । तो कहाँ गईं वैदेही ? [घूमकर और देखकर] ओहो ! अभी अभी के सींचे हुए इन पौधों के थाँवलों से जान पड़ता है कि वैदेही यहीं कहीं पास ही है । क्योंकि,

—पौधों के थाँवलों (क्यारियों) में पड़ा हुआ यह जल झाग से भरा घूम रहा है । फुदक फुदक कर चारों ओर आ इकट्ठे हुए ये प्यासे पक्षी (अभी) मटीला जल नहीं पी रहे (अथवा—अभी भूमि में न समा पाये जल को असुविधा-पूर्वक नहीं, किन्तु सुख-पूर्वक पी रहे हैं)। बिलों

स्थलमभिपतन्त्यार्द्राः कीटा बिले जलपूरिते
नववलयिनो वृक्षा मूले जलक्षयरेखया ॥२॥

[विलोक्य] अये इयं वैदेही। भोः ! कष्टम् ।

योऽस्याः करः श्राम्यति दर्पणेऽपि
स नैति खेदं कलशं वहन्त्याः ।

सेकश्चिरलो भवेत् तर्हि जलस्य भूमिशोषणेन न्यूनता स्यात्, न च तदानीं तृषिताः पक्षिणः सुखेन जलं पातुं शक्नुयुः, एतेन विज्ञायते जलसेको न चिरलः]। **बिले** छिद्रे, **जलपूरिते** जलेन पूर्णे सति, **आर्द्राः** जलसिक्ताः, **कीटाः**, ततो निर्गत्य, **स्थलम्** शुष्कप्रदेशम्, **अभिपतन्ति** आगच्छन्ति [अत्र अभिपतन्तीति वर्त्तमानकालप्रयोगेण जलत्रस्तानां कीटानां बिलाद्बहिर्निर्गमनं नावसितम्, अपि त्वनुवर्तते, इति सूचितम् । किञ्चार्द्रा इति पदेन कीटकलेवराण्यद्यापि जलक्लिन्नान्येव, न शुष्काणीति बोधितम् । तदेतदुभयमपि जलसेकस्य चिरजातत्वे न साधु सङ्गतं भवति, चिरनिषिक्तस्य भूमिशोषणेन कीटानां जलत्रासासंभवाद् बिलाद् बहिरागमानुवृत्तेरार्द्रतायाश्च दुरुपपादत्वाद्। अतोऽनुमीयते जलाभिषेकः प्रत्यग्रकृत इति भावः]। **वृक्षाः**, **मूले**, **जलक्षयरेखया** जलशोषजनितया रेखया, **नववलयिनः** नवाः, वलयाः कटकाः, ते येषां सन्तीति तादृशाः, नवकटकधारिण इवेत्यर्थः, लक्ष्यन्त इति शेषः । आलवाले स्थितं जलं शनैः शनैः शुष्यन्निम्नं गच्छति, तेन च वृक्षमूलं परितो जलार्द्रया मृदा वृत्ताकारा रेखा समुत्पन्ना । तया च वृक्षमूलं परिहितकटकमिव लक्ष्यत इति भावः । हेतुभिर्वृक्षाणां प्रत्यग्राभिषिक्तत्वानुमानादनुमानालङ्कारः । स्वभावोक्तिश्च । चतुर्थे पादे गम्योत्प्रेक्षा च । हरिणीवृत्तम् ॥२॥

"योऽस्या" इति—**यः**, **अस्याः** सीतायाः, **करः** हस्तः, **दर्पणेऽपि** स्वमुखविलोकनसमये दर्पणधारणेऽपि, **श्राम्यति** खिद्यते, **कलशम्**

में जल भर जाने से भीगे हुए कीड़े-मकोड़े (जल को न सहार) वेग से सूखे स्थल की ओर आ निकल (भगे जा) रहे हैं । कहीं पर क्यारियों में जल समा कर (पेड़ों की जड़ पर चारों ओर गोल) रेखा पड़ जाने से पेड़ (पैरों पर) नये पायजेब पहने हुए से झूमते दीख रहे हैं ॥२॥

[देखकर] अरे ! यह रहीं वैदेही। ओह ! बड़े दुःख की बात है ।

—इसका जो हाथ कि चेहरा देखते कभी छोटा-सा दर्पण उठा लेने में भी थक जाया करता था, उसे अब पानी के घड़े के घड़े ढोते ढोते भी खेद

कष्टं वनं स्त्रीजनसौकुमार्यं
समं लताभिः कठिनीकरोति ॥३॥

[उपेत्य] मैथिलि ! अपि तपो वर्धते ।

सीता—हं अय्यउत्तो । जेदु अय्यउत्तो ।
हम् आर्यपुत्रः । जयत्वार्यपुत्रः ।

रामः—मैथिलि ! यदि ते नास्ति धर्मविघ्नः, आस्यताम् ।

सीता—जं अय्यउत्तो आणवेदि । [उपविशति]
यदार्यपुत्र आज्ञापयति ।

रामः—मैथिलि ! प्रतिवचनार्थिनीमिव त्वां पश्यामि । किमिदम् ।

जलपूर्णं घटम्, **वहन्त्याः** धारयन्त्या अपि, अस्याः, **सः** करः, **खेदम्** श्रान्तिम्, **न एति** न प्राप्नोति । **वनम्** अरण्यम् [कर्तृ], **स्त्रीजनसौकुमार्यम्** स्त्रीजनानां सौकुमार्यम् सुकुमारताम्, **लताभिः**, **समम्** सह, लताश्चेति भावः [गणपतिशास्त्रिणस्तु—लताभिः समं लतामार्दवसदृशं स्त्रीजनमार्दवमिति व्याचक्षत], **कठिनीकरोति** कार्कश्यमापादयति, इति **कष्टम्** । विशेषस्य सामान्येन समर्थनादर्थान्तरन्यासः । उत्तरार्धे सहोक्तिः, सौकुमार्यकाठिन्ययोर्विरोधश्च । उपजातिश्छन्दः ॥३॥

मैथिलीति—**तपः** वृक्षालवालसेचनादिरूपं कर्म । **वर्धते** निर्विघ्नं सम्पद्यते । रामोक्तौ—**यदीति** । **धर्मविघ्नः** धर्मे वृक्षसेचनादिरूपे तपसि, विघ्नः अन्तरायः । रामोक्तौ **प्रतिवचनार्थिनीम्** प्रतिवचनं प्रश्नोत्तरम्, तदर्थयते, ताम्, किमपि प्रष्टुकामामिति भावः ।

नहीं हो रहा । ओह ! अरण्य-जीवन (वन का निवास) भी कैसा कठोर है, लताओं के साथ ही ललनाओं की सुकुमारता को भी कठोर बनाये देता (जा रहा) है ॥३॥

[समीप आकर] मैथिली ! तप तो बढ़ रहा है ?

सीता—ऊँह ! आर्यपुत्र । जय हो आर्यपुत्र की ।

राम—मैथिली ! यदि तुम्हें धर्म में किसी प्रकार की बाधा न होती हो तो बैठ जाओ ।

सीता—जो आर्यपुत्र की आज्ञा [बैठती है]

राम—तुम कुछ पूछना चाहती हुई-सी प्रतीत हो रही हो । कहो, क्या बात है ?

सीता—सोअसुण्णहिअअस्स विअ अय्यउत्तस्स मुहराओ । किं एदं ।

शोकशून्यहृदयस्येवार्यपुत्रस्य मुखरागः । किमेतत् ।

रामः—मैथिलि ! स्थाने खलु कृता चिन्ता ।

कृतान्तशल्याभिहते शरीरे तथैव तावद्धृदयव्रणो मे ।
नानाफलाः शोकशराभिघातास्तत्रैव तत्रैव पुनः पतन्ति ॥४॥

शोकेत्यादि—**आर्यपुत्रस्य, मुखरागः** मुखकान्तिः, **शोकशून्यहृदयस्य** शोकेन शून्यं हृदयं यस्य तादृशस्य जनस्येव लक्ष्यत इति भावः । रामोक्तौ—**स्थाने** इति । यत्सत्यं चिन्ताक्रान्तं मदीयं चेतः, तथापि सा चिन्ता, **स्थाने** उचितविषयत्वाद् युक्तैवेति भावः ।

रामः स्वचिन्तां समर्थयते—"**कृतान्ते**"ति । **कृतान्तशल्याभिहते** कृतान्तस्य यमस्य, शल्यैः शल्यरूपैः, पितृनिधनशोकादिभिः, आहते ताडिते [शल्यवद्व्यथाहेतुना कालेनाभिहते—इति गणपतिशास्त्रिणः], अत्र पक्षे कृतान्तः शल्यमिवेत्युपमितसमासः, **मे** मम, **शरीरे, हृदयव्रणः** मानसदुःखरूप आघातः, **तावत्, तथैव** पूर्ववदेवास्ति, न मात्रयापि न्यूनतामुपगतम् । ननु कालक्रमेण शोको ह्रासमुपैति, तव शोकः केन हेतुना नो ह्रसित इति चेदुच्यते—यतः **नानाफलाः** विचित्रपरिणामाः, **शोकशराभिघाताः** शोकरूपबाणाहतयः, **तत्रैव तत्रैव** तस्मिन्नेव शोकाक्रान्ते हृदये, **पुनः** मुहुर्मुहुः, **पतन्ति** । यावत् पूर्वाघातजनितो व्रणो न पूर्णतया प्ररोहति, तावदपरस्तत्राघातो जायमानस्तं नवीकरोति । अतएव कालक्रमेणापि मे हृदयव्रणो न प्ररूढ इति भावः । समर्थनसापेक्षस्य हृदयव्रणतादवस्थ्यस्य हेतुना समर्थनाद् वाक्यार्थहेतुकं काव्यलिङ्गम् । उपजातिश्छन्दः ॥४॥

सीता—शोक से शून्य हृदय हुए की भाँति आर्यपुत्र के मुँह की रंगत हुई है । यह क्या बात है ?

राम—मैथिली ! चिन्ता करने की तो बात है ही ।

—दुर्दैव के किये बाण-प्रहारों से व्यथित हुए मेरे इस शरीर पर हृदय का (पिता का बिछोह-रूप) घाव अभी उसी तरह ताज़ा ही था कि फिर नाना फलों (प्रयोजनों, शराग्रभागों) वाले शोक-शल्यों के आघात (चोटें) उसी पर, निश्चय उसी पर पड़ने लगे हैं ॥४॥

सीता—अय्यउत्तस्स को विअ सन्दावो ।
आर्यपुत्रस्य क इव सन्तापः ।

रामः—श्वस्तत्रभवतस्तातस्यानुसंवत्सरश्राद्धविधिः । कल्पविशेषेण निवपनक्रियामिच्छन्ति पितरः । तत् कथं निर्वर्तयिष्यामीत्येतच्चिन्त्यते । अथवा,

गच्छन्ति तुष्टिं खलु येन केन
त एव जानन्ति हि तां दशां मे ।
इच्छामि पूजां च तथापि कर्तुं
तातस्य रामस्य च सानुरूपाम् ॥५॥

आर्यपुत्रस्येति—**क इ**वेत्यत्र इवशब्दो वाक्यालङ्कारे । **श्व** इति—तातस्य स्वर्गं गतस्य पितुः । **अनुसंवत्सरश्राद्धविधिः** संवत्सरमनु जायमानः श्राद्धविधिः, वार्षिकं श्राद्धमिति भावः । **कल्पविशेषेण** कल्पो विधिः ['कल्पे विधिक्रमौ' इत्यमरः], तस्य विशेषः, विशिष्टेन विधिनेत्यर्थः । **निवपनक्रियाम्** पित्रुद्देशेन पिण्डदानादिरूपं कर्म । **निर्वर्तयिष्यामि** अनुष्ठास्यामि, निवपनक्रियामिति शेषः ।

"गच्छन्ती"ति—पितरः, **येन केन** अपि प्रकारेण, **तुष्टिम्** प्रसन्नताम्, **गच्छन्ति** गमिष्यन्ति, **हि** यतः, **ते एव** पितर एव, **मे**, **ताम्** वर्तमानामित्यर्थः, **दशाम्** अवस्थाम्, **जानन्ति** अनुभवन्ति [साम्प्रतमहं वनवासी न श्राद्धोचितं सर्वं द्रव्यं सङ्कलयितुं शक्नोमि, इति मे पितॄणां न परोक्षम्, अतो मया येन केनापि प्रकारेण क्रियमाणं श्राद्धं तान् सन्तोषयिष्यतीति भावः], **तथापि** वने वसन्नप्यहम्, **तातस्य** पितुः, **रामस्य च** मम च, **सानुरूपाम्** स्वरूपानुकूलरूपाम् [अनुकूलं रूपमित्यनुरूपम्,

---

सीता—आर्यपुत्र को किस बात का सन्ताप है ?

राम—कल पूज्य पिता जी का सांवत्सरिक (वार्षिक) श्राद्ध कर्म है । पितर लोग सामर्थ्य-विशेष से किये गये पिण्डदान के इच्छुक रहते हैं । सो मैं इसे कैसे पूरा करूँगा, यही सोच पड़ी हुई है । अथवा,

—वे जिस किसी भी प्रकार से तृप्त होते हों, होवें । पितर लोग मेरी इस हीन दशा को भली भाँति जान ही रहे हैं । तथापि मैं पूज्य पिता जी (की प्रतिष्ठा) और राम के (सामर्थ्य के) अनुरूप (उचित) पितृ-पूजन करना चाहता हूँ ॥५॥

सीता—सोअसुण्णहिअअस्स विअ अय्यउत्तस्स मुहराओ । किं एदं ।

शोकशून्यहृदयस्येवार्यपुत्रस्य मुखरागः । किमेतत् ।

रामः—मैथिलि ! स्थाने खलु कृता चिन्ता ।

कृतान्तशल्याभिहते शरीरे तथैव तावद्धृदयव्रणो मे ।
नानाफलाः शोकशराभिघातास्तत्रैव तत्रैव पुनः पतन्ति ॥४॥

शोकेत्यादि—**आर्यपुत्रस्य, मुखरागः** मुखकान्तिः, **शोकशून्यहृदयस्य** शोकेन शून्यं हृदयं यस्य तादृशस्य जनस्येव लक्ष्यत इति भावः । रामोक्तौ—**स्थाने** इति । यत्सत्यं चिन्ताक्रान्तं मदीयं चेतः, तथापि सा चिन्ता, **स्थाने** उचितविषयत्वाद् युक्तेवेति भावः ।

रामः स्वचिन्तां समर्थयते—"**कृतान्ते**"ति । **कृतान्तशल्याभिहते** कृतान्तस्य यमस्य, शल्यैः शल्यरूपैः, पितृनिधनशोकादिभिः, आहते ताडिते [शल्यवद्व्यथाहेतुना कालेनाभिहते—इति गणपतिशास्त्रिणः], अत्र पक्षे कृतान्तः शल्यमिवेत्युपमितसमासः, **मे** मम, **शरीरे, हृदयव्रणः** मानसदुःखरूप आघातः, **तावत्, तथैव** पूर्ववदेवास्ति, न मात्रयापि न्यूनतामुपगतम् । ननु कालक्रमेण शोको ह्रासमुपैति, तव शोकः केन हेतुना नो ह्रसित इति चेदुच्यते—यतः **नानाफलाः** विचित्रपरिणामाः, **शोकशराभिघाताः** शोकरूपबाणाहतयः, **तत्रैव तत्रैव** तस्मिन्नेव शोकाक्रान्ते हृदये, **पुनः** मुहुर्मुहुः, **पतन्ति** । यावत् पूर्वाघातजनितो व्रणो न पूर्णतया प्ररोहति, तावदपरस्तत्राघातो जायमानस्तं नवीकरोति । अतएव कालक्रमेणापि मे हृदयव्रणो न प्ररूढ इति भावः । समर्थनसापेक्षस्य हृदयव्रणतादवस्थ्यस्य हेतुना समर्थनाद् वाक्यार्थहेतुकं काव्यलिङ्गम् । उपजातिश्छन्दः ॥४॥

सीता—शोक से शून्य हृदय हुए की भाँति आर्यपुत्र के मुँह की रंगत हुई है । यह क्या बात है ?

राम—मैथिली ! चिन्ता करने की तो बात है ही ।

—दुर्दैव के किये बाण-प्रहारों से व्यथित हुए मेरे इस शरीर पर हृदय का (पिता का बिछोह-रूप) घाव अभी उसी तरह ताज़ा ही था कि फिर नाना फलों (प्रयोजनों, शराग्रभागों) वाले शोक-शल्यों के आघात (चोटें) उसी पर, निश्चय उसी पर पड़ने लगे हैं ॥४॥

सीता—अय्यउत्तस्स को विअ सन्दावो ।
आर्यपुत्रस्य क इव सन्तापः ।

रामः—श्वस्तत्रभवतस्तातस्यानुसंवत्सरश्राद्धविधिः । कल्पविशेषेण निवपनक्रियामिच्छन्ति पितरः । तत् कथं निर्वर्तयिष्यामीत्येतच्चिन्त्यते । अथवा,

गच्छन्ति तुष्टिं खलु येन केन
त एव जानन्ति हि तां दशां मे ।
इच्छामि पूजां च तथापि कर्तुं
तातस्य रामस्य च सानुरूपाम् ॥५॥

आर्यपुत्रस्येति—**क इवे**त्यत्र इवशब्दो वाक्यालङ्कारे । **श्व** इति—तातस्य स्वर्गं गतस्य पितुः । **अनुसंवत्सरश्राद्धविधिः** संवत्सरमनु जायमानः श्राद्धविधिः, वार्षिकं श्राद्धमिति भावः । **कल्पविशेषेण** कल्पो विधिः ['कल्पे विधिक्रमौ' इत्यमरः], तस्य विशेषः, विशिष्टेन विधिनेत्यर्थः । **निवपनक्रियाम्** पित्रुद्देशेन पिण्डदानादिरूपं कर्म । **निर्वर्तयिष्यामि** अनुष्ठास्यामि, निवपनक्रियामिति शेषः ।

"गच्छन्ती"ति—पितरः, **येन केन** अपि प्रकारेण, **तुष्टिम्** प्रसन्नताम्, **गच्छन्ति** गमिष्यन्ति, **हि** यतः, **ते एव** पितर एव, **मे**, **ताम्** वर्तमानामित्यर्थः, **दशाम्** अवस्थाम्, **जानन्ति** अनुभवन्ति [साम्प्रतमहं वनवासी न श्राद्धोचितं सर्वं द्रव्यं सङ्कलयितुं शक्नोमि, इति मे पितॄणां न परोक्षम्, अतो मया येन केनापि प्रकारेण क्रियमाणं श्राद्धं तान् सन्तोषयिष्यतीति भावः], **तथापि** वने वसन्नप्यहम्, **तातस्य** पितुः, **रामस्य च** मम च, **सानुरूपाम्** स्वरूपानुकूलरूपाम् [अनुकूलं रूपमित्यनुरूपम्,

---

सीता—आर्यपुत्र को किस बात का सन्ताप है ?

राम—कल पूज्य पिता जी का सांवत्सरिक (वार्षिक) श्राद्ध कर्म है । पितर लोग सामर्थ्य-विशेष से किये गये पिण्डदान के इच्छुक रहते हैं । सो मैं इसे कैसे पूरा करूँगा, यही सोच पड़ी हुई है । अथवा,

—वे जिस किसी भी प्रकार से तृप्त होते हों, होवें । पितर लोग मेरी इस हीन दशा को भली भाँति जान ही रहे हैं । तथापि मैं पूज्य पिता जी (की प्रतिष्ठा) और राम के (सामर्थ्य के) अनुरूप (उचित) पितृ-पूजन करना चाहता हूँ ॥५॥

सीता—अय्यउत्त ! णिव्वत्तइस्सदि सद्धं भरदो रिद्धीए, अवत्थाणुरूवं फलोदएण वि अय्यउत्तो । एदं तादस्स बहुमदअरं भविस्सदि ।

आर्यपुत्र ! निर्वर्तयिष्यति श्राद्धं भरत ऋद्धया, अवस्थानुरूपं फलोदकेनाप्यार्यपुत्रः । एतत् तातस्य बहुमततरं भविष्यति ।

रामः—मैथिलि !

> **फलानि दृष्ट्वा दर्भेषु स्वहस्तरचितानि नः ।**
> **स्मारितो वनवासं च तातस्तत्रापि रोदिति ॥६॥**

'कुगतिप्रादयः' इत्यनेन समासः प्राचार्यवत्, अनुरूपेण सह वर्तत इति सानुरूपा तामिति विग्रहः], **पूजाम्** श्राद्धविधिमित्यर्थः, **कर्तुमिच्छामि** ॥५॥

आर्यपुत्रेति—**ऋद्धया** महत्या सम्पदा । **फलोदकेन** समाहार एकत्वम् । **बहुमततरम्** ऋद्धिश्राद्धापेक्षया बहुप्रियम् ।

"**फलानी**"ति—हे मैथिलि ! **तातः** पिता, **दर्भेषु** कुशेषु, **नः** अस्माकम्, **स्वहस्तरचितानि** स्वहस्तस्थापितानि, **फलानि** बदरादिवन्यफलानि, **दृष्ट्वा**, **वनवासम्** अस्माकं वने वसतिम्, **स्मारितश्च** सञ्जातास्मद्वनवासस्मृतिः सन्नित्यर्थः, **तत्रापि** स्वर्गेऽपि, **रोदिति** रोदिष्यति, प्रीतो न भविष्यतीत्यर्थः । यद्यपि स्वर्गः सुखमात्रास्पदम्, तथापि स्वर्गस्थोऽपि मे पिता चक्रवर्तिसुतमप्यकिञ्चनमिव बदरादिवन्यफलैः श्राद्धं कुर्वन्तं मां विलोक्य सञ्जातास्मद्वनवासस्मृतिर्नितरां दूयेतेति भावः ॥६॥

सीता—आर्यपुत्र ! बड़े वैभव से (के साथ) पिता जी का श्राद्ध भरत कर तो लेंगे । आर्यपुत्र भी अपनी परिस्थिति के अनुसार जैसा बन पड़े, फल-जल आदि से कर लेवें । तात इसे ही बहुत ग़नीमत हुआ समझेंगे ।

राम—मैथिली !

—दाभों पर हमारे अपने हाथों से परोसे हुए फलों को देखते ही (केवल हमारी निर्धनता ही नहीं, किन्तु हमारी निर्धनता के कारण-स्वरूप) हमारे वनवास की याद आ जाने से तात वहाँ स्वर्ग में भी फूट-फूटकर रो पड़ेंगे ॥६॥

[ततः प्रविशति परिव्राजकवेषो रावणः]

रावणः—एष भोः !

नियतमनियतात्मा रूपमेतद् गृहीत्वा
खरवधकृतवैरं राघवं वञ्चयित्वा ।
स्वरपदपरिहीणां हव्यधारामिवाहं
जनकनृपसुतां तां हर्तुकामः प्रयामि ॥७॥

अथ सीतापहरणं प्रसञ्जयन् कविः 'तत्कथं निर्वर्तयिष्यामी'त्यादिनोपक्षिप्तां रामस्य श्राद्धकल्पजिज्ञासां शमयितुं सीतामपजिहीर्षुं परिव्राजकवेषं रावणं प्रवेशयति—**तत** इति ।

"**नियतमि**"ति—**अनियतात्मा** अनियतः आत्मा स्वरूपं यस्य तादृशः, मायया बहुरूपधर इति यावत्, अथवा अनियतः वैरिकृतापराधेन अधीरः आत्मा मनो यस्य तादृशः [अनियतात्मा अजितमनस्क इति गणपतिशास्त्रिणः, परं गर्वदुर्विदग्धस्य रावणस्यात्मविषयेऽजितमनस्कतोक्तिर्न स्वाभाविकी], **अहम्** रावणः, **एतद् रूपम्** परिव्राजकवेषम्, **गृहीत्वा** धारयित्वा, **खरवधकृतवैरम्** खरस्य खरनामकदैत्यस्य, वधेन हननेन, कृतम् उत्पादितम्, वैरम् शत्रुभावः, येन तादृशम्, **राघवम्** रामम्, **नियतम्** यथा स्यात् तथा, अवश्यमिति भावः, **वञ्चयित्वा** प्रतार्य [नियतं जितेन्द्रियं राघवं वञ्चयित्वेति गणपतिशास्त्रिणः], **स्वरपदपरिहीणाम्** स्वरपददोषदूषितमन्त्रोच्चारणपूर्वकं दीयमानाम्, अथवा मन्त्रोच्चारणरहिताम्, **हव्यधारामिव** हूयते देवेभ्यो दीयत इति हव्यम् [जुहोतेरचो यत्], तस्य हविषो घृतादेः, धारामिव, **ताम्** प्रसिद्धाम्, **जनकनृपसुताम्** सीताम्, **हर्तुकामः** हर्तुं कामो यस्य तादृशः, अपहर्तुमिच्छुः सन्, **प्रयामि** प्रस्थानं करोमि । रामः खरवधेनास्माकं वैमनस्यमुत्पादितवान् । अतोऽहं मायावी परिव्राजकवेषेण तं वञ्चयित्वा तत्पत्नीं सीतामपहरिष्यामि ।

[संन्यासी के वेष में रावण का प्रवेश]

रावण—ओह ! यह,

—अजितात्मा (अजितेन्द्रिय) मैं संन्यासी का यह रूप धारण किये, खर(-दूषण) का वध कर वैर को उभारने वाले राम को (मायामृग से) छल कर, स्वर तथा पदों के अशुद्ध मन्त्रोच्चारण से भ्रष्ट हुई होम की आज्य-धारा की भाँति, उस जनक-नन्दिनी को हरने चला ॥७॥

[परिक्रम्याधो विलोक्य] इदं रामस्याश्रमपदद्वारम् । यावदवतरामि । [अवतरति] यावदहमप्यतिथिसमुदाचारमनुष्ठास्यामि । अहमतिथिः । कोऽत्र भोः ! ।

रामः—[श्रुत्वा] स्वागतमतिथये ।

रावणः—साधु विशेषितं खलु रूपं स्वरेण ।

रामः—[विलोक्य] अये भगवान् । भगवन् ! अभिवादये ।

रावणः—स्वस्ति ।

रामः—भगवन् ! एतदासनमास्यताम् ।

यथा स्वरवर्णहीनमन्त्रोच्चारणेन दीयमानं हवी राक्षसैरपह्रियते, तथैवेयमप्यपराधिनः पत्नी मयापहरिष्यत इति भावः । उपमालङ्कारः । खरवधकृतवैरता सीतापहरणे हेतुरिति काव्यलिङ्गम् । अत्र सीताया जनकनृपसम्बन्धबोधनं न कञ्चन विवक्षितार्थं साधयतीत्यपुष्टार्थत्वं दोषः । खरवधेन रामोऽपराध्यति, हरणं च जनकसुतायाः, तदेतन्नितान्तमसङ्गतम् । मालिनी छन्दः ॥७॥

यावदिति—अतिथिसमुदाचारम् अभ्यागतजनोचितमाचारम् । मम स्वरेणास्य ममातिथित्वे सन्देहो न जात इति रावणः स्वस्यातिथिवेषानुरूपं स्वरयोगं स्तौति—**साध्विति** । **रूपम्** ममातिथिवेषः, **स्वरेण** अतिथियोग्येन स्वरेण, **साधु** सम्यक्तया, **विशेषितम्** समर्थितमिति भावः [अथवा 'स्वागतमतिथये' इति रामवाक्यं श्रुत्वा तत्स्वरं तद्रूपानुरूपं मन्वानो रावण आह—साध्विति । रूपम् रामस्य रूपम्, स्वरेण, विशेषितम् शोभातिशयं प्रापितमित्यर्थ इति वा व्याख्येयम्] । **अये** इति—**भगवान्** परिव्राजक इत्यर्थः [**आस्यताम्** इत्यधीष्टे लोट्] ।

[घूमकर तथा नीचे की ओर देखकर] यह रहा राम के आश्रम का द्वार । अच्छा, नीचे उतर लूँ । [उतरता है] अब मैं अतिथि-जैसा ढोंग रचूँगा । मैं अतिथि आया । अजी ! कोई है यहाँ ?

राम—[सुनकर] स्वागत हो अतिथि का ।

रावण—इसके लोकोत्तर स्वर ने इसके अप्रतिम रूप पर खूब चार चाँद लगाये हैं !

राम—[देखकर] अहा ! भगवान् हैं । भगवन् ! अभिवादन करता हूँ ।

रावण—तुम्हारा कल्याण हो !

राम—भगवन् ! यह आसन रहा, विराजिए ।

रावणः—[आत्मगतम्] **कथमाज्ञप्त इवास्म्यनेन** । [प्रकाशम्] **बाढम्** । [उपविशति]

रामः—**मैथिलि ! पाद्यमानय भगवते** ।

सीता—**जं अय्यउत्तो आणवेदि** । [निष्क्रम्य प्रविश्य] **इमा आवो** ।
यदार्यपुत्र आज्ञापयति । इमा आपः ।

रामः—**शुश्रूषय भगवन्तम्** ।

सीता—**जं अय्यउत्तो आणवेदि** । यदार्यपुत्र आज्ञापयति ।

रावणः—[मायाप्रकाशनपर्याकुलो भूत्वा] **भवतु भवतु** ।

इयमेका पृथिव्यां हि मानुषीणामरुन्धती ।
यस्या भर्तेति नारीभिः सत्कृतः कथ्यते भवान् ॥८॥

मनस्वी सादरमपि परेण कृतां प्रेरणामसहिष्णू रावणः रामस्य 'आस्यताम्' इति लोट्प्रयोगेणात्मनस्तिरस्कारमिवानुभवन् मनस्याह—**कथमिति** । **आज्ञप्त इव** दत्ताज्ञ इव । **मैथिलीति**—**पाद्यम्** पादप्रक्षालनार्थं जलम् । **शुश्रूषयेति**—पादप्रक्षालनेन परिव्राजकमतिथिं परिचरेति भावः । **मायाप्रकाशनपर्याकुलः** सीतापाणिस्पर्शे सति रोमोद्गमादिभिः कदाचिद् मम च्छद्मवेषता प्रकाशमियादिति शङ्काकुलः । **भवतु भवत्विति**—पर्याप्तं जातम्, नानया शुश्रूषणीयमिति भावः ।

अशुश्रूषणे हेतुमाह—"**इयमि**"ति । **पृथिव्याम्**, **मानुषीणाम्** मर्त्यस्त्रीणां मध्ये, **एका** केवला, **इयम्** नारी, **अरुन्धती** अरुन्धतीसदृशी

रावण—[स्वगत] **क्यों, यह तो मुझे आज्ञा-सी दे रहा है ?** [प्रकट] **बहुत अच्छा** । [बैठता है]

राम—**मैथिली ! जल लाओ महाभाग के चरण धोने** ।

सीता—जो आर्यपुत्र की **आज्ञा** । [बाहर जाकर और जल लाकर] **यह रहा जल** ।

राम—**महाभाग की सेवा करो** ।

सीता—**जो आर्यपुत्र की आज्ञा** ।

रावण—[भेद खुल जाने के भय से हकबकाकर] **रहने दो, रहने दो** ।

—पृथिवी पर, महिलाओं में यह एक ही अरुन्धती (के तद्रूप लोकोत्तर पातिव्रत्य तेज वाली) हैं, जिसके भर्ता होने से स्त्रियाँ आपका यशोगान कर रही हैं ॥८॥

रामः—तेन हि आनय, अहमेव शुश्रूषयिष्ये ।
रावणः—अयि छायां परिहृत्य शरीरं न लङ्घयामि । वाचानुवृत्तिः खल्वतिथिसत्कारः । पूजितोऽस्मि । आस्यताम् ।
रामः—बाढम् । [उपविशति]

पतिव्रतेत्यर्थः, अस्तीति शेषः । **यस्याः**, **भर्ता** पतिः, **इति** हेतोः, **भवान्**, **सत्कृतः** लोकपूजितः सन्, **नारीभिः**, **कथ्यते** कीर्त्यते कथाप्रसङ्गेषूदाह्रियते । अथवा—सत्कृतः सर्वलोकमाननीयः, भवान् राघवः, यस्याः, भर्ता पतिः, अस्ति, इति नारीभिः कथ्यते कीर्त्यते श्लाघ्यते वा । इयं खलु दिव्यरुन्धतीव भुवि पतिव्रतानां मूर्धन्यतमास्ति । भवानपि यद्वृतृतयैव लोके पूज्यते । अतः पूज्यकोटिनिविष्टया परमपतिव्रतयानया स्वचरणशुश्रूषणं न वाञ्छामीति भावः । अस्या नार्याः सम्बन्धेनैव लोके राघवस्यादरो भवति । वस्तुतस्तु तुच्छोऽयं राघवः । तथाचास्यामपहृतायामयमेतां विना लोके नगण्य एव स्यात् । मम च प्रासाद एतेन रत्नेन भूषितो भवेदिति रावणहृदयमत्र प्रतीयते । अरुन्धतीत्वारोपाद् रूपकम् । सीताया गुणेन रामस्य गुणोल्लासादुल्लासोऽपि । सीतया न शुश्रूषणीयोऽहमिति प्रस्तुते तत्कारणोपन्यासादप्रस्तुतप्रशंसा ॥८॥

तेनेति—**आनये**त्यस्य पाद्यं जलमिति शेषः । विधिरयं सीतां प्रति । रहस्यभेदभिया रामेणापि चरणप्रक्षालनमवाञ्छन् रावण आह—**अयी**ति । यदि लंघनानर्हतया छायैव न लंघिता तर्हि तस्या अपि उपजीव्यं शरीरं कथं लंघयेत्यर्थः । अयमभिसन्धिः—यदि च्छायावत् त्वच्छरीरानुवर्तिन्या सीतयापि स्वशुश्रूषां नेच्छामि, तर्हि तदाश्रयतया अधिकमादरणीयेन भवता कथं तां वाञ्छेयमिति भावः [सारूप्यनिबन्धनाप्रस्तुतप्रशंसा] । **वाचा** सूनृतया गिरा । **अनुवृत्तिः** अनुवर्तनम् आनुकूल्यमेव । **अतिथिसत्कारः खलु**, नान्यत् किमपि चरणशुश्रूषणादि [अप्रश्नपूर्वमितरव्यपोहेन परिसंख्यालङ्कारः] । **पूजितोऽस्मि** सूनृतया गिरैव सत्कृतोऽस्मीति भावः ।

राम—तो लाओ । मैं ही महाभाग की चरण-शुश्रूषा करूँगा ।
रावण—ओहो ! परछाईं का बचाव किये मैं तो अपने शरीर को नहीं लाँघने दिया करता । मधुर वचनों से स्वागत करना ही सच्चा अतिथि-सत्कार है । मेरा पर्याप्त सम्मान हो चुका । बैठ जाइए ।
राम—अच्छा, जो आपकी इच्छा । [बैठता है]

रावणः—[आत्मगतम्] यावदहमपि ब्राह्मणसमुदाचारमनुष्ठास्यामि । [प्रकाशम्] भोः ! काश्यपगोत्रोऽस्मि । साङ्गोपाङ्गं वेदमधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रं, माहेश्वरं योगशास्त्रं, बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं, मेधातिथेर्न्यायशास्त्रं, प्राचेतसं श्राद्धकल्पं च ।

रामः—कथं कथं श्राद्धकल्पमिति ।

रावणः—सर्वाः श्रुतीरतिक्रम्य श्राद्धकल्पे स्पृहा दर्शिता । किमेतत् ।

रामः—भगवन् ! भ्रष्टायां पितृमत्तायामागम इदानीमेषः ।

साङ्गोपाङ्गम् अङ्गानि चोपाङ्गानि च साङ्गोपाङ्गानि, तैः सह वर्तत इति साङ्गोपाङ्गम् । तत्र शिक्षा-कल्प-व्याकरण-निरुक्त-च्छन्दो-ज्यौतिषाणीति षडङ्गानि, पुराण-न्याय-मीमांसा-धर्मशास्त्राणि चोपाङ्गानि बोध्यानि । **मानवीयम्** मनुना प्रोक्तम् । **माहेश्वरम्** महेश्वरादागतम् । **बार्हस्पत्यम्** बृहस्पतिप्रोक्तम् ['पत्युत्तरपदाण्ण्यः'] । **प्राचेतसम्** प्रचेतसा प्रोक्तम् । रामः स्वातिथेः श्राद्धकल्पवेदित्वं विज्ञाय 'पितृश्राद्धसम्बन्धिनीं जिज्ञासां ममायमपनेष्यति' इति हर्षमनुभवन्नाह—**कथं कथमिति** । द्विरुक्तिरादरकृता । भवान् श्राद्धकल्पमपि वेत्तीत्यहो मे सौभाग्यमिति भावः । **सर्वा** इति—**श्रुतीः** वेदान् । **अतिक्रम्य** परित्यज्य । **स्पृहा** अनुरागः । **भगवन्निति**—**पितृमत्तायां भ्रष्टायाम्** पितृसम्बन्धे विनष्टे, पितरि मृते सतीत्यर्थः [पिता विद्यते यस्य स पितृमान्, तस्य भावस्तत्ता, तस्याम् । 'कृत्तद्धितैः सम्बन्धाभिधानं भावप्रत्ययेन' इति वचनेन पितृमत्ताशब्दस्य पितृसम्बन्ध इत्यर्थः], **एष आगमः** इदं श्राद्धकल्पाख्यं शास्त्रम् अपेक्ष्यत इत्यर्थः । मम पिता निधन-

---

रावण—[स्वगत] तो मैं भी ब्राह्मणोचित व्यवहार का पालन करूँ (ढोंग रचूँ) । [प्रकट] अजी ! मेरा गोत्र काश्यप है । मैंने साङ्गोपाङ्ग वेद, मानवीय धर्मशास्त्र, महेश्वर का योगशास्त्र, बृहस्पति का अर्थशास्त्र, मेधातिथि का न्यायशास्त्र और प्रचेता का श्राद्धकल्प पढ़ा है ।

राम—क्या ? क्या ? श्राद्धकल्प ?

रावण—सब श्रुतियों (वेदशास्त्रों) को छोड़ श्राद्धकल्प में इतनी आस्था दरसाई । यह क्या बात है ?

राम—महाभाग ! पितृ-हीन हो जाने के कारण इस समय मेरे लिए यही आगम ज्ञातव्य है ।

रावणः—अलं परिहृत्य । पृच्छतु भवान् ।
रामः—भगवन् ! निवपनक्रियाकाले केन पितॄंस्तर्पयामि ।
रावणः—सर्वं श्रद्धया दत्तं श्राद्धम् ।
रामः—भगवन् ! अनादरतः परित्यक्तं भवति । विशेषार्थं पृच्छामि ।
रावणः—श्रूयताम् । विरूढेषु दर्भाः, ओषधीषु तिलाः, कलायं शाकेषु, मत्स्येषु महाशफरः, पक्षिषु वार्ध्रीणसः, पशुषु गौः खड्गो वा, इत्येते मानुषाणां विहिताः ।

मुपगतः । निधनमुपगतस्य च पुत्रादिभिः श्राद्धं कर्तव्यमित्यागमः । तच्च श्राद्धकल्पानुसारि भवति । अत एवेदानीं तत्र मे स्पृहेति भावः ।

अलमिति—यद्येवं पितुः श्राद्धं चिकीर्षसि तर्हि **अलं परिहृत्य** श्राद्धकल्पविषयकः प्रश्नस्त्वया न परिहरणीयः । अपित्ववश्यप्रष्टव्य इति भावः । ['अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा'] । **भगवन्निति**—**निवपनक्रियाकाले** श्राद्धक्रियाकाले । **सर्वमिति**—सर्वमपि द्रव्यं श्रद्धया दीयमानं पितृतर्पकं भवति । श्रद्धया दत्तं श्राद्धमिति श्राद्धशब्दव्युत्पत्तिरप्येतमर्थं समर्थयत इति भावः । अतः श्राद्धाय द्रव्यविशेषजिज्ञासा न ते युक्तेत्यर्थः । तदुक्तं मनुना—'यद् यद् ददाति विधिवत् सम्यक्श्रद्धासमन्वितः । तत्तत्पितॄणां भवति परत्रानन्तमक्षयम् ॥' (अध्याय ३।२७५) । **भगवन् ! अनादरत** इति—**अनादरतः** अश्रद्धया, दानम्, **परित्यक्तम्** शास्त्रैरपि निषिद्धम् । अतो यदपि दातव्यं तच्छ्रद्धयैव देयं भवेत् । परं श्रद्धया देयेष्वपि कतमद् द्रव्यं पितृभ्यो देयमिति विशेषविषयिणी मे जिज्ञासेति भावः । **श्रूयतामिति**—**विरूढेषु** तृणेषु । **ओषधीषु** ['ओषध्यः फलपाकान्ताः'] गोधूमादिषु । **कलायः** कालपूरः ['मटर' इति भाषायाम्] । परं कलायस्य शाकत्वं

रावण—बस, संकोच न करो । पूछो, आप क्या पूछते हो ?
राम—भगवन् ! पिण्डदान के समय किस वस्तु से पितरों को परितृप्त करूँ ?
रावण—श्रद्धा से जो कुछ दिया जाय, उसी का नाम श्राद्ध है ।
राम—भगवन् ! अश्रद्धा से दिया गया तो परित्याग कर दिया जाता ही है । मैं तो विशेषता जानने के लिए पूछ रहा हूँ ।
रावण—तो सुनिए—विरूढों (उगने वाली घासों) में दाभ, ओषधियों में तिल, शाकों में मटर, मछलियों में महामच्छ, पक्षियों में वार्ध्रीणस, पशुओं में दान देने के लिए गाय, वा गैण्डा—ये वस्तुएँ मनुष्यों के लिए कही गई हैं ।

रामः—भगवन्! वाशब्देनावगतमन्यदप्यस्तीति।
रावणः—अस्ति प्रभावसम्पाद्यम्।
रामः—भगवन्! एष एव मे निश्चयः।

उभयस्यास्ति सान्निध्यं यदेतत् साधयिष्यति।
धनुर्वा तपसि श्रान्ते श्रान्ते धनुषि वा तपः॥९॥

नास्ति ['शाकाख्यं पत्रपुष्पादि' इत्यमरः], तथाचात्र कलायशब्देन कालशाकं कवेर्विवक्षितं मन्तव्यम्। कालशाकप्रदानस्य श्राद्धे माहात्म्यमपि स्मर्यते—'आनन्त्याय भवेद्दत्तं खड्गमांसं पितृक्षये। कालशाकं च लौहं चाप्यानन्त्यं छाग उच्यते॥' (महा० अनुशा० ८८, १०)। **महाशफरः** मत्स्यविशेषः। **वार्ध्रीणसः** पक्षिविशेषः। तदुक्तं कालिकापुराणे—'नीलग्रीवो रक्तशीर्षः कृष्णपादः सितच्छदः। वार्ध्रीणसः स्यात् पक्षीशो मम विष्णोरतिप्रियः॥' (अध्याय ६६)। **खड्गः** गण्डकः।

भगवन्निति—'खड्गो वा' इति भवदुक्तो वाशब्दोऽनुक्तसमुच्चयार्थः। तेन विज्ञायते दर्भादिभ्योऽन्येऽपि सन्ति श्राद्धे देयाः पदार्था इति भावः। **अस्तीति—प्रभावसम्पाद्यम्** प्रभावेण स्वतेजसा, सम्पाद्यम् अर्जयितुं शक्यम्। स्वतेजोविशेषार्जितेन पदार्थेनापि पितरो निरतिशयं तृप्यन्तीति भावः। **भगवन्नेष एवेति**—स्वतेजोर्जितेन पदार्थेनैव पितॄंस्तर्पयिष्यामीत्येव मे निश्चय इति भावः।

"**उभयस्ये**"ति—**यत्** साधनम्, **एतद्** मदभिलषितं प्रभावसम्पाद्यम्, **साधयिष्यति,** तस्य **उभयस्य** तपोरूपस्य धनूरूपस्य च साधनद्वयस्य, **सान्निध्यम्** सन्निधानम्, **अस्ति** मयि विद्यते। किं तत् साधनद्वयमित्याकाङ्क्षायामाह—**धनुरि**ति। **तपसि** तपोबले, **श्रान्ते** कार्यं कर्तुमसमर्थे सति, **धनुर्वा** कार्मुकं वा, प्रभावसम्पाद्यं साधयिष्यति। **धनुषि,**

राम—भगवन्! 'वा' शब्द से प्रतीत होता है कि कोई और भी वस्तु है।
रावण—हाँ, है। किन्तु उसे कोई बड़ा तेजस्वी ही प्राप्त कर सकता है।
राम—यही (प्राप्त कर पितृ-समर्पण करने का) मेरा निश्चय भी है।

—दोनों ही (एक दूसरे से बढ़ चढ़ कर) साधन मेरे पास विद्यमान हैं, यदि ये उसे प्राप्त कर सकें। यदि तपोबल श्रान्त (असफल) हुआ तो धनुर्बल है और धनुर्बल श्रान्त रहा तो तपोबल है॥९॥

---

१ यद्येतत्,

रावणः—सन्ति । हिमवति प्रतिवसन्ति ।
रामः—हिमवतीति । ततस्ततः ।
रावणः—हिमवतः सप्तमे शृङ्गे प्रत्यक्षस्थाणुशिरःपतितगङ्गाम्बुपायिनो वैडूर्यश्यामपृष्ठाः पवनसमजवाः काञ्चनपार्श्वा नाम मृगाः, यैर्वैखानसवालखिल्यनैमिशीयाद्यो महर्षयश्चिन्तितमात्रोपस्थितविपन्नैः श्राद्धान्यभिवर्धयन्ति ।

आन्ते, तपो वा तत् सम्पादयिष्यति ['यवेतद्' इति पाठे तु—उभयस्य साधनद्वयस्य, सान्निध्यम्, सम्यस्ति, एतद् उभयं यदि साधयिष्यति प्रभावसम्पाद्यं तर्हि साधयत्विति व्याख्येयम्] ॥९॥

सन्तीति—प्रभावसम्पाद्यानि द्रव्याणीति शेषः । **हिमवत** इति—**प्रत्यक्षे**ति—प्रत्यक्षस्य, स्थाणोः महादेवस्य, शिरसः, पतितम्, गङ्गाया अम्बु जलम्, पिबन्तीति तादृशाः । **वैडूर्ये**ति—वैडूर्यवत् वैडूर्यमणिवत्, श्यामं पृष्ठं येषां तथाभूताः । **पवने**ति—पवनेन वायुजवेनेत्यर्थः, समः तुल्यः, जवः वेगः येषां तादृशाः । **काञ्चनपार्श्वाः** दक्षिणवामपार्श्वयोः काञ्चनवर्णतया काञ्चनपार्श्वनाम्ना विख्याताः । **वैखानसे**ति—वैखानसाख्या वानप्रस्थाः, वालखिल्या अङ्गुष्ठोदरप्रमाणा ऋषिविशेषाः । अथवा वालखिल्याख्या वानप्रस्थाः, नैमिशीयाः नैमिशारण्यवासिनः, एते आदयः येषां ते । **चिन्तिते**ति—चिन्तितमात्रेण चिन्तयैव उपस्थिता विपन्नाश्च मृताश्च तैः [स्नातानुलिप्तवत् समासः । उपर्युक्तवैखानसादीनां चिन्तामात्रेणैव काञ्चनपार्श्वा मृगास्तत्सन्निधावुपतिष्ठन्ते

रावण—हैं, किन्तु हिमालय पर रहते हैं ।
राम—हिमालय पर ? तब फिर ?
रावण—हिमालय के सातवें शिखर पर, साक्षात् महादेव जी के मस्तक से गिरने वाली गङ्गा के जल को पीने वाले, वैडूर्य-मणि के समान साँवली पीठ वाले तथा वायु के समान वेग वाले काञ्चन-पार्श्व नाम के मृग रहा करते हैं; वैखानस, वालखिल्य, नैमिषारण्यवासी आदि महर्षि लोग ध्यान-मात्र से ही आ उपस्थित हो मारे गये जिन मृगों से श्राद्ध किया करते हैं ।

---

१ 'वानप्रस्थश्चतुर्भेदो वैखानस उदुम्बरः ।
वालखिल्यो वनेवासी तल्लक्षणमथोच्यते ॥' (बृहत्पराशरसंहिता)

तैस्तर्पिताः सुतफलं पितरो लभन्ते
हित्वा जरां स्वमुपयान्ति हि दीप्यमानाः।
तुल्यं सुरैः समुपयान्ति विमानवास-
मावर्तिभिश्च विषयैर्न बलाद् ध्रियन्ते ॥१०॥

रामः—मैथिलि !

आपृच्छ पुत्रकृतकान् हरिणान् द्रुमांश्च
विन्ध्यं वनं तव सखीर्दयिता लताश्च।

स्वयमेव म्रियन्ते न ऋषिभिस्ते हिंस्यन्ते इति भावः। परमिदं सर्वमस्वाभाविकं विद्याविरुद्धं च। न हि हिमालयस्य शीतप्राये सप्तमे शृङ्गे मृगाणां संभवः। सन्तु वा तत्र शैत्यजीविनो मृगविशेषाः, परन्तु स्वयं मृतैः पशुशवैः श्राद्धं न क्वचिदपि विधीयते। न वा शिष्टाचारसिद्धमेतत्, प्रत्युत सद्भिर्गर्हितम्। नचेयं रामप्रतारणाय रावणोक्तिरिति न दोष इति वाच्यम्, अनैसर्गिकेऽप्रामाणिकेऽपि वस्तुनि रामस्य मात्रयापि सन्देहोदयस्यावर्णनाद् दोषतादवस्थ्यात्]। अभिवर्धयन्ति ऋद्ध्या सम्पादयन्तीत्यर्थः।

"तै"रिति—तैः काञ्चनपार्श्वमांससम्पादितैः श्राद्धैः, तर्पिताः प्रीणिताः, **पितरः**, **सुतफलम्** पुत्रोत्पादनप्रयोजनं नरकनिवृत्तिरूपम्, **लभन्ते** प्राप्नुवन्ति। **जराम्** जीर्णावस्थाम्, **हित्वा** त्यक्त्वा, **दीप्यमानाः** युवान इव भ्राजमानाः, **स्वम्** स्वर्गम्, **उपयान्ति** गच्छन्ति। हि निश्चयेन। अमरत्वमधिगच्छन्तीत्यर्थः। **सुरैः तुल्यम्** देववत्, **विमानवासम्** व्योमयानारोहणम्, **समुपयान्ति** प्राप्नुवन्ति। **किञ्च**, **आवर्तिभिः** आवर्तयन्तीत्यावर्तिनः, तैः जन्ममरणचक्रभ्रामकैः, **विषयैः** शब्दादिभिः, **बलाद्** हठाद्, **न ध्रियन्ते** न वशीक्रियन्ते। अतः पितृश्राद्धं चिकीर्षता त्वया काञ्चनपार्श्वप्राप्तियत्नो विधेय इति भावः। काञ्चनपार्श्वप्राप्तियत्ने प्रस्तुते तत्फलस्याप्रस्तुतस्य वर्णनादप्रस्तुतप्रशंसा। वसन्ततिलकम् ॥१०॥

रावणमुखाद् हिमगिरौ श्राद्धसम्पद्भूतकाञ्चनपार्श्वमृगसत्तामाकर्ण्य तल्लिप्सया तत्र वस्तुकामो रामः सीतां स्वप्रियवर्गादनुज्ञां याचितुमादिशति—

—उन काञ्चन-मृगों से तृप्त किये गये पितर पुत्र-फल को पाते हैं और बुढ़ापा त्याग देदीप्यमान होकर वे सीधे स्वर्ग को चले जाते हैं तथा वहाँ वे देवताओं के साथ विमानों में वास करते हैं और फिर आवागमन के फेर में डालने वाली विषय-वासनाओं से बल-पूर्वक आकर्षित नहीं किये जाते ॥१०॥

वत्स्यामि तेषु हिमवद्गिरिकाननेषु
दीप्तैरिवौषधिवनैरुपरञ्जितेषु ॥११॥

सीता—जं अय्यउत्तो आणवेदि।
यदार्यपुत्र आज्ञापयति।

रावणः—कौसल्यामात ! अलमतिमनोरथेन। न ते मानुषै-
र्दृश्यन्ते।

“आपृच्छे”ति। **मैथिलि !** हे सीते, त्वम्, **तव** आत्मनः, **पुत्रकृतकान्** कृत्रिमपुत्रान् [पुत्राः कृता इति पुत्रकृताः, त एव पुत्रकृतकाः, इति विग्रहः] पुत्रतया लालितानिति भावः, **हरिणान्** मृगान्, **द्रुमांश्च** पादपांश्च, **विन्ध्यं वनम्** विन्ध्यारण्यम्, **दयिताः** अतिप्रेयसीः, **सखीः** सखीरूपाः, **लताश्च** वल्लरीश्च, **आपृच्छ** आपृच्छस्व आमन्त्रयस्व, तेभ्यः इतः प्रस्थातुमनुज्ञां याचस्वेति भावः। अहम्, **दीप्तैरिव** ज्वलद्भिरिव, **ओषधिवनैः** ओषधिसमूहैः, **उपरञ्जितेषु** प्रकाशितेषु, **तेषु** काञ्चनपार्श्ववत्सु, **हिमगिरिकाननेषु** हिमगिरेः हिमालयपर्वतस्य, काननेषु अरण्येषु, **वत्स्यामि** वासं करिष्यामि। वसन्ततिलकम् ॥११॥

रामो मच्छद्मवागुरानिपतितः काञ्चनपार्श्वलोभेन सीतामत्रैव विहाय लक्ष्मणसहायो हिमगिरिं प्रति प्रतिष्ठेत, अहं चैकाकिनीं सीतामपहरेयम्। परन्तु न स सीतां त्यक्तुमिच्छति, अपि तु तया सहैव गन्तुमिच्छति, तथा च न सिध्यति मे सीताहरणमनोरथ इति हेतो रावणस्तमुपायान्तरेण वञ्चयितुकामो हिमगिरिगमनाद् वारयति—**कौसल्यामाते**ति। **अति-मनोरथेन** अतिशयितेन सीमामतिक्रान्तेन मनोरथेन, **अलम्**, एतादृशो मनोरथो न कर्तव्यो योऽतिदुर्लभ इति भावः। **ते** काञ्चनपार्श्वमृगाः।

यदि सन्ति कुतो न दृश्यन्ते इति शङ्कमानो रामः पुनरपि हिमगिरौ

राम—मैथिली !

—अपने पुत्र-तुल्य प्यारे हरिणों, वृक्षों, विन्ध्याचल के वन और अपनी प्यारी सहेली लताओं से अब तुम बिदा हो लो। मैं अब अग्नि के सदृश जलते हुए-से ओषधि-वनों से जगमगा रहे हिमालय के उन निराले वनों में जा बसूँगा ॥११॥

सीता—जो आर्यपुत्र की आज्ञा।

रावण—कौसल्यानन्दन ! बस, अति मनोरथ मत करो। काञ्चन-मृग मनुष्यों के दृष्टिगोचर नहीं हुआ करते।

रामः—भगवन् ! किं हिमवति प्रतिवसन्ति ।
रावणः—अथकिम् ।
रामः—तेन हि पश्यतु भवान् ।

सौवर्णान् वा मृगांस्तान् मे हिमवान् दर्शयिष्यति ।
भिन्नो मद्बाणवेगेन क्रौञ्चत्वं वा गमिष्यति ॥१२॥

रावणः—[स्वगतम्] अहो असह्यः खल्वस्यावलेपः ।[1] [प्रकाशम्] अये विद्युत्सम्पात इव दृश्यते । कौसल्यामात ! इह-

---

काञ्चनपार्श्वमृगाणां वासविषये पृच्छति—**भगवन्निति** । किं वस्तुतस्ते तत्र निवसन्तीति भावः । रावणो हिमगिरौ काञ्चनमृगवासं स्वीकरोति—**अथ किमिति** । **तेन हीति**—यदि सन्ति काञ्चनपार्श्वमृगास्तत्र, तर्हीत्यर्थः । **भवान् पश्यतु** निश्चिनोत्वित्यर्थः ।

किं पश्यामीत्याकाङ्क्षायामाह—"**सौवर्णान्**" इति । **हिमवान्** हिमालयः, **तान्** त्वद्वर्णितान्, **सौवर्णान्** सुवर्णमयान् काञ्चनपार्श्वान् [सौवर्णशब्दे स्वर्णशब्दाद् वैकारिकोऽण्, ऐजागमश्च],**मृगान्** , **मे** मह्यम् [क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानमिति सम्प्रदाने चतुर्थी],**दर्शयिष्यति वा**, **मद्बाणवेगेन** मम रघुकुलजातस्य दशरथसुतस्य रामस्य, बाणस्य शरस्य, वेगेन, **भिन्नः** विशीर्यमाणः सन्, **क्रौञ्चत्वम्** क्रौञ्चपर्वतसादृश्यमित्यर्थः, **गमिष्यति** प्राप्स्यति वा ।

यदि हिमवान् स्वस्मिन् विद्यमानानपि काञ्चनपार्श्वान् न मे दर्शयिष्यति तर्हि यथा कार्त्तिकेयः परशुरामश्च क्रौञ्चनामकं पर्वतं स्वबाणैस्तिलशश्चक्रतुः, तथैवाहमपि हिमवन्तं करिष्यामि इति भावः । विकल्पालङ्कारः । तदुक्तं कुवलयानन्दे—'विरोधे तुल्यबलयोर्विकल्पालङ्कृतिर्मता' इति । क्रौञ्चत्वं गमिष्यतीत्यत्रान्यधर्मस्यान्येनाधारणात् सादृश्ये पर्यवसानमिति निदर्शना च ॥१२॥

अहो इति—**असह्यः** अमर्षणीयः । **अवलेपः** गर्वः । रावणः स्वमा-

---

राम—भगवन् ! क्या वे हिमालय पर रहते तो हैं न ?
रावण—हाँ, रहते तो हैं ।
राम—तब तो आप निश्चित जानिए ।

—हिमालय या तो स्वयं उन काञ्चन-मृगों को मुझे ला दरसायगा या मेरे प्रचण्ड बाणों से विदीर्ण हो क्रौञ्च-पर्वत की दशा को प्राप्त होगा ॥१२॥

रावण—[स्वगत] ओह ! इसका दुर्दर्प तो सहारा नहीं जाता । [प्रकट]

---

[1] एतदग्रे—'रामः—[दिशो विलोक्य] अयं विद्युत्सम्पात इव दृश्यते । रावणः—कौसल्यामात' इति क्वचित्पाठः ।

स्थमेव भवन्तं पूजयति हिमवान्। एष काञ्चनपार्श्वः।

रामः—भगवतो वृद्धिरेषा।

सीता—दिट्ठिआ अय्यउत्तो वड्ढइ। दिष्ट्यार्यपुत्रो वर्धते।

रामः—न न,

तातस्यैतानि भाग्यानि यदि स्वयमिहागतः।

अर्हत्येष हि पूजायां लक्ष्मणं ब्रूहि मैथिलि! ॥१३॥

सीता—अय्यउत्त! णं तित्थअत्तादो उवावत्तमाणं कुलवदिं पच्चुग्गच्छेहित्ति सन्दिट्ठो सोमित्ती।

यया काञ्चनमृगमुद्भाव्य राममभिमुखीकर्तुमाह—**अये** इति। **कौसल्यामातेति**—हे राम! भवत्पराक्रमभीतो हिमवान् काञ्चनपार्श्वमृगमिहैव प्रहितवानिति भावः।

भगवत इति—**वृद्धिः** माहात्म्यम्। भवन्माहात्म्येनैवेह स्थितस्य मे काञ्चनपार्श्वमृग उपनत इति भावः। **दिष्ट्येति**—**दिष्ट्येति** हर्षसूचकमव्ययम्। वर्धनमत्र अनायासेन काञ्चनमृगप्राप्तिरूपोऽभ्युदयः। **न नेति**—नेयं मम वृद्धिः।

किं तर्हीत्याह—"**तातस्ये**"ति। **एतानि**, **तातस्य** पितुः, **भाग्यानि** भागधेयानि, सन्ति, **यदि** यदित्यर्थः, **इह** मदन्तिके, काञ्चनपार्श्वः, **स्वयम्** आत्मनैव, **आगतः** समुपस्थितः। अन्यथा सुदूरवर्तिनि दुर्गमे हिमवतः सप्तमे श्रृङ्गे वर्तमानस्यास्येहानायासेन दर्शनं मानवदुर्लभमिति भावः। **एषः** मृगः, **पूजायाम्** पितृश्राद्धलक्षणायाम्, **अर्हति** श्राद्धसम्पद्रूपेण अपेक्ष्यते इत्यर्थः। **मैथिलि** हे सीते!, **लक्ष्मणम्**, **ब्रूहि** आदिश, एतं मृगमानेतुमिति शेषः ॥१३॥

अरे! बिजली की चमचमाहट-सी दीख रही है। कौसल्यानन्दन! लो, हिमालय तुम्हारे यहीं बैठे बैठे ही तुम्हारी पूजा करने लगा। देखो, यह रहा काञ्चन-पार्श्व।

राम—यह आप ही की अपार महिमा है।

सीता—अहोभाग्य! आर्यपुत्र बड़े भाग्यशाली हैं।

राम—नहीं, नहीं।

—ये तो पिता जी के सौभाग्य हैं, जो यह काञ्चन-पार्श्व स्वयं ही यहाँ आ पहुँचा। यह पूजा के योग्य है। मैथिली! लक्ष्मण से जा कहो ॥१३॥

सीता—आर्यपुत्र! आपने लक्ष्मण को तीर्थयात्रा से लौट रहे कुलपति की अगवानी (आगे जाकर स्वागत-सत्कार) करने (के लिए) जो भेजा है!

आर्यपुत्र ! ननु तीर्थयात्रात उपावर्तमानं कुलपतिं प्रत्युद्गच्छेति सन्दिष्टः सौमित्रिः।

रामः—तेन हि अहमेव यास्यामि।

सीता—अय्यउत्त ! अहं किं करिस्सं।

आर्यपुत्र ! अहं किं करिष्यामि।

रामः—शुश्रूषस्व भगवन्तम्।

सीता—जं अय्यउत्तो आणवेदि।

यदार्यपुत्र आज्ञापयति।

[निष्क्रान्तो रामः]

रावणः—अये अयमर्घ्यमादायोपसर्पति राघवः। एष इदानीं पूजामनवेक्ष्य धावन्तं मृगं दृष्ट्वा धनुरारोपयति राघवः।

आर्यपुत्रेति—उपावर्तमानम् प्रतिनिवर्तमानम्। **कुलपतिम्**[1] रामतपोवनाधिष्ठातारमत्रिनामकमृषिम्। **प्रत्युद्गच्छ** प्रत्युद्गमनेन सम्मानय। **सन्दिष्टः** आदिष्ट इति भावः। लक्ष्मणो भवदाज्ञया तीर्थयात्रां कृत्वा निवर्तमानं कुलपतिं प्रत्युद्गन्तुं गतः, स नास्त्यत्रेति भावः। **तेन हीति**—मृगमानेतुमिति शेषः। **आर्यपुत्रेति**—अत्रान्तरे मया किमनुष्ठातव्यमिति भावः। **अये** इति—कतिचित्क्षणपूर्वमयमेव राघवोऽर्घ्यमुदकमादाय मां परिचरितुं प्रवर्तते स्म। परमिदानीं पूजामुपेक्ष्य धावन्तं मृगं दृष्ट्वा तं हन्तुं कार्मुकमधिज्यं करोति इति भावार्थः। चित्तवृत्तयः प्रतिक्षणं परिवर्तनशीला इति भावः।

राम—तब तो मैं ही जाऊँगा।

सीता—आर्यपुत्र ! मैं क्या करूँगी ?

राम—महाभाग की शुश्रूषा करो।

सीता—जो आर्यपुत्र की आज्ञा।

[राम का प्रस्थान]

रावण—अहो ! अभी तो यह राम मेरे लिए अर्घ लिये आ रहा था और देखो, अभी यह पूजा की उपेक्षा कर भागे जा रहे काञ्चन-मृग को देख धनुष पर बाण चढ़ाने लगा।

---

१ कुलपतिलक्षणं यथा—'मुनीनां दशसाहस्रं योऽन्नदानादिपोषणात्। अध्यापयति विप्रर्षिरसौ कुलपतिः स्मृतः॥' इति। तत्र कुलपतिरत्रिरासीदित्यत्र प्रमाणं यथा—'एते ते तापसा देवि दृश्यन्ते तनुमध्यमे। अत्रिः कुलपतिर्यत्र सूर्यवैश्वानरोपमः॥' (युद्धकाण्ड अ० १२३, ४७, ४८)

अहो बलमहो वीर्यमहो सत्त्वमहो जवः ।
राम इत्यक्षरैरल्पैः स्थाने व्याप्तमिदं जगत् ॥१४॥

एष मृगः एकप्लुतातिक्रान्तशरविषयो वनगहनं प्रविष्टः !

सीता—[आत्मगतम्] अय्यउत्तविरहिदाए भअं मे एत्थ उप्पज्जइ ।

आर्यपुत्रविरहिताया भयं मेऽत्रोत्पद्यते ।

रावणः—[आत्मगतम्]

माययापहृते रामे सीतामेकां तपोवनात् ।
हरामि रुदतीं बालाममन्त्रोक्तामिवाहुतिम् ॥१५॥

मृगहनने रामस्य पराक्रमं प्रशंसति रावणः—"**अहो**" इति । रामस्य, **अहो** आश्चर्यकरम्, **बलम्** शक्तिः ; **अहो**, **वीर्यम्** पराक्रमः ; **अहो**, **सत्त्वम्** धैर्यम् ; **अहो**, **जवः** वेगः, बाणे वेगयोजनमिति भावः । **राम इति अल्पैः** स्वल्पैः, **अक्षरैः** वर्णैः, **इदम्**, **जगद्** चराचरम्, **व्याप्तम्**, इति, **स्थाने** युक्तमेवेत्यर्थः । लोकोत्तरबलवीर्यादिमतो रामस्य सर्वजगत्-प्रसिद्धिरुचितैवेत्यर्थः ॥१४॥

एष इति—एकेत्यादि—एकेन एकमात्रेण, प्लुतेन उत्प्लवनेन, अतिक्रान्तः अतिलङ्घितः, शरस्य बाणस्य, विषयः गोचरो येन तादृशः । सकृत्प्लवनेनैव स तं देशं प्रापत्, यं बाणो न प्राप्तुं शक्नोतीत्यर्थः ।

"**मायये**"ति—**रामे**, **मायया** मायारचितेन हरिणेनेत्यर्थः, **अपहृते**

—अहा ! कैसा अतुल बल, कैसी अनुपम वीरता, कैसा लोकोत्तर पौरुष, और कैसा अद्भुत वेग (शरसन्धानत्वरा) है । 'राम' इन थोड़े से ही अक्षरों से यह सारा संसार व्याप्त हो रहा (त्रिभुवन गूँज रहा) है, यह उचित ही है ॥१४॥

वह देखो, मृग एक ही छलाँग में अपने आपको तीर के निशाने से बचा सघन वन में जा घुसा ।

सीता—[स्वगत] आर्यपुत्र से बिछुड़े अकेली मुझे यहाँ कुछ भय-सा लग रहा है ।

रावण—[स्वगत]

—माया के द्वारा राम के सु-दूर हटा देने पर निर्जन तपोवन से मैं अब इस रोती-विलपती सीता को, मन्त्रोच्चारण-रहित आहुति की भाँति, हर ले चलूँ ॥१५॥

सीता—जाव उडजं पविसामि । [गन्तुमीहते]
यावदुटजं प्रविशामि ।

रावणः—[स्वरूपं गृहीत्वा] सीते ! तिष्ठ तिष्ठ ।

सीता—[सभयम्] हं को दाणि अअं । हं क इदानीमयम् ।

रावणः—किं न जानीषे ।

युद्धे येन सुराः सदानवगणाः शक्रादयो निर्जिता
दृष्ट्वा शूर्पणखाविरूपकरणं श्रुत्वा हतौ भ्रातरौ ।

दूरं नीते सति, **एकाम्** एकाकिनीमसहायाम्, **रुदतीम्** अश्रूणि विमुञ्चतीम्, **बालाम्** मुग्धस्वभावाम्, **सीताम्**, **अमन्त्रोक्ताम्** मन्त्रोच्चारणरहिताम्, वेदाविहितां प्रतिषिद्धामिति वा [वचनम् उक्तम्, भावे क्तः, मन्त्रस्योक्तं मन्त्रोक्तम्, न मन्त्रोक्तं मन्त्रोच्चारणं यत्रेति विग्रहः । अथवा मन्त्रे उक्ता मन्त्रोक्ता वेदविहितेत्यर्थः । न मन्त्रोक्ता अमन्त्रोक्ता, तां वेदाविहितां प्रतिषिद्धामिति भावः], **आहुतिम्** हवनीयद्रव्यमिव, **तपोवनाद्** तपश्चर्यारण्याद्, **हरामि** अपनयामि । उपमालङ्कारः ॥१५॥

स्वरूपमिति—**स्वरूपं गृहीत्वा** परिव्राजकवेषं परित्यज्य वास्तवं स्वस्वरूपं प्रकटय्येत्यर्थः ।

"**युद्ध**" इति—**विशालनयने** [विशाले नयने यस्यास्तादृशि] हे विस्तृतलोचने ! **येन** मया, **सदानवगणाः** दानवगणसहिताः, **शक्रादयः** इन्द्रादयः, **सुराः** देवाः, **युद्धे** सङ्ग्रामे, **निर्जिताः** निःशेषेण पराभूताः, **सः** प्रसिद्धः, **अहम्**, **रावणः** स्वशत्रूणां रावयितृतया रावणनाम्ना ख्यातः, **शूर्पणखाविरूपकरणम्** शूर्पणखायाः शूर्पवन्नखानि यस्यास्तादृश्याः शूर्पणखानाम्न्याः स्वभगिन्याः ['पूर्वपदात् संज्ञायामग' इति णत्वम्] विरूपकरणम् नासिकाच्छेदेन वैरूप्यकरणम्, **दृष्ट्वा**, **भ्रातरौ** खरदूषणाख्यौ, **हतौ** रामेण मारितौ, **श्रुत्वा**, **दर्पाद्** अभिमानाद्, **दुर्मतिम्**

सीता—तब तक पर्ण-कुटी के भीतर जा बैठूँ । [जाना चाहती है]

रावण—[अपना असली रूप धारण कर] सीता ! ठहरो, ठहरो ।

सीता—[भयभीत होकर] हुँ ! अब यह कौन प्रकट हुआ ?

रावण—क्या नहीं जानती ?

—जिसने संग्राम में समस्त दानवों-सहित इन्द्र आदि देवताओं को जीता, मैं वही रावण, नाक काटकर शूर्पणखा का विरूप किया जाना देख

दर्पाद् दुर्मतिमप्रमेयबलिनं रामं विलोभ्य च्छलैः
स त्वां हर्तुमना विशालनयने ! प्राप्तोऽस्म्यहं रावणः ॥१६॥

सीता—हं लावणो णाम । [प्रतिष्ठते] हं रावणो नाम ।

रावणः—आः रावणस्य चक्षुर्विषयमागता क यास्यसि ।

सीता—अय्यउत्त ! परित्ताआहि परित्ताआहि । सोमित्ती ! परित्ताआहि परित्ताआहि ।
आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व । सौमित्रे ! परित्रायस्व परित्रायस्व ।

रावणः—सीते ! श्रूयतां मत्पराक्रमः ।

भग्नः शक्रः कम्पितो वित्तनाथः
क्रुष्टः सोमो मर्दितः सूर्यपुत्रः ।

दुष्टबुद्धिम्, **अप्रमेयबलिनम्** [अप्रमेयं बलमस्यास्तीति तादृशम्, 'अत इनिठनौ' । न कर्मधारयाद् मत्वर्थीयो बहुव्रीहिश्चेत्तदर्थप्रतिपत्तिकर इति तु प्रायिकम्] अनन्तबलशालिनम्, अपि, **रामम्**, **छलैः** मायानिर्मित-काञ्चनमृगादिरूपैरछद्मभिः, **विलोभ्य** लोभयित्वा, काञ्चनमृगप्रलोभनेनेतो दूरं नीत्वेत्यर्थः, **त्वाम्** सीताम्, **हर्तुमनाः** हर्तुं मनो यस्य तादृशः ['तुं काममनसोरपि' इति तुमनो मलोपः] अपजिहीर्षुः, सन्, इह वने, **प्राप्तोऽस्मि** । हे सुन्दरि ! दर्पदुर्मतिस्ते भर्ता शक्रादीनामपि विजेतुर्मम महान्तमपकारमकरोत् । मम भगिनीं शूर्पणखां स्वानुजेन विरूपामचीकरत् । भ्रातरौ खरदूषणौ हतवान् । अतस्तदपकारं निर्यातयितुकामो मायामयमृगो-द्भावनेन त्वद्भर्तारं प्रतार्य त्वां हर्तुमायातोऽस्मीति भावः । सीताहरणोद्योगस्य हेतुभिः समर्थनात् काव्यलिङ्गम् । शार्दूलविक्रीडितम् ॥१६॥

"भग्न" इति—**शक्रः** इन्द्रः, **भग्नः** परिभूतः, **वित्तनाथः** कुबेरः,

---

और खर-दूषण भाइयों का मारा जाना सुन अहंकार के कारण दुर्मति हुए अतुलबलशाली राम को छल-प्रपञ्चों से सु-दूर बहकाकर हे विशाल नेत्रों वाली ! तुझे हर ले जाने आ पहुँचा ॥१६॥

सीता—हुँ ! क्या रावण ? [चल पड़ती है]

रावण—आः ! रावण के दृष्टिगोचर हो जाने पर जायगी ही कहाँ ?

सीता—आर्यपुत्र ! रक्षा करो, रक्षा करो। सामित्रि ! रक्षा करो, रक्षा करो।

रावण—सुन मेरे पराक्रम को ।

—मैंने देवराज इन्द्र को पछाड़ा है, धनपति कुबेर को कम्पायमान किया

धिग् भोः स्वर्गं भीतदेवैर्निविष्टं
धन्या भूमिर्वर्तते यत्र सीता ॥१७॥

सीता—अय्यउत्त ! परित्ताआहि परित्ताआहि । सोमित्ती ! परित्ताआहि परित्ताआहि मं ।

आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व । सौमित्रे ! परित्रायस्व परित्रायस्व माम् ।

रावणः—

रामं वा शरणमुपेहि लक्ष्मणं वा
स्वर्गस्थं दशरथमेव वा नरेन्द्रम् ।

कम्पितः भयेन वेपितः, **सोमः** चन्द्रमाः, **कृष्टः** स्वभृत्यतां नीत्वा अपकर्षं नीतः [सोमो ब्रह्मेति गणपतिशास्त्रिणः], **सूर्यपुत्रः** यमः, **मर्दितः** भग्नमानः कृत इत्यर्थः । **भोः**, **भीतदेवैः** भीतैः मत्सकाशाद् भीतैः, देवैः इन्द्रादिभिः, **निविष्टम्** अधिष्ठितम्, **स्वर्गम्**, धिक् गर्हितमित्यर्थः । **भूमिः** इयं पृथिव्येव, **धन्या** स्तुत्या, **यत्र**, **सीता**, **वर्तते** विद्यते । हे सीते ! शक्रादयः सर्वे सुरा मया धर्षिताः । स्वर्गे विद्यमाना अपि ते सदा मत्सकाशाद् बिभ्यति । अतो वीरोऽहं त्वदनुरागपात्रतां दधे । त्वया मय्यनुरञ्जनीयम् । हे सुन्दरि ! त्वद्विवर्जितं क्लीबकल्पैर्देवैरधिष्ठितं स्वर्गमहं न रोचये । इयं भूमिरेव धन्या या त्वयाऽलङ्क्रियत इति भावः । अत्र रावणनिष्ठा सीताविषयिणी रतिर्व्यज्यते, साचाननुरक्तविषयकत्वाद्विप्रलम्भाभासः । तदुक्तं मम्मटेन—'तदाभासा अनौचित्यप्रवर्तिताः' इति । शालिनीवृत्तम् ॥१७॥

"**राममि**"ति—**रामम्** वा, **लक्ष्मणम्** वा, **स्वर्गस्थम्** स्वर्गे स्थितम्, **नरेन्द्रम्** **दशरथमेव** वा, **शरणम्** रक्षितारम् ['शरणं गृह-

है, सोम को खींच लिया (अथवा—ब्रह्मा को घसीट दिया), और सूर्यतनय यमराज को कुचल डाला है । ओह ! धिक्कार है उस स्वर्ग को, जिसमें मुझसे भयभीत हुए देवता जा छिपे रहते हैं और यह धराधाम धन्य है, जहाँ सुन्दरी सीता है ॥१७॥

सीता—आर्यपुत्र ! रक्षा करो, रक्षा करो । लक्ष्मण ! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो ।

रावण—चाहे राम की शरण में जा, चाहे लक्ष्मण की, या चाहे साक्षात् स्वर्गवासी महाराज दशरथ की ही शरण ले; कायर पुरुषों को की गई

किं मे स्यात् कुपुरुषसंश्रितैर्वचोभि-
र्न व्याघ्रं मृगशिशवः प्रधर्षयन्ति ॥१८॥

सीता—अय्यउत्त ! परित्ताआहि परित्ताआहि । सोमित्ती ! परित्ताआहि परित्ताआहि मं ।

आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व । सौमित्रे ! परित्रायस्व परित्रायस्व माम् ।

रावणः—

विलपसि किमिदं विशालनेत्रे !
विगणय मां च यथा तवार्यपुत्रम् ।

रक्षित्रो'रित्यमरः], उपेहि उपयाहि । रामादीनां मध्ये यथेच्छं कमपि शरणं गच्छ, न ते त्वदपहरणाद् मां वारयितुं शक्नुवन्तीति भावः । **कुपुरुषसंश्रितैः** [कुपुरुषान् संश्रितानि, तैः । 'द्वितीयाश्रितातीत–' इत्यादिना समासः । 'कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणम्' इति संविशिष्टस्यापि समासः संगत एव] कुपुरुषान् कुत्सितान् रामादीन् पुरुषानुद्दिश्य कथितैः, **वचोभिः** 'आर्यपुत्र ! त्रायस्व' इत्यादिभिर्वचनैः, **मे** मम रावणस्य सकलभुवनजेतुः, **किं स्यात्** का हानिर्जायेत, न काऽपीत्यर्थः । **मृगशिशवः** हरिणशावकाः, **व्याघ्रम्, न प्रधर्षयन्ति** न पराभवन्तीत्यर्थः । यथा हरिणशावकानां व्याघ्रप्रधर्षणे शक्तिर्नास्ति, तथैव रामादीनां मत्प्रधर्षणे शक्तिर्नास्तीति भावः । अत्र 'किं मे स्यात्' 'न प्रधर्षयन्ति' इत्यनयोरर्थयोः पर्यवसाने भेदाभावाद् वस्तुप्रतिवस्तुभावः । अतः प्रतिवस्तूपमालङ्कृतिः । तदुक्तं कुवलयानन्दे—'वाक्ययोरेकसामान्ये प्रतिवस्तूपमा मता' । प्रहर्षिणीवृत्तम् ॥१८॥

"विलपसी"ति—**विशालनेत्रे** ! हे दीर्घलोचने ! **इदम्, किम्**

पुकारों से मेरा क्या-कुछ बिगाड़ हो जायगा ? मृगों के बच्चे सिंह का पराभव नहीं कर सकते ॥१८॥

सीता—आर्यपुत्र ! रक्षा करो, रक्षा करो । लक्ष्मण ! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो ।

रावण—हे विशालनयनी ! क्यों तुम यह वृथा विलाप कर रही हो ? अब तो अपने आर्यपुत्र की भाँति मुझे समझा करो । वह राम प्रचुर बल से

---

१ 'किं मन्त्या' इति 'किंमिथ्यैः' इति चापपाठौ ।

विपुलबलयुतो ममैष योद्धुं
ससुरगणोऽप्यसमर्थ एव रामः ॥१९॥

सीता—[सरोषम्] सत्तो सि । शप्तोऽसि ।

रावणः—हहह । अहो पतिव्रतायास्तेजः ।

योऽहमुत्पतितो वेगान्न दग्धः सूर्यरश्मिभिः ।
अस्याः परिमितैर्दग्धः शप्तोऽसीत्येभिरक्षरैः ॥२०॥

किमर्थम्, विलपसि परिदेवनं करोषि ? त्वम्, यथा तव स्वकीयमित्यर्थः, आर्यपुत्रम् रामम्, विगणयसि तथैव, माम् रावणम्, विगणय्य बुध्यस्व [सीते ! त्वं व्यर्थमेव परित्राणार्थं विलपसि, रामलक्ष्मणयोरभावेऽपि तव किमपि दुःखं न स्यात् । यथा त्वं रामं स्वभर्तारं मन्यसे तथैव मां स्वभर्तारं मन्यस्वेति रावणस्य हृदयम्] । त्वदाक्रन्दनं श्रुत्वा समुपस्थितोऽपि रामो न मे किमपि कर्तुं समर्थ इत्याह—विपुलेत्यादि । विपुलबलयुतः विपुलेन भूयसा, बलेन सैन्येन, युतः युक्तः, ससुरगणोऽपि तत्साहाय्यार्थमुपस्थितैः सुरगणैः सहितोऽपि, एषः, रामः, मम मया सहेत्यर्थः [सम्बन्धसामान्ये षष्ठी], योद्धुम् युद्धं कर्तुम्, असमर्थ एव अशक्त एव [अथवा मम असमर्थ एवेति योजना, ममाग्रे असमर्थ एवेत्यर्थः] । विपुलबलस्य ससुरगणस्याप्यसामर्थ्यवचनाद् विशेषोक्तिः । पुष्पिताग्रा ॥१९॥

शत्त इति—शप्तः दत्तशाप इत्यर्थः । हहहेति—सोल्लुण्ठोक्तिरियं रावणस्य ।

"योऽहमि"ति—यः, अहम् रावणः, वेगाद्, उत्पतितः उड्डीयाकाशं गतोऽपि, सूर्यरश्मिभिः सूर्यकिरणैः, न दग्धः न भस्मसात्कृतः, सोऽहम्, इदानीम्, परिमितैः परिच्छिन्नैः अल्पैरित्यर्थः, अस्याः अनयोच्चारितैरित्यर्थः, 'शप्तोऽसि' इति, अक्षरैः वर्णैः, दग्धः स्याम् किम् ?

युक्त हो तथा सम्पूर्ण देवताओं के सहित भी मुझसे युद्ध करने में असमर्थ ही है ॥१९॥

सीता—[क्रोध से] मैंने तुझे शाप दिया !

रावण—अह-ह-ह ! वाह रे पतिव्रता के तेज !

—जो मैं, वेग से आकाश में उड़ता हुआ सूरज की किरणों से तो भस्म नहीं हुआ; वही मैं आज तेरे 'तुझे शाप दिया' इन दो नपे-तुले अक्षरों से जलकर भस्म हुआ ! ॥२०॥

सीता—अय्यउत्त ! परित्ताआहि परित्ताआहि ।
आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व ।

रावणः—[सीतां गृहीत्वा] भो भो ! जनस्थानवासिनस्तपस्विनः ! शृण्वन्तु शृण्वन्तु भवन्तः ।

बलादेष दशग्रीवः सीतामादाय गच्छति ।
क्षात्रधर्मे यदि स्निग्धः कुर्याद् रामः पराक्रमम् ॥२१॥

सीता—अय्यउत्त ! परित्ताआहि परित्ताआहि ।
आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व ।

रावणः—[परिक्रामन् विलोक्य] अये स्वपक्षपवनोत्क्षेपक्षुभितवनषण्डश्चण्डचञ्चुरभिधावत्येष जटायुः । आः तिष्ठेदानीम् ।

अथवा दग्धोऽसीत्युपहासः । सूर्यरश्मयोऽपि यत्र कुण्ठिता भवन्ति, तत्र त्रीणि अक्षराणि तथा स्युरिति किमु वक्तव्यमिति कैमुतिकन्यायेन काव्यार्थापत्तिः ॥२०॥

भो भो इति—**जनस्थानम्** दण्डकारण्यम् ।

"**बलादि**"ति—**एषः** युष्माकं समक्षे स्थितः, **दशग्रीवः** दश ग्रीवा यस्य तादृशः, दशकण्ठो रावणः, **बलात्** प्रसह्य, **सीताम्**, **आदाय** गृहीत्वा, **गच्छति** याति । **यदि**, **रामः** सीतापतिः, **क्षात्रधर्मे** क्षत्रियाणां धर्मे युद्धे, **स्निग्धः** स्नेहवान्, अस्ति, तर्हि सः, **पराक्रमम्** सीतामोचनपौरुषम्, **कुर्यात्** ॥२१॥

अथ षष्ठाङ्के रावणजटायुषौ योधयिष्यन् कविः सीतामपहृत्य नयतो रावणस्य मुखेन वेगेनाभिधावन्तं जटायुषमुपक्षिपति—**अये** इति । **स्वपक्षेति**—

सीता—आर्यपुत्र ! रक्षा करो, रक्षा करो ।

रावण—[सीता को पकड़कर] हे जनस्थान में रहने वाले तपस्वि-जनो ! आप सुनिए, सुनिए ।

—रावण सीता को यह बलात् हर लिये जा रहा है । यदि क्षात्रधर्म में कुछ भी आस्था हो तो राम अपना पराक्रम कर दिखावे ॥२१॥

सीता—आर्यपुत्र ! रक्षा करो, रक्षा करो ।

रावण—[घूमकर, देखकर] अरे ! अपने पंखों की तेज वायु से सारे वनवृक्षों को कँपाता हुआ, प्रखर चोंच वाला यह जटायु मेरी ओर दौड़ा आ रहा है । आः ! ठहर अभी ।

मद्भुजाकृष्टनिस्त्रिंशकृत्तपक्षक्षतच्युतैः ।
रुधिरैरार्द्रगात्रं त्वां नयामि यमसादनम् ॥२२॥

[निष्क्रान्तौ]

पञ्चमोऽङ्कः ।

स्वपक्षयोः पवनेन उत्क्षेपः समूलमुत्पाट्योपरि क्षेपणम्, तेन क्षुभिता वनषण्डाः वृक्षसमूहा येन तादृशः । **चण्डचञ्चुः** चण्डा भीषणा तीक्ष्णा, चञ्चुः त्रोटिर्यस्य तादृशः ।

"मद्भुजे"ति—**मद्भुजाकृष्टनिस्त्रिंशकृत्तपक्षक्षतच्युतैः** मद्भुजेन मद्बाहुना, आकृष्टः कोशान्निष्कासितः निस्त्रिंशः खड्गः [निर्गतस्त्रिंशतोऽङ्गुलिभ्य इति विग्रहः । 'कुगतिप्रादय' इत्यनेन समासः] तेन कृत्तयोः छिन्नयोः, पक्षयोः [मूले], क्षतम् व्रणः, तस्मात् च्युतैः गलितैः, **रुधिरैः** रक्तैः, **आर्द्रगात्रम्** आर्द्राणि क्लिन्नानि, गात्राणि शरीरावयवा यस्य तादृशम्, **त्वाम्**, **यमसादनम्** यमालयम्, **नयामि** प्रापयामि, प्राणैर्वियोजयामीति भावः । रावणनिष्ठः क्रोधः स्थाय्यभिव्यज्यते ॥२२॥

इतिश्रीद्रोणाश्रमवास्तव्यश्रीमदच्युतानन्दशर्मतनुजन्म**श्रीपरमेश्वरानन्दशर्म**कृतायां प्रतिमानाटकव्याख्यायां पञ्चमोऽङ्कः समाप्तः ।

—अपनी भुजा द्वारा खींची हुई तेज तलवार से तेरे पंखों को काटकर घावों से बहते हुए रुधिर से सराबोर शरीर हुए तुझको यमलोक पहुँचाता हूँ ॥२२॥

[दोनों का प्रस्थान]

अथ षष्ठोऽङ्कः ।

[ततः प्रविशतो वृद्धतापसौ]

उभौ—परित्रायतां परित्रायतां भवन्तः !

प्रथमः—

इयं हि नीलोत्पलदामवर्चसा
मृणालशुक्लोज्ज्वलदंष्ट्रहासिना ।
निशाचरेन्द्रेण निशार्धचारिणा
मृगीव सीता परिभूय नीयते ॥१॥

अथ सीतामपहृत्य गच्छतो रावणस्य मध्येमार्गमुपस्थितेन जटायुषा संवृत्तं युद्धं सूचयितुं सीतापहारवृत्तान्तं श्रुतवतो भरतस्य रामसाहाय्यार्थं राजमण्डलोद्योजनाध्यवसायं च वर्णयितुं षष्ठमङ्कमारभते—**अथेति** । तत्र पूर्वं नाट्यनियमानुरोधेन रङ्गमञ्चेऽनभिनेयं रावणजटायुषोर्युद्धं विष्कम्भेन सूचयितुं वृद्धतापसौ प्रवेशयति—तत इति । **परित्रायतामिति**—**परित्रायताम्** रक्ष्यताम्, सीतेति शेषः [कर्मणि यक्] । **भवन्त** इति वनवासिनां सम्बोधनम् ।

"**इयम्**" इति—**इयम्** पुरोदृश्यमाना, **सीता, निशार्धचारिणा** निशार्धे निशीथे चरति भक्ष्यान्वेषणार्थं भ्रमतीति तादृशेन व्याघ्रादिना श्वापदेनेति यावत् [निर्जनसमयचारिणा चोरेणेत्यर्थ इति श्रीगणपतिशास्त्रिणः], **मृगीव** हरिणीव, **नीलोत्पलदामवर्चसा** नीलानाम् श्यामवर्णानाम्, उत्पलानाम् पयोजानाम्, दामवत् मालावत्, वर्चः कान्तिः, यस्य तादृशेन श्यामवर्णेनेत्यर्थः, **मृणालशुक्लोज्ज्वलदंष्ट्रहासिना**

छठा अंक

[दो वृद्ध तपस्वियों का प्रवेश]

दोनों—रक्षा करो, रक्षा करो, आप वनवासी लोग !

पहला—यह देखो, नील कमलों की माला के समान वर्ण वाले तथा हँसते समय कमल-नाल के समान सफ़ेद और चमकती दिखाई दे रही दाढ़ वाले निशाचारी राक्षसराज रावण द्वारा, सिंह से हिरनी की भाँति, सीता बल-पूर्वक हर ले जाई जा रही है ॥१॥

द्वितीयः—एषा खलु तत्रभवती वैदेही,

विचेष्टमानेव भुजङ्गमाङ्गना
विधूयमानेव च पुष्पिता लता ।
प्रसह्य पापेन दशाननेन सा
तपोवनात् सिद्धिरिवापनीयते ॥२॥

मृणालवद् बिसतन्तुवद्, शुक्ला शुभ्रवर्णा, उज्ज्वला कान्तिमती च दंष्ट्रा यस्मिन् कर्मणि यथा भवति तथा हसितुं शीलं यस्यास्ति तादृशेन [दंष्ट्रान्तं पदं तत्पुरुषद्वयगर्भो बहुव्रीहिः, क्रियाविशेषणं च । ततस्तस्मिन्नुपपदे हसतेर्णिनिः । यस्मिन् काले निशाचरेन्द्रो हसति व्याघ्रादिः श्वापदो वा जृम्भया मुखं व्याददाति तस्मिन् समये मृणालशुक्लोज्ज्वलास्तयोर्दंष्ट्रा दीप्यन्ते इति भावः । अथवा मृणालवत्, शुक्रवद् शुक्राख्यग्रहवच्चोज्ज्वलेति व्याख्येयम्], **निशाचरेन्द्रेण** निशाचराणाम् निशासु चरन्तीति निशाचरास्तेषाम् राक्षसानाम्, इन्द्रेण स्वामिना, रावणेन, **परिभूय** तिरस्कारपूर्वकम्, [तिरस्कारश्च सीतायाः, अपहारद्रष्टॄणां वा बोध्यः], **नीयते** अपोह्यते । उपमालङ्कारः । वंशस्थवृत्तम् ॥१॥

एषेति—**एषे**त्यादिपदसमूहो वक्ष्यमाणपद्यान्वयी ।

"**विचेष्टमानेव**" इति—**विचेष्टमाना** विविधं चेष्टमाना, **भुजङ्गमाङ्गनेव** भुजैर्गच्छतीति भुजङ्गमः ['गमेः सुपि वाच्यः' इति खच्] तस्याङ्गनेव स्त्रीव नागसुन्दरीवेत्यर्थः, **विधूयमाना** कम्प्यमाना, **पुष्पिता** कुसुमिता, **लतेव** वल्लरीव, स्थिता सा वैदेही, **पापेन** दुर्वृत्तेन, **दशाननेन** दशाननानि यस्य तादृशेन रावणेन, **तपोवनात्**, **सिद्धिरिव** तपःफलमिव, **प्रसह्य** बलात्, **अपनीयते** अपोह्यते । यथा विपत्पतिता काचिद् भुजङ्गी स्वविमोक्षणाय विविधं चेष्टते, यथा वा पवनादिना लता कम्पते तथैवेयं वैदेह्यपि रावणाक्रान्ता स्वविमोक्षणाय विचेष्टते, तद्भयेन कम्पते च । एतादृशीं सीतां रावणोऽपनयति । अत्र कविरुत्प्रेक्षते—मन्य इयं रावणेन मूर्तिमती तपःसिद्धिरेव तपोवनादपनीयत इति भावः । पूर्वार्धे मालोपमा । उत्तरार्धे उत्प्रेक्षा । तयोश्चान्योन्यानपेक्षणात् संसृष्टिः । वंशस्थं छन्दः ॥२॥

दूसरा—यह पूजनीया वैदेही,

—छटपटाती हुई सर्पिणी-सी, हिलाई जा रही पुष्पित लता-सी, पापी दशानन द्वारा तपोवन में से, तपस्या की फल-सिद्धि की भाँति, बल-पूर्वक हर ले जाई जा रही है ॥२॥

उभौ—परित्रायतां परित्रायतां भवन्तः ! ।

प्रथमः—[ऊर्ध्वमवलोक्य] अये वचनसमकाल एव दशरथस्या-
नृण्यं कर्तुं 'मयि स्थिते क यास्यसी'ति रावण-
माहूयान्तरिक्षमुत्पतितो जटायुः ।

द्वितीयः—एष रोषादुद्वृत्तनयनः प्रतिनिवृत्तो रावणः ।

प्रथमः—एष रावणः ।

द्वितीयः—एष जटायुः ।

उभौ—हन्तैतदन्तरिक्षे प्रवृत्तं युद्धम् ।

प्रथमः—काश्यप ! काश्यप ! पश्य क्रव्यादीश्वरस्य सामर्थ्यम् ।

पक्षाभ्यां परिभूय वीर्यविषयं द्वन्द्वं प्रतिव्यूहते
तुण्डाभ्यां सुनिघृष्टतीक्ष्णमचलः संवेष्टनं चेष्टते ।

अये इति—**वचनसमकाल एव** परित्रायतामित्यस्मद्वचनश्रवण-समनन्तरमेवेत्यर्थः । **आनृण्यम्** [न ऋणं यस्य सोऽनृणः, तस्य भावः, भावे ष्यञ्] प्रत्युपकारम्, स्वसुहृदो दशरथस्य स्नुषायाः सीतायाः निशाचर-हस्ताद् विमोचनलक्षणम् । **मयि** जटायुषि । **क यास्यसि** सीतामपहृत्य क गमिष्यसीत्यर्थः । **एष रोषादिति**—**उद्वृत्तनयनः** उद्वृत्ते नयने यस्य तादृशः, घूर्णमानचक्षुरित्यर्थः । **काश्यपेति**—काश्यपेति द्वितीयस्य तापसस्य नाम । **क्रव्यादीश्वरस्य** [क्रव्यम् आममांसमत्तीति क्रव्याद् । 'अदोऽनन्ने' इति विट्] क्रव्यादाम् गृध्राणाम्, ईश्वरः स्वामी जटायुः, तस्य ।

जटायुषः पराक्रमं वर्णयति—"**पक्षाभ्याम्**"इति । **पक्षाभ्याम्** स्वपार्श्वा-

---

दोनों—रक्षा करो, रक्षा करो, आप वनवासी लोग ।

पहला—[ऊपर की ओर देखकर] अरे ! ठीक हमारे कहते ही दशरथ के उपकारों का ऋण चुकाने 'मेरे रहते हुए तू कहाँ जायगा ?' इस तरह रावण को ललकार कर जटायु आकाश में उछल पड़ा ।

दूसरा—यह देखो, क्रोध में चूर हो आँखें तरेरता हुआ रावण पीछे की ओर लौट आया।

पहला—यह देखो, रावण ।

दूसरा—यह देखो, जटायु ।

दोनों—ओह-ओ ! आकाश में ही लड़ाई छिड़ गई ।

पहला—काश्यप ! काश्यप ! देखो, पक्षिराज जटायु के पराक्रम को ।

—किस प्रकार अपने पैने पंखों से रावण पर प्रहार करता हुआ

तीक्ष्णैरायसकण्टकैरिव नखैर्भीमान्तरं वक्षसो
वज्राग्रैरिव दार्यमाणविषमाच्छैलाच्छिला पाट्यते ॥३॥

द्वितीयः—हन्त संक्रुद्धेन रावणेनासिना क्रव्यादीश्वरः स दक्षिणांसदेशे हतः ।

उभौ—हा धिक् । पतितोऽत्रभवान् जटायुः ।

भ्याम्, **परिभूय** तिरस्कृत्य अभिहत्येत्यर्थः, **वीर्यविषयम्** वीर्यस्य शौर्यस्य, विषयम् गोचरम् पराक्रमप्रदर्शनैकाधारभूतमिति यावत्, **द्वन्द्वम्** द्वन्द्वयुद्धम्, **प्रतिव्यूहते** प्रतियुध्यते, जटायुरिति कर्तृपदमध्याहार्यम् [द्वन्द्वयुद्धे रावणकृतप्रहारविनिमये स्वपक्षाभ्यामाक्रम्य साधु तं प्रति प्रहरतीति भावः] । किञ्च **अचलः** पर्वत इव सुदृढः सन्, **तुण्डाभ्याम्** चञ्चूदलाभ्याम्, **सुनिघृष्टतीक्ष्णम्** सुष्ठु निघृष्टं निघर्षणयुक्तम्, तीक्ष्णं तीव्रतमं च यथा भवति तथा [क्रियाविशेषणमिदम्], **संवेष्टनम्** आवेष्टनम्, कर्तुम्, **चेष्टते** प्रयतते । चञ्चूपुटेन रावणं निघृष्य निगरणाय प्रबलमावेष्टितुं प्रयतत इति भावः । किञ्च **वज्राग्रैः** वज्रस्य इन्द्रायुधस्य, अग्रैः अग्रभागैः [दारणकरणे तृतीया], **दार्यमाणविषमाद्** दार्यमाणाद् भिद्यमानात्, विषमाद् दुर्गमाद्, **शैलात्** पर्वताद्, **शिलेव**, **आयसकण्टकैरिव** आयसैः लोहनिर्मितैः, कण्टकैरिव कीलैरिव, **तीक्ष्णैः** निशितैः, **नखैः** नखरैः, **वक्षसः** रावणवक्षःस्थलस्य, **भीमान्तरम्**, भीमम् भीतिजनकम्, अतिमहदित्यर्थः, अन्तरम् मध्यभागम्, रुधिरमांसादिप्रचुरम्, **पाट्यते** उत्पाट्य गृह्यते जटायुषेति शेषः । उपमालङ्कारः । कर्तृप्रत्ययेन प्रक्रान्तस्य तेनैवानिर्वाहाद् भग्नप्रक्रमत्वम् । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥३॥

हन्तेति—हन्तेत्यत्र विषादे । **दक्षिणांसदेशे** दक्षिणस्कन्धे ।

शत्रु से प्रचण्ड वीरता-पूर्वक द्वन्द्व-युद्ध कर रहा है । किस प्रकार खूब डटकर अपने तीक्ष्ण चञ्चु-युगल द्वारा तेजी से उसे काट काट धर पकड़ने का प्रयत्न किये जा रहा है । और अब लोहे के काँटों की भाँति तेज नखों से इस तरह रावण की छाती से भयावना विस्तृत घाव करता हुआ मांस नोच रहा है, मानो वज्र के अग्रभागों द्वारा कठोर पर्वत की चट्टान फाड़ी जा रही हो ॥३॥

दूसरा—शोक ! क्रुद्ध (खिसियाये) हुए रावण ने पक्षिराज के दाहिने कन्धे पर तलवार चला दी ।

दोनों—हा ! शोक ! बेचारा जटायु गिर पड़ा ।

प्रथमः—भोः कष्टम् । एष खलु तत्रभवान् जटायुः ।

कृत्वा स्ववीर्यसदृशं परमं प्रयत्नं
क्रीडामयूरमिव शत्रुमचिन्तयित्वा ।
दीप्तं निशाचरपतेरवधूय तेजो
नागेन्द्रभग्नवनवृक्ष इवावसन्नः ॥४॥

उभौ—स्वर्ग्योऽयमस्तु ।

प्रथमः—काश्यप ! आगम्यताम् । इमं वृत्तान्तं तत्रभवते राघवाय निवेदयिष्यावः ।

द्वितीयः—बाढम् । प्रथमः कल्पः ।

[निष्क्रान्तौ]

विष्कम्भः ।

भोः कष्टमिति—**एष खल्वि**त्यादिपदचतुष्टयं वक्ष्यमाणपद्यान्वयि ।

"**कृत्वा**" इति—एष खलु तत्रभवान् जटायुः, **स्ववीर्यसदृशम्** स्वपराक्रमोचितम्, **परमम्** महान्तम्, **प्रयत्नम्** प्रयासम्, **कृत्वा, शत्रुम्** अरिम् रावणम्, **क्रीडामयूरमिव** क्रीडार्थं मृदादिनिर्मितं केकिनमिव, **अचिन्तयित्वा** अविगणय्य, **निशाचरपतेः** रावणस्य, **तेजः** प्रभावम्, **अवधूय** तिरस्कृत्य, **नागेन्द्रभग्नवनवृक्ष इव** नागेन्द्रेण करियूथपेन, भग्न आमर्दितः, वनवृक्ष इव विपिनतरुरिव, **अवसन्नः** अवसादं गतः, उपरत इत्यर्थः । उपमालङ्कृतिः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥४॥

बाढमिति—**बाढमि**ति स्वीकृतौ । **प्रथमः कल्पः** उचितः पक्षः । इमं वृत्तान्तं राघवाय निवेदयितुं यद् भवतोक्तं तदुचितमुक्तम् । अवश्यमेष

पहला—ओह ! बड़े दुःख की बात है । यह है वह बेचारा जटायु ।

—अपने पराक्रम के अनुरूप ही घोर प्रयत्न करके, प्रबल शत्रु को मोर-खिलौने की भाँति कुछ न समझ, राक्षस-राज के प्रचण्ड तेज को नष्ट कर अब, गजराज द्वारा उखाड़ फेंके हुए वन के पेड़ की भाँति, गिर पड़ा ॥४॥

दोनों—इसको स्वर्ग मिले ।

पहला—काश्यप ! आओ । इस समाचार की महानुभाव राम को सूचना दे दें ।

दूसरा—बहुत अच्छा । यह तो मुख्य कर्तव्य है ।

[दोनों का प्रस्थान]

विष्कम्भक

[ततः प्रविशति काञ्चुकीयः]

काञ्चुकीयः—क इह भोः ! काञ्चनतोरणद्वारमशून्यं कुरुते ।

[प्रविश्य]

प्रतिहारी—अय्य ! अहं विजया । किं करीअदु ।

आर्य ! अहं विजया । किं क्रियताम् ।

काञ्चुकीयः—विजये ! निवेद्यतां निवेद्यतां भरतकुमाराय—एष खलु रामदर्शनार्थं जनस्थानं प्रस्थितः प्रतिनिवृत्तस्तत्रभवान् सुमन्त्र इति ।

प्रतिहारी—अय्य ! अवि किदत्थो तादसुमन्तो आअदो ।

आर्य ! अपि कृतार्थस्तातसुमन्त्र आगतः ।

काञ्चुकीयः—भवति ! न जाने ।

वृत्तान्तो राघवाय निवेदयितव्य इति भावः । **विष्कम्भ** इति—विष्कभ्नाति मध्यमभागपूरणेन पूर्वापराङ्कगतवृत्तान्तमुपपादयति इति विष्कम्भः । तदुक्तं दर्पणे—'वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः । संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य कीर्तितः ॥' इति । अयं च मध्यमपात्रप्रयोजितत्वाच्छुद्धो बोध्यः ।

अथ भरतस्य सीतापहरणवृत्तान्तविज्ञानं घटयितुं काञ्चुकीयं प्रवेशयति—तत इति । क इति—**काञ्चनतोरणद्वारम्** काञ्चनम् स्वर्णनिर्मितम्, तोरणद्वारम् बहिर्द्वारम् । **अशून्यम्** सनाथम् । बहिर्द्वारि कस्तिष्ठतीत्यर्थः । **आर्य ! अपी**ति—**कृतार्थः** कृतकृत्यः, प्राप्तरामदर्शन इत्यर्थः । **भवती**ति—**भवती**ति भवतीशब्दस्य सम्बोधने रूपम् । **न जाने** कृतार्थो वाऽकृतार्थो वेति नाहं जान इति भावः ।

[कंचुकी का प्रवेश]

कंचुकी—अरे ! यहाँ स्वर्ण-तोरण-द्वार पर कौन है ?

[प्रतिहारी का प्रवेश]

प्रतिहारी—आर्य ! मैं हूँ विजया । कहिए, क्या आज्ञा है ?

कंचुकी—विजया ! राजकुमार भरत से निवेदन कर दीजिए कि राम के दर्शनार्थ जनस्थान को गये आर्य सुमन्त्र लौट आये हैं ।

प्रतिहारी—आर्य ! तात सुमन्त्र अपने ध्येय में सफल होकर लौटे हैं ?

कंचुकी—श्रीमति ! ठीक नहीं मालूम ।

हृदयस्थितशोकाग्निशोषिताननमागतम् ।
दृष्ट्वैवाकुलमासीन्मे सुमन्त्रमधुना मनः ॥५॥

प्रतिहारी—अय्य ! एदं सुणिअ पय्याउलं विअ मे हिअअं ।

आर्य ! एतच्छ्रुत्वा पर्याकुलमिव मे हृदयम् ।

काञ्चुकीयः—भवति ! किमिदानीं स्थिता । शीघ्रं निवेद्यताम् ।

प्रतिहारी—अय्य ! इअं णिवेदेमि । [निष्क्रान्ता]

आर्य ! इयं निवेदयामि ।

काञ्चुकीयः—[विलोक्य] अये ! अयमत्रभवान् भरतकुमारः

"हृदयस्थित" इति—**हृदयस्थितशोकाग्निशोषिताननम्** हृदयस्थितेन, शोकाग्निना शोकरूपेण वह्निना, शोषितम् निष्प्रभं कृतम्, आननम् मुखम्, यस्य तादृशम्, **आगतम्** जनस्थानात् प्रत्यागतम्, **सुमन्त्रम्**, **दृष्ट्वैव** विलोक्यैव, शोकविह्वलसुमन्त्रदर्शनानन्तरमेवेत्यर्थः, **अधुना**, **मे मनः**, **आकुलम्** उद्विग्नम्, **आसीत्** अभवत् । शोकविह्वलं सुमन्त्रं दृष्ट्वैवाहमपि तथा शोकविह्वला जाता यथा तं प्रति रामसाक्षात्कारविषयकं प्रश्नं कर्तुमेव नास्मार्षम्, इति काञ्चुकीयस्य हृदयम् । मया रामदर्शनविषयकः प्रश्नो न कृत इति वक्तव्ये, प्रश्नाकरणस्य कारणमुपन्यस्तमित्यप्रस्तुतप्रशंसा । अत्रासीदिति भूतकालप्रधानप्रयोगेण सह वर्तमानकालप्रधानाधुनापदप्रयोगोऽस्य महाकवेः शब्दार्थयोरप्रभुत्वं गमयति । लङ्प्यनुपपन्नः, अनद्यतने तद्विधानाद् । 'दृष्ट्वैवाकुलमास्ते मे सुमन्त्रमधुना मनः' इति पाठस्तु कथञ्चित् साधीयान् ॥५॥

भवतीति—**किमिदानीं स्थिता** किंनिमित्तं स्तब्धा तिष्ठसि इति भावः । प्रतिहारीतः सुमन्त्रप्रत्यागमनं श्रुत्वा रामवृत्तान्तविज्ञानोत्कण्ठया स्वयमेव स्वान्तिकमायान्तं भरतं दृष्ट्वाह काञ्चुकीयः—**अये** इति ।

—अभी, वापस लौट आये हुए सुमन्त्र का, हृदय में धधक रहे शोकानल से झुलसाया हुआ चेहरा देखते ही मेरा हृदय तो सहम गया (सिहर उठा) ॥५॥

प्रतिहारी—आर्य ! यह सुनकर मेरा तो हृदय सन्न-सा रह गया ।

कंचुकी—श्रीमति ! क्यों अब खड़ी हो ! शीघ्र निवेदन कर दीजिए

प्रतिहारी—आर्य ! यह लो, अभी निवेदन किये देती हूँ ।

[प्रस्थान]

कंचुकी—[देखकर] **ऐं ! ये, चीर-वल्कल पहने तथा चित्र-विचित्र**

सुमन्त्रागमनजनितकुतूहलहृदयश्चीरवल्कलवसनश्चित्रजटापुञ्जपिञ्जरितोत्तमाङ्ग इत एवाभिवर्तते। य एषः,

प्रख्यातसद्गुणगणः प्रतिपक्षकाल-
स्तिग्मांशुवंशतिलकस्त्रिदशेन्द्रकल्पः।
आज्ञावशादखिलभूपरिरक्षणस्थः
श्रीमानुदारकलभेभसमानयानः ॥६॥

सुमन्त्रेत्यादि—सुमन्त्रस्यागमनेन जनितं कुतूहलं कौतुकं यत्र तादृशं हृदयं यस्य तादृश इति विग्रहः। **चीरेति**—चीरवल्कलानि वसनानि यस्य तादृशः। **चित्रेत्यादि**—चित्राणां विविधवर्णानाम्, जटानाम् श्लिष्टकेशानाम्, पुञ्जेन समूहेन, पिञ्जरितं पीतरक्तीकृतम्, उत्तमाङ्गं शिरो यस्य तादृशः। **इत एव** अस्यामेव दिशि ममान्तिक इत्यर्थः। **अभिवर्तते** आगच्छति।

"प्रख्यात" इति—**प्रख्यातसद्गुणगणः** प्रख्यातः प्रथितः, सद्गुणानां शौर्यौदार्यदयादाक्षिण्यादीनाम्, गणः समूहः, यस्य तादृशः, **प्रतिपक्षकालः** प्रतिपक्षस्य शत्रुपक्षस्य, कालः साक्षान्मृत्युरूपः, **तिग्मांशुवंशतिलकः** तिग्मांशुः सूर्यः, तद्वंशस्य तत्कुलस्य, तिलकः तिलकवदलङ्कारभूतः, **त्रिदशेन्द्रकल्पः** त्रिदशानाम् देवानाम्, इन्द्रः स्वामी, देवराज इन्द्रः, तत्तुल्यः [ईषदूनस्त्रिदशेन्द्र इति त्रिदशेन्द्रकल्पः। 'ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः'], **आज्ञावशाद्** स्वज्येष्ठाज्ञानुवर्तितया, **अखिलभूपरिरक्षणस्थः** अखिलायाः समग्रायाः, भुवः पृथिव्याः, परिरक्षणे पालने, तिष्ठति प्रवर्तत इति तादृशः [स्वज्येष्ठभ्रातू रामस्याज्ञयैव येन राज्यभारः स्वीकृतो न तु राज्यलोभेनेति भावः], **श्रीमान्** प्रशस्तकान्तिः, **उदारकलभेभसमानयानः** उदारः वदान्यहृदयः [भरतस्य विशेषणम्], कलभेभः त्रिंशद्वर्षः करिशावकः, तत्समानम् तद्यानसमानं यानं गतिर्यस्य तादृशः [उदारश्चासौ कलभेभसमान-

---

जटा-जूट से निपट भूरे शिर वाले महानुभाव राजकुमार भरत तो सुमन्त्र के आगमन से उत्कण्ठित-हृदय हो इधर ही चले आ रहे हैं। जो ये,

—लोक-विख्यात सद्गुणों वाले, विपक्षियों के लिए साक्षात् यमराज, सूर्यवंश के तिलक, (शौर्य और वीर्य में) इन्द्र के तुल्य, श्रीराम की आज्ञा से सम्पूर्ण पृथ्वी की रक्षा में तत्पर, शोभाशाली, उदार-हृदय, तथा उत्कृष्ट युवा गजराज के सदृश गति वाले हैं ॥६॥

[ततः प्रविशति भरतः प्रतिहारी च]

भरतः—विजये ! एवम्, उपगतस्तत्रभवान् सुमन्त्रः ।

गत्वा तु पूर्वम(ह?य)मार्यनिरीक्षणार्थं
लब्धप्रसादशपथे मयि सन्निवृत्ते ।
दृष्ट्वा किमागत इहात्रभवान् सुमन्त्रो
रामं प्रजानयनबुद्धिमनोभिरामम् ॥७॥

यानश्चेति कर्मधारयः । अथवा—उदारः प्रशस्तः कलभेभ इति व्याख्येयम् । यद्यपि—'पञ्चवर्षो गजो बालः पोतस्तु दशवर्षकः । त्रिंशद्वर्षस्तु कलभो विक्को विंशतिवर्षकः ॥' इति वैजयन्त्याः, 'कलभः करिशावकः' इत्यमराच्च इभशब्दो नात्रावश्यकस्तथापि कलभशब्दस्य त्रिंशद्वर्षवयस्कमात्रमर्थं गृहीत्वा कथञ्चित् समाधेयम्] । इमानि सर्वाणि भरतविशेषणानि । एतादृशो भरत इत एवाभिवर्तते इति भावः । वसन्ततिलकम् ॥६॥

विजय इति—**विजये** इति प्रतिहार्याः सम्बोधनम् । **एवम्** यत् सत्यम् ।

भरतः पुनरपि सौत्सुक्यं पृच्छति—"**गत्वा**" इति । **लब्धप्रसादशपथे** लब्धौ प्राप्तौ, प्रसादः रामानुग्रहः तत्पादुकालक्षणः, शपथश्च चतुर्दशवर्षान्ते मत्सकाशात् स्वराज्यस्वीकृतिलक्षणा प्रतिज्ञा च, येन तादृशे, **मयि** भरते, **सन्निवृत्ते** जनस्थानात् प्रत्यागते सति, **पूर्वम्** प्रथमम्, **अत्रभवान्** पूजनीयः, **अयम्**, **सुमन्त्रः**, **आर्यनिरीक्षणार्थम्** आर्यस्य रामस्य, निरीक्षणार्थम् निरीक्षणाय दर्शनाय ['अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम्'], **गत्वा** जनस्थानं प्राप्य, **प्रजानयनबुद्धिमनोभिरामम्** प्रजानाम् जनानाम्, नयनयोः, बुद्धेः मतेः, मनसः चेतसश्च, अभिरामम् रमणीयम् [बुद्धिमनसोर्भेदेनोपादानं ग्रहणस्मरणावस्थाभेदविवक्षया कृतम्, तेन प्रथमदर्शनसमये

[भरत तथा प्रतिहारी का प्रवेश]

भरत—विजया ! ऐसा, क्या आर्य सुमन्त्र लौट आये हैं ?

—आर्य के दर्शन करने सब से पहले ये जाकर; मेरे, श्रीचरणों से प्रसाद-स्वरूप उनकी चरणपादुका और चौदह बरस बीत लेने पर स्वयं राज्य सँभाल लेने की प्रतिज्ञा लेकर, लौट आने पर; प्रजा के नयन, बुद्धि तथा मन के अभिराम श्रीराम के दर्शन कर क्या आर्य सुमन्त्र यहाँ लौट आये हैं ? ॥७॥

काञ्चुकीयः—[उपगम्य] जयतु कुमारः।
भरतः—अथ कस्मिन् प्रदेशे वर्तते तत्रभवान् सुमन्त्रः।
काञ्चुकीयः—असौ काञ्चनतोरणद्वारे।
भरतः—तेन हि शीघ्रं प्रवेश्यताम्।
काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति कुमारः।

[निष्क्रान्तौ]

[ततः प्रविशति सुमन्त्रः प्रतिहारी च]

सुमन्त्रः—[सशोकम्] कष्टं भोः! कष्टम्।

नरपतिनिधनं मयानुभूतं
नृपतिसुतव्यसनं मयैव दृष्टम्।
श्रुत इह स च मैथिलीप्रणाशो
गुण इव बह्वपराद्धमायुषा मे ॥८॥

कालान्तरस्मरणे चानन्दकरमित्यर्थ इति गणपतिशास्त्रिणः], **रामम्**, **दृष्ट्वा**, **इह**, **आगतः** प्राप्तः, **किम्**? । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥७॥

उपगम्येति—**उपगम्य** भरतसमीपं गत्वेत्यर्थः।

"**नरपतिनिधनम्**" इति—**मया** हतभाग्येन सुमन्त्रेण, **नरपतिनिधनम्** नरपतेः महाराजदशरथस्य, निधनम् मरणम्, **अनुभूतम्** साक्षात्कृतम्। **मयैव**, **नृपतिसुतव्यसनम्** नृपतिसुतस्य रामस्य, व्यसनम् वनप्रवासरूपा विपद्, **दृष्टम्** अनुभूतम्। **इह च** इदानीमित्यर्थः;

कंचुकी—[पास पहुँचकर] जय हो कुमार की।
भरत—क्यों, आर्य सुमन्त्र किधर हैं?
कंचुकी—वे स्वर्ण-तोरण-द्वार पर खड़े हैं।
भरत—तो उन्हें शीघ्र ही अन्दर लिवा लाओ।
कंचुकी—जो कुमार की आज्ञा।

[दोनों का प्रस्थान]

[सुमन्त्र तथा प्रतिहारी का प्रवेश]

सुमन्त्र—[शोक-पूर्वक] शोक! हा शोक!

—मुझ अभागे ने महाराज का मृत्यु-शोक सहा, मुझ हतभागी ने ही इन आँखों राम का वन को जाना भी देखा, और अब मैथिली का अपहरण भी सुन लिया। मेरी इस हत आयु ने (चिरकाल के भोगे हुए विविध प्रकार के आमोद-प्रमोद रूप) गुणों के साथ घोर अपराध किया॥८॥

प्रतिहारी—[सुमन्त्रमुद्दिश्य] एदु एदु अय्यो । एसो भट्टा । उवसप्पदु अय्यो ।

एत्वेत्वार्यः । एष भर्ता । उपसर्पत्वार्यः ।

सुमन्त्रः—[उपसृत्य] जयतु कुमारः ।

भरतः—तात ! अपि दृष्टस्त्वया लोकाविष्कृतपितृस्नेहः । अपि दृष्टं द्विधाभूतमरुन्धतीचारित्रम् । अपि दृष्टं त्वया निष्कारणावहितवनवासं सौभ्रात्रम् ।

सः स्वप्नेऽप्यसम्भावितः, **मैथिलीप्रणाशः** मैथिल्याः सीतायाः, प्रणाशः विलोपः अपहारः, **श्रुतः** कर्णगोचरीकृतः, **गुणे मे आयुषा बहु अपराद्धमिव** । अस्य पद्यस्य चतुर्थपादः [चतुर्थाङ्के १८ पद्ये] व्याख्यातपूर्वः । पुष्पिताग्रा ॥८॥

तातेति—**लोकाविष्कृतपितृस्नेहः** लोके भुवने, आविष्कृतः प्रकटितः प्रथितः, पितृस्नेहः पितृभक्तिः [अत्र पितृस्नेहपदेन लक्षणया पितृस्नेहवान् रामो गृह्यते । रामस्य लोकोत्तरपितृस्नेहातिरेकश्च व्यङ्ग्यः । यद्यपि 'आविष्कृतः पितृस्नेहो येन' इत्येवं बहुव्रीहिणापि धर्मिणो रामस्य शक्यमभिधयापि प्रतिपादनम्, तथाप्युत्तरत्र वाक्यद्वये सीतालक्ष्मणयोर्बोधस्य लक्षणां विनाऽसम्भवेन एकत्राभिधापरत्र लक्षणेत्येवं करणे भग्नप्रक्रमप्रसङ्गाद्, अभिधायां चमत्काराभावाच्च प्रथमवाक्येऽपि, लक्षणोचितस्तत्पुरुष एवोचितः] । **द्विधाभूतम्** द्विधाविभक्तम् द्वयोराश्रययोः [सीतायामरुन्धत्यां च] प्रकटितमित्यर्थः । अथवा द्वितीयेन रूपेण सीतालक्षणेन स्थितम् । **अरुन्धतीचारित्रम्** अरुन्धत्याः चारित्रं पातिव्रत्यम् । अत्रापि पूर्ववल्लक्षणया अरुन्धतीचरित्रशब्देन तत्तुल्यचरित्रा सीतैव लक्ष्यते । सीतायाः अलौकिकपातिव्रत्यातिरेकश्च व्यङ्ग्यः । **निष्कारणे**त्यादि—निष्कारणः सौभ्रात्रातिरिक्तपित्रादेशादिकारणशून्यः [निष्कारणमिति क्रिया-

---

प्रतिहारी—[सुमन्त्र की ओर उद्देश्य करके] **आइए, आइए, आर्य ! ये रहे भर्ता । आर्य ! इनके समीप जायँ ।**

सुमन्त्र—[समीप जाकर] **जय हो कुमार की ।**

भरत—**तात ! क्या आपने लोक-विख्यात आदर्श पितृ-भक्ति (राम) के दर्शन किये हैं ? क्या आपने द्वितीय-रूप में विराजमान भगवती अरुन्धती का आदर्श चरित्र (सीता) देखा है ? क्या आपने अकारण ही वनवास को अपनाने वाले लोकोत्तर भ्रातृ-स्नेह (लक्ष्मण) के दर्शन किये हैं ?**

[सुमन्त्रः सचिन्तास्तिष्ठति]

प्रतिहारी—भट्टिदारओ खु अय्यं पुच्छदि।
भर्तृदारकः खल्वार्यं पृच्छति।

सुमन्त्रः—भवति ! किं माम्।

भरतः—[स्वगतम्] अतिमहान् खल्वायासः। सन्तापाद् भ्रष्टहृदयः। [प्रकाशम्] अपि मार्गात् प्रतिनिवृत्तस्तत्रभवान्।

सुमन्त्रः—कुमार ! त्वन्नियोगाद् रामदर्शनार्थं जनस्थानं प्रस्थितः कथमहमन्तरा प्रतिनिवर्तिष्ये।

विशेषणं वा], अवहितः स्वीकृतः, वनवासः, येन तादृशम्, **सौभ्रात्रम्** भ्रातृस्नेहः, लक्षणया सौभ्रात्रवान् लक्ष्मणः। अत्रापि लक्ष्मणस्य सौभ्रात्रातिशयो ध्वन्यते। भवता जनस्थाने रामसीतालक्ष्मणा दृष्टाः किमिति भावः।

सुमन्त्र इति—**सचिन्तः** चिन्तासहितः। सीतापहारवृत्तान्तश्रवणेन भरतस्य निरतिशयक्लेशसंभावनैव सुमन्त्रस्य चिन्तायां बीजम्। प्रश्नोत्तरमप्रयच्छन्तं सुमन्त्रं बोधयति प्रतिहारी—**भर्तृदारक** इति। आर्यो भरतो भवन्तं रामादिदर्शनविषये पृच्छति, भवान् किमिति तूष्णीं तिष्ठतीति भावः। प्रतिहारीप्रबोधितः सुमन्त्र आह—**किं मामिति**। पृच्छतीति शेषः। सुमन्त्रस्य भरतप्रश्नानवधारणे पूर्वोक्तचिन्तैव हेतुरभूत्। स्वप्रश्नाश्रवणेन सुमन्त्रस्यान्यमनस्कतां निर्धार्य भरतः स्वमनस्याह—**अतिमहान्** इति। **आयासः** खेदः। अस्त्यस्य चेतसि कश्चिद् महान् सन्तापो येन स्वसन्निहितस्यापि प्रश्नमयं न चेतयते। **भ्रष्टहृदयः** भ्रष्टं शून्यं हृदयं यस्य तादृशः। अथवायमार्यमदृष्ट्वैव मध्येमार्गात् प्रतिनिवृत्तो न मत्प्रश्नमुत्तरीतुमिच्छतीत्यतः भरतः प्रकाशं पुनरपि सुमन्त्रं पृच्छति—**अपीति**। किं जनस्थानमप्राप्य मध्येमार्गादेव भवान् प्रतिनिवृत्तो येनोत्तरं न प्रतिपद्यते। सुमन्त्र उत्तरति—**कुमारेति**। **त्वन्नियोगाद्** तव नियोगाद्

[सुमन्त्र चिन्ताग्रस्त हुआ खड़ा रहता है]

प्रतिहारी—राजकुमार आर्य ही से पूछ रहे हैं।

सुमन्त्र—श्रीमति ! क्या मुझसे ?

भरत—[स्वगत] अत्यन्त शोक है। शोक के कारण इनका हृदय अपनी जगह पर नहीं। [प्रकट] क्या आप बीच में से ही लौट आये ?

सुमन्त्र—कुमार ! तुम्हारे आदेश से राम के दर्शन करने जनस्थान को चला था। बीच में से ही मैं कैसे लौट आता ?

भरतः—किन्नुखलु क्रोधेन वा लज्जया वात्मानं न दर्शयन्ति ।
सुमन्त्रः—कुमार !

कुतः क्रोधो विनीतानां लज्जा वा कृतचेतसाम् ।
मया दृष्टं तु तच्छून्यं तैर्विहीनं तपोवनम् ॥९॥

अनुशासनाद् । त्वदाज्ञयाऽहं जनस्थानं गतवान् । न च राज्ञस्तवाज्ञा मयोल्लंघितुं शक्या । अपि च रामदर्शनार्थमहं त्वया प्रस्थापितः, न कार्यान्तराय, न च सर्वलोकाभिरामस्य रामस्य दर्शनं केनापि परिहर्तुं युज्यते, किम्पुनर्मयेति सुमन्त्राभिप्रायः । **अन्तरा** मध्येमार्गाद् ।

मध्येमार्गादनिवृत्तस्य जनस्थानं प्राप्तस्याप्यस्यार्यरामादीनामदर्शनं किंनिमित्तं भवेदिति निश्चेतुमशक्नुवन् स्वयमेव तत्कारणमूहते भरतः—**किन्नु** इति । **क्रोधेन** राज्यभ्रंशहेतुभूतास्मद्विषयेण कोपेन, **लज्जया** भद्रासनोचितस्य निर्जनवनाहिण्डनजनितया त्रपया । **न दर्शयन्ति** गोपयन्तीत्यर्थः । तादृशे स्थाने निलीय तिष्ठन्ति यथा न तान् कोऽपि द्रष्टुं शक्नुयादिति भावः ।

सुमन्त्रो भरतसम्भावितौ रामस्य क्रोधं लज्जां च निषेधति—"**कुत**" इति । **विनीतानाम्** विनययुक्तानाम्, **कृतचेतसाम्** कृतं पर्याप्तं ['युगपर्याप्तयोः कृतम्' इत्यमरः] युक्तायुक्तं विचारयितुं समर्थम्, चेतः चित्तम्, येषां तादृशाम् कुशलमतीनामित्यर्थः, **क्रोधो लज्जा वा, कुतः** कस्माद् हेतोः स्यात् ? नास्तीत्यर्थः [येऽविनयिनो नैसर्गिकं शिक्षाजनितं वा बुद्ध्यतिशयमप्राप्तास्तेषु क्रोधः प्रसरति । रामादयस्तु जन्मना शिक्षया च विनीताः । न तेषु क्रोधः सम्भाव्यते । एवमकुशलबुद्धीनां जनानां लज्जावसरा उपतिष्ठन्ते, न पुनरतादृशानां रामादीनाम् । नहि रामः केनचिद् दुर्गुणेन राज्याद् विभ्रंशितः, येन स लज्जामनुभवेत् । स तु पितुः सत्यसन्धतां रक्षितुं पुत्राणां पित्राज्ञापालनरूपं धर्मं च व्यवस्थापयितुं स्वयमेव वनं गतः । एवं सीताऽपि 'आर्तार्ते मुदिता हृष्टे प्रोषिते मलिना कृशा । मृते म्रियेत या पत्यौ सा स्त्री ज्ञेया पतिव्रता ॥' इति पतिव्रताधर्ममनुपालयन्ती पतिमनुजगाम, न पुनः केनचिद्

भरत—कहीं वे क्रोध वा लज्जा के कारण अपने आपको अदृश्य तो नहीं रखते?
सुमन्त्र—कुमार !

—विनयी (सुशील) जनों को क्रोध कहाँ? और निर्मल अन्तःकरण वालों को लज्जा कैसी ? किन्तु मैंने जब तपोवन देखा तो वह उनसे विरहित हुआ सुनसान पड़ा था ॥९॥

भरतः—अथ क्व गता इति श्रुताः ।

सुमन्त्रः—अस्ति किल किष्किन्धा नाम वनौकसां निवासः । तत्र गता इति श्रुताः ।

भरतः—हन्त अविज्ञातपुरुषविशेषाः खलु वानराः । दुःखिताः प्रतिवसन्ति ।

सुमन्त्रः—कुमार ! तिर्यग्योनयोऽप्युपकृतमवगच्छन्ति ।

दोषेण । लक्ष्मणोऽपि शास्त्रलोकयोः प्रशस्तं सौभ्रात्रमनुसरन् राममनुयातः । अतस्तयोरपि न लज्जानुभवकारणं किमपि पश्यामि—इति सुमन्त्रस्य हृदयम्] । तु किंतु, **मया** सुमन्त्रेण, **तत्** पूर्वं रामाद्यधिष्ठितम्, **तपोवनम्**, इदानीम्, **तैः** रामादिभिः, **विहीनम्** रहितम्, सत्, **शून्यम्** [शुने हितम्, 'शुनः सम्प्रसारणं वा च दीर्घः'] श्वापदविहारोचितम्, रिक्तं वा, **दृष्टम्** ।

मया रामादयस्तत्र न दृष्टाः । ते तत्तपोवनं विहाय गताः । तेषु गतेषु तत्स्थानमिदानीं शून्यं श्वापदविहारभूमिरभवदिति भावः । पूर्वार्धे विनीतत्वकृतचेतस्त्वयोः क्रमशः क्रोधलज्जाभ्यामन्वयाद् यथासंख्यम् । रामादिषु क्रोधस्य लज्जायाश्चाभावस्य हेतुना समर्थनात् काव्यलिङ्गम् ॥९॥

अस्ति किलेति । **वनेति**—वनम् ओकः स्थानं येषां ते वनौकसः, तेषां वानराणामित्यर्थः ['मर्कटो वानरः कीशो वनौका' इत्यमरः] । **हन्तेति**—**हन्ते**त्यत्र खेदे । **अविज्ञातेत्यादि**—अविज्ञाताः अविदिताः, पुरुषाणाम्, विशेषा उत्तमगुणा दयादाक्षिण्यादयः, यैस्तादृशाः ['विशेषोऽवयवे व्यक्तौ द्रष्टव्योत्तमवस्तुनि' इति शब्दार्णवः] । वानरैः पुरुषाणामुत्तमगुणा दयादाक्षिण्यादयो न विदिता इति भावः । **दुःखिताः प्रतिवसन्ति** अविदितपुरुषाचाराणां वनौकसां मध्ये साहाय्यशून्यास्ते नियतं दुःखिताः सन्तः प्रतिवसेयुरिति भावः । सुमन्त्रो भरतमाश्वासयति—**कुमारेति** । **तिर्यग्योनयोऽपि** वानरादयोऽपि । **उपकृतम्** परेण कृतमुपकारम्, **अवगच्छन्ति** बुध्यन्ते । कृतज्ञा

भरत—तो फिर कहाँ चले गये ? कुछ सुना है ?

सुमन्त्र—वनवासी वानरों का किष्किन्धा नामक एक निवास स्थान है । वहाँ चले गये—ऐसा सुना है ।

भरत—हा ! वानरों को पुरुष-विशेषों की पहचान नहीं होती । सो दुःखी हो रह रहे होंगे ।

सुमन्त्र—कुमार ! पशु-योनियाँ भी उपकार को समझती हैं ।

भरतः—तात ! कथमिव ।

सुमन्त्रः—

सुग्रीवो भ्रंशितो राज्याद् भ्रात्रा ज्येष्ठेन वालिना ।
हृतदारो वसञ्छैले तुल्यदुःखेन मोक्षितः ॥१०॥

भरतः—तात ! कथं तुल्यदुःखेन नाम ।

भवन्तीत्यर्थः । एषोऽस्माकमुपकर्ताऽपकर्ता वेति तिर्यग्योनयोऽपि साध्ववगच्छन्ति, अतस्तेषां मध्ये निवसतः सर्वप्रियस्य रामस्य साहाय्याभावमाशङ्क्य त्वया दुःखशङ्का न कार्येति सुमन्त्रस्य हृदयम् । कार्ये प्रस्तुते कारणमभिहितमित्यप्रस्तुतप्रशंसा ।

भरतो जिज्ञासते—**तात ! कथमिवे**ति ।

सुमन्त्र उत्तरति—"**सुग्रीव**" इति—**ज्येष्ठेन**, **भ्रात्रा** सोदरेण, **वालिना** वालिनाम्ना वानरेण, **राज्याद्**, **भ्रंशितः** च्यावितः, **हृतदारः** हृता दारा भार्या यस्य तादृशः, **शैले** ऋष्यमूकनाम्नि पर्वते, **वसन्**, **सुग्रीवः** सुग्रीवाख्यो वानरः, **तुल्यदुःखेन** तुल्यं सुग्रीवदुःखसमानं दुःखं यस्य तादृशेन रामेण, **मोक्षितः** वालिनं निहत्य दुःखाद् विमोचित इति भावः ।

'वालिना कनिष्ठस्य सुग्रीवस्य दारानपहृत्य तद्राज्यमपहृतम्' इति रामायणम् । यथा सुग्रीवो राज्यभ्रष्टो हृतदारश्च तथैव रामोऽपि । अतस्तस्य सुग्रीवतुल्यदुःखता । एवं तुल्यदुःखो रामः सुग्रीवं तत्प्रतिपन्थिभूतस्य वालिनो निहननेन तदपहृतराज्यदारप्रत्यधिगमनेन च विपत्पाशान्मोचितवानिति भावः । राज्यभ्रंशहृतदारत्वाभ्यां तुल्यदुःखत्वस्य समर्थनात् काव्यलिङ्गम् ॥१०॥

भरतस्तुल्यदुःखेनेति पदेन रामस्यापि हृतदारत्वरूपमनिष्टमाशङ्कमानः पुनरपि जिज्ञासते—**तात ! कथ**मिति । रामस्य सुग्रीवतुल्यदुःखता कथमित्यर्थः ।

भरत—तात ! सो कैसे ?

सुमन्त्र—पर्वत पर शरण लिये हुए सुग्रीव को, जिसे उसके बड़े भाई वाली ने राजगद्दी से उतार दिया था और उसकी स्त्री भी छीन ली थी, उसी के समान दुःखी (आप-बीती वाले) ने क्लेश-विमुक्त कर दिया ॥१०॥

भरत—तात ! समान दुःखी से क्या अभिप्राय ?

सुमन्त्रः—[आत्मगतम्] हन्त सर्वमुक्तमेव मया । [प्रकाशम्] कुमार ! नखलु किञ्चित् । ऐश्वर्यभ्रंशतुल्यता ममाभिप्रेता ।

भरतः—तात ! किं गूहसे । स्वर्गं गतेन महाराजपादमूलेन शापितः स्याः, यदि सत्यं न ब्रूयाः ।

सुमन्त्रः—का गतिः । श्रूयताम्,

वैरं मुनिजनस्यार्थे रक्षसा महता कृतम् ।
सीता मायामुपाश्रित्य रावणेन ततो हृता ॥११॥

आत्मगतमिति—**हन्तेति** विषादे । 'तुल्यदुःखेन' इति पदं प्रयुञ्जानेन मया गोपायितुमिष्टमपि वस्तु प्रकाशितमिति भावः । **ऐश्वर्यभ्रंशतुल्यता** ऐश्वर्यभ्रंशेन तुल्यता । यथा सुग्रीवस्यैश्वर्यभ्रंशस्तथा रामस्यापीत्येवमैश्वर्य-भ्रंशमात्रेण रामसुग्रीवयोस्तुल्यत्वं मम विवक्षितम्, नान्यत् किञ्चिदिति भावः । सुमन्त्रोक्ते अनाश्वसन् भरत आह—तातेति । **किं गूहसे** किमर्थं गोपायसि । इत्थं महाराजपादमूलशपथप्रदानेन रहस्यमुद्भेदयितुं प्रेरितः सुमन्त्र आह—**का गतिरिति** । **का गतिः** क उपायः, न कोऽपीत्यर्थः । सीतापहरण-गोपनस्येति शेषः । इदानीं सीतापहरणं संवरीतुं न शक्यत इति भावः ।

"**वैरम्**" इति—**मुनिजनस्य** तपस्विवर्गस्य, **अर्थे** कृते, मुनिजन-रक्षणनिमित्तेनेत्यर्थः, **महता** बलवता, **रक्षसा** दैत्येन रावणेन, सह [विनापि तद्योगं तृतीया], **वैरम्** विरोधः [खरदूषणादिदैत्यवधलक्षणः], **कृतम्** उत्पादितम्, रामेणेति शेषः । **ततः** खरदूषणादिवधलक्षणविरोधा-नन्तरम्, **रावणेन**, **मायाम्** कपटम्, **आश्रित्य** अवलम्ब्य उद्भाव्य, **सीता**, **अपहृता** अपहृत्य नीतेत्यर्थः । सीताहरणस्य पूर्वार्धेन समर्थनाद् वाक्यार्थहेतुकं काव्यलिङ्गम् ॥११॥

सुमन्त्र—[स्वगत] हा ! मैंने सब कुछ कह ही दिया । [प्रकट] कुछ नहीं । मेरा अभिप्राय राज्य-पतन की समानता से है ।

भरत—तात ! क्यों सच बात छिपाते हो ? तुम्हें स्वर्गवासी महाराज के चरण-तल की सौगन्द, यदि सचसच न बोलो ।

सुमन्त्र—विवश हूँ । सुनिए,

—मुनिजनों की रक्षा के लिए बड़े बलवान् राक्षस से शत्रुता ठन गई थी । इस कारण रावण ने कपटी वेष धरकर सीता हर ली ॥११॥

भरतः—कथं हृतेति । [मोहमुपगतः]
सुमन्त्रः—समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।
भरतः—[पुनः समाश्वस्य] भोः ! कष्टम् ।

पित्रा च बान्धवजनेन च विप्रयुक्तो
दुःखं महत् समनुभूय वनप्रदेशे ।
भार्यावियोगमुपलभ्य पुनर्ममार्यो
जीमूतचन्द्र इव खे प्रभया वियुक्तः ॥१२॥

भरतः स्वज्येष्ठस्य विपत्परम्परामनुचिन्त्य विलपति—"पित्रा" इति । **मम** भरतस्य, **आर्यः** ज्येष्ठो रामः, **पित्रा च** जनकेन महाराजदशरथेन च, **बान्धवजनेन च** बन्धुवर्गेण च, **विप्रयुक्तः** वियुक्तः सन्, **वनप्रदेशे** अरण्ये, **महद्** विपुलम्, **दुःखम्**, **समनुभूय**, **भार्यावियोगम्** भार्यायाः पत्न्याः सीतायाः, वियोगम् विरहम्, **उपलभ्य** प्राप्य, **पुनः**, **खे** आकाशे, **जीमूतचन्द्र इव** [जीमूताच्छादितश्चन्द्रो जीमूतचन्द्रः, शाकपार्थिवादित्वाद् मध्यमपदलोपः] जीमूतो मेघः ['घनजीमूतमुदिरे'ति मेघनामस्वमरः] तदाच्छादितचन्द्रवत्, **प्रभया** कान्त्या, **वियुक्तः** विरहितः, जात इति शेषः । यथा चन्द्रो जीमूतेनाच्छादितो निष्प्रभो भवति, तथैव ममार्योऽपि विपत्परम्पराक्रान्त इदानीं कान्तिहीन इव संवृत्त इति भावः । अत्र भरतनिष्ठश्चिन्ताख्यो व्यभिचारिभावो व्यज्यते, स्वज्येष्ठस्य विपत्परम्परारूपानिष्टाप्तिर्विभावः, अनुतापादय आक्षेप्या अनुभावाः । सा च ममेत्यर्थान्तरसङ्क्रमितवाच्यध्वनिना भ्रात्रनुरागाद्यतिशयप्रकाशनद्वारा, जीमूतचन्द्र इवेत्युपमया च परिपोष्यते । किञ्च जीमूताच्छादितचन्द्रोपमया यथा चन्द्रस्य जीमूताच्छादनजन्या कान्तिहीनता स्वल्पकालमेवावतिष्ठते, तथैवास्य रामचन्द्रस्यापि सीतावियोगो न चिरस्थायी प्रत्युत चन्द्र इवायं विपत्कादम्बिनीमचिरादुत्तीर्य सीतया संयोक्ष्यत इति व्यज्यते । सीताप्रभयोर्बिम्बप्रतिबिम्बभावः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥१२॥

भरत—क्यों ? सीता हर ली ? [मूर्च्छित हो गया]
सुमन्त्र—धीरज धरो, धीरज धरो ।
भरत—[फिर सँभलकर] हा ! शोक !

—मेरे आर्य, पिता से तथा बन्धु-बान्धवों से बिछुड़कर वनों वनों में दारुण दुःख झेलकर अब फिर आर्या का वियोग भी पाकर गगनमण्डल में बादलों से घिरे चाँद के समान प्रभा-हीन हो गये ॥१२॥

भोः ! किमिदानीं करिष्ये । भवतु, दृष्टम् । अनुगच्छतु मां तातः ।

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति कुमारः ।

[उभौ परिक्रामतः]

सुमन्त्रः—कुमार ! नखलु नखलु गन्तव्यम् । देवीनां चतुश्शालमिदम् ।

भरतः—अत्रैव मे कार्यम् । भोः ! क इह प्रतिहारे ।

[प्रविश्य]

प्रतिहारी—जेदु भट्टिदारओ । विजआ खु अहं ।

जयतु भर्तृदारकः । विजया खल्वहम् ।

भरतः—विजये ! ममागमनं निवेद्यात्रभवत्यै ।

प्रतिहारी—कदमाए भट्टिणीए णिवेदेमि ।

कतमस्यै भट्टिन्यै निवेदयामि ।

भरतः—या मां राजानमिच्छति ।

भो इति—**दृष्टम्** किमिदानीं मम कर्तव्यमिति मया ज्ञातमित्यर्थः । **तातः** सुमन्त्रः । **कुमारेति**—**देवीनाम्** राज्ञीनाम् । **चतुःशालम्** [चतसृणां शालानां समाहार इति विग्रहः] अन्योन्यमुखशालाचतुष्टयनिर्मितमन्तःपुरम् । **अत्रैवेति**—**कार्यम्** प्रयोजनम् । **प्रतिहारे** द्वारि । **या मामिति**—कैकेय्या इति भावः ।

हाय ! अब क्या करूँ ? अच्छा, सोच लिया । तात मेरे साथ चले आवें ।

सुमन्त्र—जो कुमार की आज्ञा ।

[दोनों घूमते—चलते हैं]

सुमन्त्र—[भरत को अन्तःपुर की ओर जाते देख] कुमार ! मत जाइए, मत । यह देवियों की चतुःशाला (अन्तःपुर) है ।

भरत—यहीं मुझे कार्य है । अरे ! यहाँ द्वार पर कौन है ?

[प्रतिहारी का प्रवेश]

प्रतिहारी—कुमार की जय हो ! मैं हूँ विजया ।

भरत—विजया ! माता जी को मेरे आने की सूचना दो ।

प्रतिहारी—कौन-सी रानी जी को सूचना देनी होगी ?

भरत—जो मुझे राजा बनाना चाहती है ।

प्रतिहारी—[आत्मगतम्] हं किंणुखु भवे । [प्रकाशम्] भट्टा ! तह । [निष्क्रान्ता]

हं किन्नुखलु भवेत् । भर्तः ! तथा ।

[ततः प्रविशति कैकेयी प्रतिहारी च]

कैकेयी—विजए ! मं पेक्खिदुं भरदो आअदो ।

विजये ! मां प्रेक्षितुं भरत आगतः ।

प्रतिहारी—भट्टिणि ! तह । भट्टिदारअस्स रामस्स सआसादो तादसुमन्तो आअदो । तेण सह भट्टिदारओ भरदो भट्टिणिं पेक्खिदुं इच्छदि किल ।

भट्टिनि ! तथा । भर्तृदारकस्य रामस्य सकाशात् तातसुमन्त्र आगतः । तेन सह भर्तृदारको भरतो भट्टिनीं प्रेक्षितुमिच्छति किल ।

कैकेयी—[स्वगतम्] केण खु उग्घादेण मं उवालम्भिस्सिदि भरदो ।

केन खलूद्घातेन मामुपालप्स्यते भरतः ।

प्रतिहारी—भट्टिणि ! किं पविसदु भट्टिदारओ ।

भट्टिनि ! किं प्रविशतु भर्तृदारकः ।

रामप्रवासानन्तरं यद्यपि भरतो मया मिलितः, तेनाहमुपालब्धैव । अद्यापि स मां प्रेक्षितुमायाति, एतदागमनमपि तस्य ममोपालम्भायैव भवेदिति शङ्कमाना कैकेयी स्वगतमाह—**केन खल्विति** । **उद्घातेन** प्रसङ्गेन । **उपालप्स्यते** दूषयिष्यति ।

प्रतिहारी—[स्वगत] **हाय ! न जाने क्या बात हो !** [प्रकट] **भर्ता जी ! जो आज्ञा ।**

[प्रस्थान]

[कैकेयी तथा प्रतिहारी का प्रवेश]

कैकेयी—विजया ! क्या भरत मुझसे मिलने आया है ?

प्रतिहारी—रानी जी ! जी हाँ । राजकुमार राम के पास से तात सुमन्त्र लौट आये हैं । संभव है, उनके साथ राजकुमार रानी जी से मिलना चाहते हैं ।

कैकेयी—न जाने किस उपक्रम से भरत मुझे उपालम्भ (उलहना) दे ।

प्रतिहारी—रानी जी ! क्या राजकुमार भीतर आ जायँ ?

कैकेयी—गच्छ । पवेसेहि णं । गच्छ । प्रवेशयैनम् ।

प्रतिहारी—भट्टिणि ! तह । [परिक्रम्योपसृत्य] जेदु भट्टिदारओ । पविसदु किल ।

भट्टिनि ! तथा । जयतु भर्तृदारकः । प्रविशतु किल ।

भरतः—विजये ! किं निवेदितम् ।

प्रतिहारी—आम् । आम् ।

भरतः—तेन हि प्रविशावः ।

[प्रविशतः]

कैकेयी—जाद ! विअआ मन्तेदि—रामस्स सआसादो सुमन्तो आअदत्ति ।

जात ! विजया मन्त्रयते—रामस्य सकाशात् सुमन्त्र आगत इति ।

भरतः—अतः परं प्रियं निवेदयाम्यत्रभवत्यै ।

आमिति—आम् इति स्वीकारेऽव्ययम् । **जातेति**—**मन्त्रयते** कथयति । **अतः परमिति**—**अतः परम्** सुमन्त्रप्रत्यागमनाद् अन्यत् [सुमन्त्र-प्रत्यागमनरूपं प्रियं तु त्वया विजयातः श्रुतम्, ततोऽपरं प्रियमहं तुभ्यं निवेदयामीति भावः । सोल्लुण्ठोक्तिरियं भरतस्य] ।

भरतस्य सोल्लुण्ठामुक्तिमनवबुध्य कैकेयी 'सत्यमयं किमपि प्रियं निवेदयेत्'

कैकेयी—जाओ, उसे भीतर लिवा लाओ ।

प्रतिहारी—रानी जी ! जो आज्ञा । [चलकर तथा पास जाकर] जय हो राजकुमार की । आप भीतर जा सकते हैं ।

भरत—विजया ! क्या सूचना दे दी ?

प्रतिहारी—जी ! हाँ ।

भरत—तो भीतर चलें ।

[दोनों भीतर जाते हैं]

कैकेयी—वत्स ! विजया कहती है—राम के पास से सुमन्त्र आये हैं ।

भरत—आपको इससे और अधिक प्रिय बात सुनाऊँ ।

कैकेयी—जाद ! अवि कोसल्ला सुमित्ता अ सद्दावइदव्वा ।

जात ! अपि कौसल्या सुमित्रा च शब्दयितव्या ।

भरतः—न खलु ताभ्यां श्रोतव्यम् ।

कैकेयी—[आत्मगतम्] हं किण्णु क्खु भवे ! [प्रकाशम्] भणाहि जाद ! ।

हं किन्नु खलु भवेत् ! भण जात ! ।

भरतः—श्रूयताम्,

य: स्वराज्यं परित्यज्य त्वन्नियोगाद् वनं गतः ।
तस्य भार्या हृता सीता पर्याप्तस्ते मनोरथः ॥१३॥

कैकेयी—हं ।

भरतः—

हन्त भोः ! सत्त्वयुक्तानामिक्ष्वाकूणां मनस्विनाम् ।
वधूप्रधर्षणं प्राप्तं प्राप्यात्रभवतीं वधूम् ॥१४॥

इति कौसल्यासुमित्रयोरपि प्रियवृत्तान्तश्रवणायाह्वानं कामयमाना भरतमाह—जातेति । **शब्दयितव्या** आह्वातव्येत्यर्थः । **हमिति**—एतादृशं किं भवेद् यन्मयैव श्रोतव्यम्, ताभ्यां च न श्रोतव्यमिति भावः ।

भरतो भणति—"य" इति । **यः** आर्यो रामः, **त्वन्नियोगात्** त्वदाज्ञया, **स्वराज्यम्** अयोध्याम्, **परित्यज्य**, **वनं गतः** । **तस्य**, **भार्या** पत्नी, **सीता**, **हृता** अपहृता, रावणेनेति शेषः । **ते** तव, **मनोरथः** अभिलाषः, **पर्याप्तः** परित आप्तः, साकल्येनाधिगतः, परिपूर्णोऽभवदित्यर्थः ॥१३॥

पुनरपि कैकेयीं भर्त्सयति भरतः—"**हन्त**" इति । **भोः** हे कैकेयि !

कैकेयी—वत्स ! तो क्या कौसल्या और सुमित्रा को भी बुला लिया जाय ?

भरत—नहीं । उनके सुनने की बात नहीं ।

कैकेयी—[स्वगत] हाय ! न जाने ऐसी क्या बात हो ! [प्रकट] कह सुनाओ वत्स !

भरत—सुनो,

—जो तुम्हारे आदेश से अपना राजपाट छोड़ वन को चला गया था, उसकी भार्या सीता (रावण द्वारा) हर ली गई है। तुम्हारा मनोरथ परिपूर्ण हो गया ! ॥१३॥

कैकेयी—हुँ !

भरत—हा ! शोक ! तुम-जैसी कुलवधू को पाकर महापराक्रमशाली मनस्वी इक्ष्वाकुओं को वधू-अपहरण के दिन भी देखने को मिले ॥१४॥

कैकेयी—[आत्मगतम्] **भोदु, दाणि कालो कहेदुं** । [प्रकाशम्] **जाद ! तुवं ण आणासि महाराअस्स सावं** ।

भवतु, इदानीं कालः कथयितुम् । जात ! त्वं न जानासि महाराजस्य शापम् ।

भरतः—**किं शप्तो महाराजः** ।

कैकेयी—**सुमन्त ! आअक्ख वित्थरेण** ।

सुमन्त्र ! आचक्ष्व विस्तरेण ।

हन्त महतो विषादस्य स्थानमिदम्, यद् **अत्रभवतीम्** पूजनीयां त्वाम् [सोल्लुण्ठोक्तिरियम्], **वधूम्**, **प्राप्य**, **सत्त्वयुक्तानाम्** तेजस्विनाम्, **मनस्विनाम्** आत्माभिमानिनाम्, **इक्ष्वाकूणाम्** इक्ष्वाकुकुलोत्पन्नानां राज्ञाम्, **वधूप्रधर्षणम्** वध्वाः, प्रधर्षणम् प्रसह्याभिमर्शनम् अपहरणम्, **प्राप्तम्** उपस्थितम्, अस्माभिरनुभूतमित्यर्थः । त्वयैव रामं वने प्रवास्येतः पूर्वं कदापि मानभङ्गमननुभूतवतामिक्ष्वाकुकुलक्षत्रियाणां वधूप्रधर्षणरूपो मानभङ्गोऽवतारितः । हन्त त्वयेक्ष्वाकुकुलवध्वैवाद्य यशोभाजनमिक्ष्वाकुकुलमपयशोभाजनीक्रियते इति भावः । सत्त्वयुक्तानामिति मनस्विनामिति च विशेषणद्वयं हन्तपदबोध्यवधूप्रधर्षणजन्यविषादे साभिप्रायमिति परिकरः । एवमिक्ष्वाकूणामिति विशेष्यमपि तथैवेति परिकराङ्कुरः । तदुक्तम्—'अलङ्कारः परिकरः साभिप्राये विशेषणे । साभिप्राये विशेष्ये तु भवेत् परिकराङ्कुरः ॥' इति ॥१४॥

सीतापहरणवृत्तान्तेन नितरां विषण्णस्य भरतस्य विषादं शमयितुकामा तृतीयाङ्के भरतं प्रति 'देशकाले निवेदयामि' इति यद् रामवनप्रवासकारणं वक्तुं प्रतिज्ञातम्, तत्स्मरन्ती कैकेयी मनस्याह—**भवत्व**िति । एष एव रामवनप्रवासकारणोपन्यासस्य समुचितः कालः । यतो वधूप्रधर्षणेन भरतस्य रामप्रवासजनितं दुःखमिदानीं द्विगुणितम्, किञ्चेक्ष्वाकूणामश्रुतचरस्यास्य परीवादस्य कारणमपि भरतेनाहमेव गणिता, तदिदानीं निवेदनेन भरतस्य विषादो मम कलङ्कश्च नूनमपनेष्येते इति भावः । कारणं निवेदयितुं प्रकाशमाह कैकेयी—**जात**ेति ।

कैकेयी—[स्वगत] **अच्छा, अब रहस्य कह देने का अवसर आ पहुँचा** ।

[प्रकट] **वत्स ! तुम महाराज के शाप को नहीं जानते ?**

भरत—**क्या महाराज को शाप था ?**

कैकेयी—**सुमन्त्र ! विस्तार से कह सुनाओ** ।

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति भवती । कुमार ! श्रूयताम्—पुरा मृगयां गतेन महाराजेन कस्मिंश्चित् सरसि कलशं पूरयमाणो[1] वनगजबृंहितानुकारिशब्दसमुत्पन्नवन-गजशङ्कया शब्दवेधिना शरेण विपन्नचक्षुषो महर्षे-श्चक्षुर्भूतो मुनितनयो हिंसितः ।

भरतः—हिंसित इति । शान्तं शान्तं पापम् । ततस्ततः ।

सुमन्त्रः—ततस्तमेवं गतं दृष्ट्वा,

कैकेय्याज्ञया सुमन्त्रः शापवृत्तान्तं श्रावयति—**यदाज्ञापयती**त्यादिना । **मृगयां गतेन** आखेटं कर्तुं वनं प्राप्तेन । **वनगजे**त्यादि—वनगजस्य आरण्य-हस्तिनः, बृंहितस्य गर्जितस्य ['बृंहितं करिगर्जितम्' इत्यमरः], अनुकारिणा सदृशेन, शब्देन कलशपूरणध्वनिना समुत्पन्ना, वनगजस्य, शङ्का भ्रमः, तया । **शब्दवेधिना** शब्दानुसरणेन लक्ष्यभेदिना । **विपन्नचक्षुषः** विपन्ने विनष्टे चक्षुषी यस्य तादृशस्यान्धस्य । **चक्षुर्भूतः** चक्षुरिव मार्गचल-नादाववलम्बभूतः । **मुनितनयः** मुनिश्चासौ तनयो मुनितनयः श्रवणाख्यः । **हिंसितः** व्यापादितः । तदुक्तं रामायणे अयोध्याकाण्डे—'अथान्धकारे त्वश्रौषं जले कुम्भस्य पूर्यतः । अचक्षुर्विषये घोषं वारणस्येव नर्दतः ॥ ततोऽहं शरमुद्धृत्य दीप्तमाशीविषोपमम् । शब्दं प्रति गजप्रेप्सुरभिलक्ष्यमपातयम् ॥' इति । रघुवंशेऽपि कालिदासेनैष एवार्थ इत्थं वर्णितः—'तत्र स द्विरदबृंहितशङ्की शब्द-पातिनमिषुं विससर्ज' । **हिंसित** इति—**शान्तं शान्तं पापम्** मुनितनयवध-जन्यं पापं शाम्यतु—इति भावः । **तत** इति—**एवं गतम्** एवमवस्थापन्नम् ।

सुमन्त्र—जो महारानी जी की आज्ञा । कुमार ! सुनिए—पहले एक बार आखेट के लिए गये महाराज ने अन्ध मुनि का नयन-रूप (एकमात्र सहारा) पुत्र (श्रवण) किसी तालाब में घड़ा भरते समय, जंगली हाथी के गर्जन के समान घड़ा भरने की गड़गड़ाहट से जंगली हाथी के भ्रम से, शब्दवेधी बाण द्वारा मार दिया ।

भरत—मार दिया ? पाप की शान्ति ! शान्ति !! इसके अनन्तर क्या हुआ ?

सुमन्त्र—तब उस ऋषि-पुत्र को ऐसी दशा में देखकर,

---

१ पूरयन्.

तेनोक्तं रुदितस्यान्ते मुनिना सत्यभाषिणा।
यथाहं भोस्त्वमप्येवं पुत्रशोकाद् विपत्स्यसे ॥१५॥

इति।

भरतः—नन्विदं कष्टं नाम।

कैकेयी—**जाद! एदण्णिमित्तं अवराहे मं णिक्खिविअ पुत्तओ रामो वणं पेसिदो, णहु रज्जलोहेण। अपरिहरणीओ महरिसिसावो पुत्तविप्पवासं विणा ण होइ।**

जात! एतन्निमित्तमपराधे मां निक्षिप्य पुत्रको रामो वनं प्रेषितः, न खलु राज्यलोभेन। अपरिहरणीयो महर्षिशापः पुत्रविप्रवासं विना न भवति।

"**तेनोक्तम्**" इति—**रुदितस्य** पुत्रशोकजनितस्य रोदनस्य [भावे क्तः], **अन्ते** अवसाने, **सत्यभाषिणा** अवितथवचनेन, **तेन**, **मुनिना** महर्षिणा, **उक्तम्** कथितम् शप्तमित्यर्थः, **भोः!** मत्पुत्रप्राणापहारिन्! **यथा, अहम्** पुत्रशोकाद् विपद्ये, **एवम्** तथैव, **त्वमपि पुत्रशोकाद्, विपत्स्यसे** मरिष्यसि। तथा च मुनिशापादेव महाराजनिधनहेतुभूतो रामप्रवास उपनतः। नात्र त्वन्माता कैकेय्यपराध्यति इति भावः। अत्र रामायणम्—'पुत्रव्यसनजं दुःखं यदेतन्मम साम्प्रतम्। एवं त्वं पुत्रशोकेन राजन्! कालं करिष्यसि ॥' कालं करिष्यसि मरिष्यसीत्यर्थः। सत्यभाषिणेति विशेषणं मुनिशापस्यावितथत्वे हेतुगर्भमिति साभिप्रायत्वात् परिकरः। तदुक्तं भवभूतिनापि—'ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति' इति ॥१५॥

जातेति—**एतन्निमित्तम्** ऋषिशापस्य सत्यापनार्थम्। **अपराधे मां निक्षिप्य** पुत्रस्य वनप्रेषणरूपमपराधं स्वयमुदुह्येत्यर्थः। **अपरिहरणीयः** अवश्यभोक्तव्यः।

—उस सत्य (अव्यर्थ, अमोघ) वचन वाले अन्ध मुनि ने खूब रो लेने के पश्चात् महाराज को शाप दिया कि हे राजन्! मेरी तरह तुम भी इसी प्रकार पुत्र-शोक से तड़प-तड़पकर मरोगे ॥१५॥

ऐसी शाप की कथा है।

भरत—ओह! यह तो दिल दहलाने वाली बात हुई।

कैकेयी—वत्स! इसी निमित्त मैंने अपने आपको अपराधी बना पुत्र राम को वन में भेजा है, न कि राज्य-लोभ से। महर्षि का अवश्यंभावी (अटल) शाप पुत्र-बिछोह के विना पूरा होना न था।

भरतः—अथ तुल्ये पुत्रविप्रवासे कथमहमरण्यं न प्रेषितः ?

कैकेयी—जाद ! मादुलकुले वट्टमाणस्स पकिदीभूदो दे विप्पवासो ।

जात ! मातुलकुले वर्तमानस्य प्रकृतीभूतस्ते विप्रवासः ।

भरतः—अथ चतुर्दश वर्षाणि किं कारणमवेक्षितानि ।

यदि पुत्रविप्रवासेनैव महर्षिशापस्यापरिहरणीयता तर्ह्यहं स्वपुत्र एव त्वया वने कुतो न प्रवासित इति पृच्छति भरतः—**अथे**त्यादिना । कैकेय्युत्तरति—**जाते**ति । **प्रकृतीभूतः** स्वभावरूपेण परिणतः [अभूततद्भावे च्विः]। अयं भावः—त्वं मातुलकुले वसन् प्रायो महाराजदृष्टेर्बाह्य एवाभवः । तथाच त्वद्विरहो महाराजस्य सात्म्यतां गतः सह्यतया न तथा दुःखदोऽभूद् यथा रामस्य क्षणमपि महाराजेनावियुक्तस्य । अत एव रामप्रवास एव महाराजस्य विपदुत्पादनक्षमतया ऋषिशापस्यापरिहरणीयतायां हेतुराश्रित इति भावः । अत्र ऋषिशापव्याजेन कैकेयीं निर्दोषां साधयितुं कृतप्रयत्नोऽपि तत्र-भवान् भासो न सफलतामाप । तथाहि—सत्यपि शापे तस्य सत्यापनाय कैकेय्याः प्रयत्नो न प्रेक्षावतामनुमोदनमर्हति । नह्यनिवार्यो मृत्युरिति कृत्वा तमपोहितुं प्रेक्षावन्तो न प्रयतन्ते । किञ्च रामवनप्रवाससमर्थनाय भरतप्रवासस्य प्रकृतिभूतताकथनमपि व्याजमात्रं भवति । नहि वनप्रवासो मातुलकुल-वासश्च तुल्यौ भवतः । मातुलकुलवासो भरतस्य सुखस्वास्थ्यादिहेतुतया महाराजस्यादुःखदः स्यादपि, वनवासस्तु सुतरां तद्विपरीततया कुतो न दुःखदः स्यात् । किञ्चर्षिशापमाहात्म्याददुःखदोऽपि स दुःखदो भवितुमर्हदेव । अपि च नहि स्वसत्यापनाय ऋषिवचांसि पुरुषप्रयत्नमपेक्षन्ते । तानि तु स्वसामर्थ्यबलादेव तादृशमर्थं घटयन्ति । तदुक्तं कविवरेण भवभूतिना—'लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते । ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनु-धावति ॥' इति । यदि मुनिशापानुरोधेन पितृविपत्तिमुत्पादयितुमेव रामस्य वनप्रवासनमिष्टमासीत्तर्हि वनवासे चतुर्दशवर्षावधिः किंनिमित्तः ? चतुर्दशदिनी-वियोगेनापि पितृविपत्तेः सुलभत्वादिति पृच्छति भरतः—**अथे**ति । **किं**

भरत—किन्तु पुत्र-बिछोह तो तुल्य ही था । फिर मुझे ही क्यों न वन भेज दिया ?

कैकेयी—वत्स ! ननिहाल में रहने से तुम्हारा बिछोह (महाराज के लिए) साधारण-सा हो गया था ।

भरत—अच्छा तो तब चौदह बरस किस लिए रक्खे ?

कैकेयी—जाद ! चउद्दस दिअस त्ति वत्तुकामाए पय्याउल-हिअआए चउद्दश वरिसाणि त्ति उत्तं ।

जात ! चतुर्दश दिवसा इति वक्तुकामया पर्याकुलहृदयया चतुर्दश वर्षाणीत्युक्तम् ।

भरतः—अस्ति पाण्डित्यं सम्यग् विचारयितुम् । अथ विदित-मेतद् गुरुजनस्य ।

कारणम् केन हेतुनेत्यर्थः ['निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम्' इति प्रथमा द्वितीया वा]। **अवेक्षितानि** विशिष्य अवधित्वेन निर्णीतानि ।

कैकेय्युत्तरति—**जात ! चतुर्दशेति** । **पर्याकुलहृदयया** भाविपुत्र-वियोगोद्विग्नचित्तया [इदमपि कवेः कुशकाशावलम्बनमात्रं प्रतीमः । नहि पर्याकुलहृदयतया बिसस्थाने विषं याचमानाय विषं दीयते । प्रत्युत यत्तस्याभी-प्सितं तदेव दीयते]। स्वदोषक्षालनाय कैकेय्या वचनोपन्यासमश्रद्धयोपहसन्नाह भरतः—**अस्तीति** । कथङ्कारमहमेतस्मादभियोगाद् निस्तारं प्राप्नुयामिति विचारयितुं प्रवीणासीति भावः [अन्ये तु नेदं भरतस्याधिकार्थवचनमपि तु भूतार्थवाद इति व्याचक्षते तन्मतेनेदमत्र कैकेय्याश्चातुर्यं बोध्यम्—'पुत्र-शोकाद् विपद्यसे' इति हि महर्षेः शापः । पुत्रशोकश्च पितुर्द्विधा भवितुमर्हति—पुत्रस्य निधनाद्वा प्रवासाद् वा । अवश्यभोक्तव्यायां विपत्तौ निधनकृतपुत्रशोका-पेक्षया प्रवासकृतः पुत्रशोकः साधीयानिति कृत्वैव रामस्य वनप्रवासः कैकेय्याज्ञप्तः । यदि रामो न वने प्रवसेत् पितुरन्तिके तिष्ठेत् तर्हि मुनिशापात् तन्मरणेन पुत्रनिधनशोकोऽपि सम्भाव्येत । स च नितरामवाञ्छनीय आसीत्, तद् रामप्रवासाख्येनैकेन प्रयत्नेन मुनिशापं चरितार्थयन्त्या निधनकृतपुत्रशोकं च वारयन्त्याः कैकेय्याश्चातुर्यं प्रशंसनीयमेवेति] । एतस्यार्थस्य प्रामाणिक-त्वावगतये पृच्छति भरतः—**अथेति** । एतद् ऋषिशापादिवृत्तान्तजातं वसिष्ठादिगुरुजनैर्विदितं किमिति भावः ।

कैकेयी—वत्स ! चौदह दिन कहना चाहती थी, चित्त की हड़बड़ी के कारण मुँह से कह गई चौदह बरस ।

भरत—इसका नाम है—अच्छी तरह समाधान कर देने की (स्त्रियों की) दक्षता ! तो क्या यह बात गुरुजनों को मालूम है ?

---

१ चउद्दस दिवसत्ति मए उत्तं, पय्याउलहिअआए मन्थराए चउद्दस बरिसाणित्ति उत्तं ।

सुमन्त्रः—कुमार ! वसिष्ठवामदेवप्रभृतीनामनुमतं विदितं च ।

भरतः—हन्त त्रैलोक्यसाक्षिणः खल्वेते । दिष्ट्यानपराद्धात्रभवती । अम्ब ! यद् भ्रातृस्नेहात् समुत्पन्नमन्युना मया दूषितात्रभवती, तत् सर्वं मर्षयितव्यम् । अम्ब ! अभिवादये ।

कैकेयी—जाद ! का णाम मादा पुत्तअस्स अवराहं ण मरिसेदि । उट्ठेहि उट्ठेहि । को एत्थ दोसो ।

जात ! का नाम माता पुत्रकस्यापराधं न मर्षयति । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ । कोऽत्र दोषः ।

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि । आपृच्छाम्यत्रभवतीम् । अद्यैवाह-

सुमन्त्र उत्तरति—**कुमारे**ति । न केवलमेषोऽर्थो गुरुजनैर्विदितः, अपित्वनुमतोऽपीति भावः । पूर्वं वेदनं पश्चादनुमतिरिति हि क्रमः, विदितार्थ एवानुमतेरौचित्यात् । स च क्रमः कविना अनुमतं विदितं चेत्युक्त्या दुष्टतां नीत इति दुष्क्रमत्वमत्र दोषः । अनुमतेऽर्थे विदितत्वस्य नान्तरीयकत्वाद् विदितं चेत्यस्यानर्थक्यं च । रामप्रवासविषये कैकेयीसुमन्त्रोक्तेऽथ वसिष्ठाद्यनुमतिं विज्ञाय जातविश्वासो भरतो हृष्टः सन्नाह—**हन्ते**ति । हन्तेत्यत्र हर्षे । **त्रैलोक्यसाक्षिणः** योगबलाद् हस्तामलकवत् त्रैलोक्यदर्शिन इत्यर्थः । **अनपराद्धा** अपराधरहिता । **समुत्पन्नमन्युना** समुत्पन्नः, मन्युः क्रोधः, यस्य तादृशः । **दूषिता** उपालब्धा । **मर्षयितव्यम्** क्षन्तव्यम् । तृतीयाङ्के मातरं सापराधां संभाव्य भरतो न प्रणनाम, इदानीं तु निरपराधां निश्चित्य प्रणमति—**अम्ब अभिवादये** इति । **अनुगृहीतोऽस्मी**ति—**आपृच्छामि** आमन्त्रये गन्तुमनुज्ञां याचे ।

सुमन्त्र—वसिष्ठ, वामदेवादि को यह बात मालूम भी है और इसमें उनकी अनुमति भी है ।

भरत—अहोभाग्य ! ये लोग त्रैलोक्य के साक्षी हैं । सौभाग्य की बात है कि माता निरपराध हैं । माँ ! मैंने भ्रातृ-स्नेह के कारण कुपित होकर तुम्हें जो-कुछ भी बुरा-भला कहा, वह सब क्षमा करो । माँ ! मैं तुम्हें अभिवादन (प्रणाम) करता हूँ ।

कैकेयी—वत्स ! भला ऐसी कौन माता होगी, जो अपने पुत्र के अपराध को क्षमा न कर दे । उठो, पुत्र ! उठो । इसमें तुम्हारा दोष ही क्या है ?

भरत—आपका बहुत अनुगृहीत हुआ । आपसे बिदा माँगता हूँ । आर्य

मार्यस्य साहाय्यार्थं कृत्स्नं राजमण्डलमुद्योजयामि ।
अयमिदानीम्,

वेलामिमां मत्तगजान्धकारां
करोमि सैन्यौघनिवेशनद्धाम् ।
बलैस्तरद्भिश्च नयामि तुल्यं
ग्लानिं समुद्रं सह रावणेन ॥१६॥

अये शब्द इव । तूर्णं ज्ञायतां शब्दः ।

आर्यस्य रामस्य । **उद्योजयामि** उद्युक्तं करोमि । **अयमिदानीमिति** पदद्वयमुत्तरपद्यान्वयि ।

"वेलाम्" इति—अयमहं भरतः, इदानीम्, **इमाम्**, **वेलाम्** समुद्रतटम्, **मत्तगजान्धकाराम्** मत्ता मदविशिष्टाः, गजा एव अन्धकारो यत्र तादृशीम् [श्यामत्वसाधर्म्याद् गजेष्वन्धकारत्वारोपः], **सैन्यौघनिवेशनद्धाम्** सैन्यौघस्य सैन्यसमूहस्य, निवेशेन शिविरेण, नद्धाम् आवृताम्, **करोमि** विदधे । अद्यैव रावणमभिषेणयितुं समुद्रतटं मत्तैर्गजैः सैन्यसमूहेन चावृणोमीत्यर्थः । **तरद्भिः** प्लवमानैः, **बलैः** सैन्यैः, **तुल्यम्** युगपद्, **रावणेन सह**, **समुद्रम्**, **ग्लानिम्** हर्षक्षयं पराभवम्, **नयामि** प्रापयामि । स्वबलैः समुद्रस्य रावणस्य च युगपद् मानभङ्गं करोमीत्यर्थः ।

भरतनिष्ठस्य रावणविषयकक्रोधस्य प्राधान्येन व्यञ्जनाद् रौद्रो रसः । सीतापहारापराधी रावणोऽत्रालम्बनम्, छद्मनापहारादि उद्दीपनम्, ग्लानिं नयामीति परुषोक्तिः सैन्यनिवेशनादिश्चानुभावः, अमर्षाद्याः सञ्चारिणः । सहोक्तिश्चालङ्कारः । छन्द उपजातिः ॥१६॥

कोलाहलं श्रुत्वा भरत आह—**अये शब्द इवेति** । **ज्ञायताम्**, कारणतो ज्ञायतामित्यर्थः ।

की सहायता के लिए मैं आज ही सम्पूर्ण राज-मण्डल को तैयार किये देता हूँ । यह मैं अभी,

—(चढ़ाई कर) इस समुद्र-तट को (झुण्ड के झुण्ड) अपने मतवाले हाथियों से अन्धकारमय बना दूँ तथा अपनी असंख्य सेनाओं की छावनियाँ डाल पददलित कर दूँ और पार करती हुई सेनाओं से समुद्र को, रावण समेत, एक साथ ही मटियामेट कर दूँ ॥१६॥

अरे ! कोलाहल-सा हो रहा है । यह जल्दी ही मालूम करना चाहिए कि क्यों यह कोलाहल है ।

[प्रविश्य]

प्रतिहारी—जेदु कुमारो । इमं वुत्तन्तं सुणिअ जेट्ठभट्टिणी मोहं गआ ।

जयतु कुमारः । इमं वृत्तान्तं श्रुत्वा ज्येष्ठभट्टिनी मोहं गता ।

कैकेयी—हं ।

भरतः—कथं मोहमुपगताम्बा ।

कैकेयी—एहि जाद ! अय्यं अस्सासइस्सामो ।

एहि जात ! आर्यामाश्वासयिष्यावः ।

भरतः—यदाज्ञापयत्यम्बा ।

[निष्क्रान्ताः सर्वे]

षष्ठोऽङ्कः ।

प्रतिहारी प्रविश्य कारणं निवेदयति—**जयत्विति** । **इमं वृत्तान्तम्** सीतापहारवृत्तान्तम् । **ज्येष्ठभट्टिनी** कौसल्या । सीतापहारवृत्तान्तश्रवणेन मोहमुपगतां ज्येष्ठभट्टिनीं विलोक्य व्याकुलस्य परिजनवर्गस्यायं कोलाहल इति भावः । **एहीति**—**जात** ! पुत्र !, **आर्याम्** कौसल्याम् ।

इति श्रीद्रोणाश्रमाभिजनश्रीमदच्युतानन्दशर्मतनुजन्म**श्रीपरमेश्वरानन्द**शर्म-कृतायां प्रतिमानाटकव्याख्यायां षष्ठोऽङ्कः समाप्तः ।

[प्रतिहारी का प्रवेश]

प्रतिहारी—कुमार की जय हो । यह दारुण वृत्तान्त सुनकर पटरानी जी मूर्च्छित हो गईं ।

कैकेयी—हुँ !

भरत—क्या माता जी मूर्च्छित हो गईं ?

कैकेयी—आओ वत्स ! आर्या को धीरज देवें ।

भरत—जो माता जी की आज्ञा ।

[सब का प्रस्थान]

अथ सप्तमोऽङ्कः ।

[ततः प्रविशति तापसः]

तापसः—**नन्दिलक ! नन्दिलक !**

[प्रविश्य]

नन्दिलकः—**अय्य ! अअं ह्मि ।** आर्य ! अयमस्मि ।

तापसः—**नन्दिलक ! कुलपतिर्विज्ञापयति—एष खलु स्वदारापहारिणं त्रैलोक्यविद्रावणं रावणं नाशयित्वा राक्षसगणविरुद्धवृत्तं गुणगणविभूषणं विभीषण-**

अथ रामेण रावणस्य निहननम्, लङ्काराज्ये विभीषणस्याभिषेचनम्, सीतासहायस्य तपोवनं प्रति निवृत्तस्य तस्य मातृसहितेन भरतेन समागमम्, रामस्य राज्याभिषेकम्, सर्वैः सहायोध्यायां प्रतिनिवर्तनं च वर्णयितुं सप्तममङ्कमारभते—**अथे**ति । तत्र पूर्वं सीतापहारापराधिनो रावणस्य रणे निहननं तत्स्थाने विभीषणस्य लङ्काराज्येऽभिषेकं रामस्य विमानेन तपोवनं प्रत्यागमनं च मिश्रविष्कम्भकेन वर्णयितुं तापसं प्रवेशयति—**तत** इति । **नन्दिलके**ति तापसपरिचारकस्याभिधानम् । तापसोक्तौ **कुलपतिरि**ति—**कुलपतिः** आश्रमस्वामी । **विज्ञापयति** विशिष्य बोधयति । **स्वदारे**ति—स्वदारानपहरतीति तादृशं सीतापहारिणम् । **त्रैलोक्ये**ति—त्रयो लोकास्त्रैलोक्यम् [चातुर्वर्ण्यादित्वात् स्वार्थे ष्यञ्] तस्य विद्रावणम् उच्चाटकम् [विद्रावणं रावणमिति यमकम्] । **नाशयित्वा** रणे निहत्य । **राक्षसे**ति—राक्षसगणस्य, विरुद्धं विपरीतम् साधुजनोचितम्, वृत्तम् आचारो यस्य तादृशः । **गुणगणे**ति—गुणानां

सातवाँ अंक

[तपस्वी का प्रवेश]

तपस्वी—**नन्दिलक ! नन्दिलक !**

[नन्दिलक का प्रवेश]

नन्दिलक—**आर्य ! यह आ गया हूँ ।**

तपस्वी—**नन्दिलक ! कुलपति आज्ञा देते हैं कि—'यह अपनी स्त्री को हर ले जाने वाले तथा तीनों लोकों को थर्रा देने वाले रावण का संहार करके;**

अभिषिञ्चिअ देवदेवर्षिसिद्धविमलचारित्तं तत्तभवतीं सीतामादाय ऋक्षराक्षसवानरमुख्यैः परिवृतः सम्प्राप्तस्तत्रभवान् शरद्विमलगगनचन्द्राभिरामो रामः। तदस्मिन्नाश्रमपदेऽस्मद्विभवेन यत् सङ्कल्पयितव्यं, तत् सर्वं सज्जीक्रियताम् इति।

नन्दिलकः—अय्य ! सव्वं सज्जीकिदं। किन्तु,

आर्य ! सर्वं सज्जीकृतम्। किन्तु,

तापसः—किमेतत्।

दयादाक्षिण्यादीनाम्, गणः समूह एव विभूषणम् अलङ्कारो यस्य तादृशम्। **अभिषिच्य** लङ्काराज्येऽभिषिक्तं कृत्वा। **देवदेवर्षी**ति—देवैः इन्द्रादिभिः, देवर्षिभिश्च नारदादिभिश्च, साक्षिभूतैः, सिद्धं निश्चितम्, विमलम् निर्दोषम्, चारित्रम् आचरणं पातिव्रत्यमिति यावत्, यस्यास्ताम्। **ऋक्षे**ति—[ऋक्षाश्च, राक्षसाश्च, वानराश्च, तेषां मुख्याः प्रधानानि तैः। 'द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यत' इति वचनेन मुख्यशब्दस्य ऋक्षादिभिः प्रत्येकमन्वयः] ऋक्षमुख्या जाम्बवदादयः, राक्षसमुख्या विभीषणादयः, वानरमुख्याः सुग्रीवहनूमदादयः, तैः। **परिवृतः** सहितः। **शरदि**ति—शरदः शरदृतोः, विमलं निर्मलं निर्मेघम्, गगनम् आकाशः, तस्य चन्द्रः, तद्वद् अभिरामो रमणीयः। **अस्मद्विभवेन** तापसजनविभवानुरूपमित्यर्थः। **सङ्कल्पयितव्यम्** सम्यक् कल्पयितव्यम् आयोजनीयम्। रामस्य स्वागतार्थं तापसजनवैभवानुरूपं यत्कर्तुमुचितं तत्सर्वं सम्पादनीयमिति भावः।

तापसो नन्दिलकस्य 'किन्तु'पदप्रयोगानन्तरं किं विवक्षितमिति पृच्छति—**किमेत**दिति।

दुराचारी राक्षसों के प्रतिकूल आदर्शचरित्र वाले गुणगणालंकृत विभीषण का राज्याभिषेक करके; देवताओं और ऋषियों के प्रत्यक्ष (सामने) निष्कलङ्क सिद्ध हुई साध्वी श्रीसीता जी को साथ लिये हुए; और ऋक्षराज, राक्षसराज तथा वानरराजों के दलबल सहित; निर्मल शरदाकाश के खिले चाँद के समान अभिराम महाराज श्रीराम यहाँ आ पधारे हैं। तो आज इस आश्रम में हमारे अरण्य-सुलभ भोग्य-वैभव के अनुसार उनका स्वागत करने के लिए जो जो अभीष्ट है, वह सब सु-सज्जित कर लिया जाय'।

नन्दिलक—आर्य ! सब कुछ सु-सज्जित कर लिया गया है। किन्तु,

तपस्वी—यह क्या ?

नन्दिलकः—**एत्थ विभीसणकेरआ रक्खसा । तेसं भक्खण-णिमित्तं कुलवदी पमाणं ।**

अत्र विभीषणसम्बन्धिनो राक्षसाः । तेषां भक्षणनिमित्तं कुलपतिः प्रमाणम् ।

तापसः—**किमर्थम् ।**

नन्दिलकः—**ते खु खज्जन्ति ।**

ते खलु खादन्ति ।

तापसः—**अलमलं सम्भ्रमेण । विभीषणविधेयाः खलु राक्षसाः ।**

नन्दिलकः—**णमो रक्खससज्जणाअ ।** [निष्क्रान्तः]

नमो राक्षससज्जनाय ।

नन्दिलक आह—**अत्रेति । राक्षसा** इत्यस्य 'आगमिष्यन्ति' इति शेषः । **भक्षणनिमित्तम्** भोज्यपरिवेषणाद्यर्थम् [भक्षणार्थे इति गणपति-शास्त्रिणः], **कुलपतिः प्रमाणम्** कुलपतिरेवैतन्निर्णेष्यति यत् केन तेभ्यो भोज्यद्रव्यं परिवेषणीयमिति भावः [कुलपतिरेव संग्रहणीयभक्ष्यवस्तु-निर्णयप्रभविष्णुः, नतु वयमिति गणपतिशास्त्रिणः] ।

तापसः पृच्छति—**किमर्थमिति** । कुलपतिरेव कुतः प्रमाणम्, इतरेषा-मिव राक्षसानामपि भक्षणनिमित्तं कुतो न भवन्तः प्रमाणमिति भावः । नन्दिलकः प्रत्याह—**ते खल्विति । खादन्तीत्यस्य** मानवानिति शेषः । कदा-चित्ते परिवेषयितॄन् भक्षयेयुरिति भावः [अथवा यदि तदर्थं राक्षसानुरूप-पिशितादिभक्ष्यविशेषप्रबन्धो न क्रियेत तर्हि ते मानुषान् भक्षयेयुरिति भावः]। तापस आह—**अलमलमिति** । न भेतव्यमिति भावः । **विभीषण-विधेयाः** विभीषणस्य विधेयाः वश्याः, विभीषणाज्ञानुवर्तिन इत्यर्थः । विभीषणवचनकारिणो राक्षसा न मानुषान् भक्षयेयुरिति भावः । **नम** इति—**राक्षससज्जनाय** सज्जनशब्दः सद्बुद्धिपरः, राक्षसेषु सद्बुद्धये विभीषणाय नम इत्यर्थः ।

नन्दिलक—**यहाँ विभीषण के सम्बन्धी राक्षस भी आये हुए हैं। उनके भोजन के विषय में स्वयं कुलपति ही जानें।**

तपस्वी—**क्योंकर ?**

नन्दिलक—**वे (आदमियों को) खा डालते हैं ।**

तपस्वी—**नहीं, नहीं । डरो मत । सब राक्षस विभीषण के वश में हैं ।**

नन्दिलक—**इन राक्षस-सज्जन को नमस्कार ही हो !** [प्रस्थान]

तापसः—[विलोक्य] अये अयमत्रभवान् राघवः । य एषः,

जय नरवर ! जेयः स्याद् द्वितीयस्तवारि-
स्तव भवतु विधेया भूमिरेकातपत्रा ।
इति मुनिभिरनेकैः स्तूयमानः प्रसन्नैः
क्षितितलमवतीर्णो मानवेन्द्रो विमानात् ॥१॥

जयतु भवान् जयतु । [निष्क्रान्तः]

मिश्रविष्कम्भकः ।

अत्रान्तरे व्योमयानादवतीर्णं राघवं विलोक्याह तापसः—**अये** इति ।

व्योमयानादवतीर्णं रामं वर्णयति—"**जय**" इति । **नरवर** हे नरश्रेष्ठ राम ! जय तवाभ्युदयो भवतु । **तव द्वितीयः, अरिः** शत्रुः, **जेयः** जेतुं योग्यो भवेत् [एकस्त्वरी रावणाख्यस्त्वया जित एव, अपरश्चेत् प्रादुर्भवेत् तमपि त्वं जेतुं प्रभूया इति भावः । अत्र 'जेय'शब्दस्थाने 'जय्य'शब्दः साधीयान् स्यात्], **भूमिः, एकातपत्रा** एकम्, आतपत्रं छत्रं यत्र तादृशी एकच्छत्रशासनाधीना सती, **तव, विधेया** वश्या, **भवतु** जायताम् [पृथिव्यां तवैकच्छत्रमविचलं राज्यमस्त्विति भावः] । **इति** एवम्, **प्रसन्नैः** यज्ञविघ्नकरखरदूषणरावणाद्यनेक-राक्षसविनाशेन सन्तुष्टैः, **अनेकैः, मुनिभिः, स्तूयमानः** क्रियमाणस्तुतिः, **मानवेन्द्रः** पुरुषोत्तमो रामः, **विमानात्** पुष्पकाख्यव्योमयानात्, **क्षिति-तलम्** भूमितलम्, **अवतीर्णः** । अत्र मुनिनिष्ठो रामविषयको रतिभावस्तापस-निष्ठतद्विषयकरतिभावस्याङ्गमिति प्रेयोऽलङ्कारः । मालिनी छन्दः ॥१॥

मिश्रविष्कम्भक इति । विष्कम्भकलक्षणं तु प्रागुक्तम् । मिश्रत्वं चास्य मध्यनीचोभयपात्रप्रयोजितत्वाद् बोध्यम् ।

तपस्वी—[देखकर] अहा ! ये रहे आर्य राघव । जो ये,

—हे नरश्रेष्ठ ! तुम्हारी जय हो; (एक दुर्दान्त को तो आपने जीत ही लिया) दूसरा भी जो कोई तुम्हारा शत्रु हो, तुम उस पर भी विजय प्राप्त करो; एकच्छत्र भूमण्डल तुम्हारे वश में (साम्राज्यान्तर्गत) हो, इस प्रकार आनन्दित हुए नाना मुनिजनों से अभिनन्दित किये जा रहे महाराज पुष्पक विमान से भूमि पर उतर आये हैं ॥१॥

जय हो ! आपकी जय हो !! [प्रस्थान]

मिश्र-विष्कम्भक

[ततः प्रविशति रामः]

रामः—भोः !

समुदितबलवीर्यं रावणं नाशयित्वा
जगति गुणसमग्रां प्राप्य सीतां विशुद्धाम् ।
वचनमपि गुरूणामन्तशः पूरयित्वा
मुनिजनवनवासं प्राप्तवानस्मि भूयः ॥२॥

तापसीनामभिवन्दनार्थमभ्यन्तरं प्रविष्टा चिरायते खलु मैथिली । [विलोक्य] **अये इयं वैदेही,**

'अथ नासूचितस्य प्रवेशः' इति नाट्यनियमानुरोधेन पूर्वसूचितं रामं प्रवेशयति—**तत** इति ।

"समुदित" इति—अहम्, **समुदितबलवीर्यम्** समुदितं सम्यगुदितम् अत्युत्कृष्टम्, बलं सैन्यम्, वीर्यं पराक्रमश्च, यस्य तादृशम्, **रावणम्**, **नाशयित्वा** हत्वा, **जगति**, **गुणसमग्राम्** गुणैः पातिव्रत्यादिकुलवधूचितैः गुणैः, समग्राम् पूर्णाम्, **विशुद्धाम्** अग्निप्रवेशपरिशोधिताम्, **सीताम्**, **प्राप्य**, **गुरूणां वचनमपि** पितुर्महाराजदशरथस्याज्ञामपि, **अन्तशः** साकल्येन, पूर्णचतुर्दशवर्षावधिवनवासेनेत्यर्थः, **पूरयित्वा** परिपाल्य, **भूयः** पुनरपि, **मुनिजनवनवासम्** मुनिजनानां वनस्थं वासम् आश्रमम्, तपोवनमित्यर्थः, **प्राप्तवान्**, **अस्मि** प्राप्तोऽस्मीत्यर्थः । मालिनी छन्दः ॥२॥

चिरायते विलम्बते ।

[राम का प्रवेश]

राम—ओह !

—अतुल बल-पराक्रम वाले रावण का संहार कर; संसार में सब गुणों की खान, अग्नि में शुद्ध हुई सती सीता को पाकर; और पिता जी की आज्ञा को अन्त तक पूरा पूरा पालन कर मैं फिर अब वहीं ऋषि-मुनियों के तपोवन के पुनीत आश्रम में आ पहुँचा हूँ ॥२॥

मुनि-पत्नियों की वन्दना के लिए भीतर गई हुई मैथिली को बहुत विलम्ब हुआ जाता है । [देखकर] **अरे ! ये रही जनकदुलारी वैदेही,**

सखीति सीतेति च जानकीति यथावयः स्निग्धतरं स्नुषेति ।
तपस्विदारैर्जनकेन्द्रपुत्री सम्भाष्यमाणा समुपैति मन्दम् ॥३॥

[ततः प्रविशति सीता तापसी च]

तापसी—**हला ! एसो दे कुडुम्बिओ । उवसप्प णं । ण सक्कं तुमं एआइणिं पेक्खिदुं ।**

हला ! एष ते कुटुम्बिकः । उपसर्पैनम् । न शक्यं त्वामेकाकिनीं प्रेक्षितुम् ।

"**सखी**"इति—**तपस्विदारैः** तपस्विनाम्, दारैः भार्याभिः, **यथावयः** वयोऽनतिक्रम्येति यथावयः स्वस्ववयोऽनुरूपम् [यथार्थेऽव्ययीभावः], **सखीति** वयस्येति, **सीतेति**, **जानकीति** जनकसुतेति, **स्नुषेति** पुत्रवधूरिति [वृद्धानां तपस्विपत्नीनां रामस्य पुत्रवद् व्यवहाराद्], **स्निग्धतरम्** सस्नेहातिशयम् [क्रियाविशेषणम्], **संभाष्यमाणा** संलप्यमाना, **जनकेन्द्रपुत्री** जनकनृपस्य सुता वैदेही, **मन्दम्** शनैः, **समुपैति** आगच्छति ।

या सीतायाः सवयाः सा सखीशब्देन, या किञ्चिज्ज्येष्ठा सा सीतेति नाम्नैव, या ततोऽपि वृद्धा सा जानकीति पितृसम्बन्धबोधनेन, या चातिवृद्धा सा स्नुषाशब्देन सस्नेहं तां संभाषते स्मेति भावः । प्रथमत्रय उपेन्द्रवज्रायाः, चतुर्थे चेन्द्रवज्राया योगादुपजातिश्छन्दः ॥३॥

पूर्वसूचिते तापसीसीते प्रवेशयति—**तत** इति । पूर्वमेकाकिनी सीता रावणेनापहृतेति भयत्रस्तेदानीमपि तस्या एकाकित्वमसहमाना तापस्याह—**हलेति** । **कुटुम्बिकः** [कुटुम्बमस्यास्तीति विग्रहे 'अत इनिठनौ'] भर्ता । **उपसर्प एनम्** अस्य सन्निहिता भव । **एकाकिनीम्** असहायां भर्तृवियुक्ताम् । **न शक्य**मित्यस्य अस्माभिरिति शेषः । पूर्वं त्वं क्षणं भर्तृवियुक्तेति रावणेनापहृता । न चेत्त्वामेकाकिनीं पुनरपि कश्चनाततायपहरेदिति त्वया भर्तृसहितयैव स्थातव्यमिति तापस्या हृदयम् ।

—ऋषि-पत्नियों के साथ; अहा ! अपनी अपनी अवस्था के अनुसार किसी से सखी ! किसी से सीता ! किसी से जानकी ! और किसी से स्नुषा (पुत्रवधु) ! इस प्रकार सब से बड़े प्रेमालाप से पुकारी जाती हुई मन्द मन्द (इधर को) आ रहीं ॥३॥

[सीता तथा तापसी का प्रवेश]

तापसी—सखी ! ये रहे तुम्हारे पतिदेव । जाओ इनके पास । तुम्हें अकेली नहीं देखा जाता ।

सीता—हं अज्ज वि अविस्ससणीअं विअ मे पडिभादि ।
[उपसृत्य] जेदु अय्यउत्तो ।

हम् अद्याप्यविश्वसनीयमिव मे प्रतिभाति । जयत्वार्यपुत्रः ।

रामः—मैथिलि ! अपि जानासि, पूर्वाधिष्ठानमस्माकं जनस्थानमासीत् । अप्यत्र ज्ञायन्ते पुत्रकृतका वृक्षाः ।

सीता—जाणामि जाणामि । ओलोइअपत्तआ उल्लो(लि?)अ-(इ)दव्वा दाणिं संवुत्ता ।

जानामि जानामि । अवलोकितपत्रका उल्लोकयितव्या इदानीं संवृत्ताः ।

तापस्युक्त्या रावणापहारजनितं पतिवियोगं स्मृत्वा सीता प्राह—**हमिति**। हमिति विस्मये । **अद्यापि** रावणे मृतेऽपि, **अविश्वसनीयमिव मे प्रतिभाति** रावणभयं निवृत्तमित्यविश्वसनीयमिव मे प्रतीयते। भयत्रस्तानामेष स्वभावो यत्ते भये निवृत्तेऽपि सशङ्का भवन्तीति भावः । रावणापहारानन्तरं चिरं लङ्कायां स्थितवतीं सीतां रामः प्रश्नपूर्वकं जनस्थानवृत्तान्तं स्मारयति—**मैथिलीति** । **अपि जानासि** अपि स्मरसि । अपिरिह प्रश्ने [अत्रासीदिति लङ्लकारोऽपाणिनीयः । स्मृतिबोधिन्युपपदे 'अभिज्ञावचने लृट्' इत्यनेन लृटो विधानात्] । **ज्ञायन्ते** प्रत्यभिज्ञायन्ते। **पुत्रकृतकाः** कृत्रिमपुत्राः पुत्र-वत् पालितत्वेन पुत्रसदृशा इत्यर्थः । **जानामीति—अवलोकितपत्रकाः** अवलोकितानि अवाङ्निक्षिप्तया दृष्ट्या, लोकितानि दृष्टानि, पत्रकाणि लघी-यांसि पत्राणि येषां तादृशाः । **उल्लोकयितव्याः** ऊर्ध्वोत्क्षिप्तया दृष्ट्या लोक-यितव्या द्रष्टुं शक्याः । उभे अपि वृक्षाणां विशेषणे । अयं भावः—इमे पादपाः पूर्वं लघुलघव आसन्, इति न्यग्दृष्ट्या द्रष्टुमशक्यन्त । परमिदानीं ते कालेन वृद्धिं गता विपुलारोहपरिणाहाः संवृत्ता इतीमे उद्ग्रीवैर्दृष्टिमूर्ध्वीकृत्य द्रष्टुं शक्यन्ते ।

सीता—ऊँह ! अब भी मुझे भरोसा नहीं होता ! [पास जाकर] **आर्यपुत्र की जय हो ।**

राम—मैथिली ! क्या तुम्हें याद है कि हम पहले जनस्थान में रहा करते थे ? और पहचानती हो क्या पुत्रतुल्य पाले हुए इन वृक्षों को ?

सीता—याद है, खूब याद है । नन्हे नन्हे पत्तों वाले देखे थे, अब बहुत ऊँची नज़र करके दीख पड़ने योग्य हो गये हैं ।

रामः—एवमेतत् । निम्नस्थलोत्पादको हि कालः । मैथिलि ! अप्युपलभ्यतेऽस्य सप्तपर्णस्याधस्ताच्छुक्लवाससं भरतं दृष्ट्वा परित्रस्तं मृगयूथमासीत् ।

सीता—अय्यउत्त ! दिढं खु सुमरामि ।

आर्यपुत्र ! दृढं खलु स्मरामि ।

रामः—अयं तु नस्तपसः साक्षिभूतो महाकच्छः । अत्रास्माभि-रासीनैस्तातस्य निवपनक्रियां चिन्तयद्भिः काञ्चन-पार्श्वो नाम मृगो दृष्टः ।

सीता—हं अय्यउत्त ! मा खु मा खु एवं भणिदुं । [भीता वेपते]

हम् आर्यपुत्र ! मा खलु मा खल्वेवं भणितुम् ।

रामः सीतोक्तं समर्थयते—**एवमेतदि**ति । **निम्ने**त्यादि—निम्नं च स्थलं चानयोः समाहारो निम्नस्थलम्, तस्योत्पादकः । यत् कदाचिन्निम्नं गर्तं भवति, तत् कालेन स्थलं भवति समभूमितामापद्यते, यच्च कदाचित् स्थलं भवति तदेव कालान्तरे निम्नं भवति । एवमेव कालपर्ययेण पूर्वं लघवः क्षुपा अपीदानीं महापादपतां गता इति यत्त्वयोक्तं तत् सम्यगुक्तमिति भावः । रामः पुनः प्रश्नयति—**अप्युपलभ्यत** इति । **अस्य सप्तपर्णस्य** सप्त पर्णानि यत्र तादृशस्य विषमच्छदनामकस्य वृक्षस्य, **अधस्ताद्**, **शुक्लवाससम्** शुक्लानि वासांसि यस्य तादृशं शुभ्रवस्त्रधारिणम्, **भरतं दृष्ट्वा**, **परित्रस्तम्** भीतम्, **मृगयूथमासीद्** इति **उपलभ्यते** स्मर्यते इत्यन्वयः । **अयमिति**—**महाकच्छः** महाँस्तटप्रदेशः । **निवपनक्रियाम्** श्राद्धक्रियाम् । काञ्चनपार्श्वमृगस्यैव सीतापहारनिदानत्वात् तन्नामश्रवणाद् अपहारकालस्मरणेन बिभ्यती सीता राममाह—**हमिति** । **हमिह** भये । **मा खल्वि**त्यादि—काञ्चनपार्श्वस्य नामापि न ग्रहीतव्यमिति भावः । **वेपते** कम्पते ।

राम—बिलकुल ऐसी ही बात है । समय ही उचान-उठान करने वाला है । मैथिली ! क्या याद है, इस सप्तपर्ण के नीचे शुभ्र-वस्त्रधारी भरत को देखकर मृग-समूह भयभीत हो (बिदक) उठा था ?

सीता—आर्यपुत्र ! बहुत अच्छी तरह याद आ रहा है ।

राम—और यह हमारे तप का साक्षी महासरोवर है । यहाँ बैठे हमने, पिता जी की श्राद्धक्रिया का चिन्तन करते हुए, काञ्चन-पार्श्व नामक मायामृग को देखा था ।

सीता—ओह ! आर्यपुत्र ! न, न । अब इस कथा को मत छेड़ो ।

[भयभीत हो काँपती है]

रामः—अलमलं सम्भ्रमेण। अतिक्रान्तः खल्वेष कालः।
[दिशो विलोक्य] अये कुतो नु,

रेणुः समुत्पतति लोध्रसमानगौरः
सम्प्रावृणोति च दिशः पवनावधूतः।
शङ्खध्वनिश्च पटहस्वनधीरनादैः
सम्मूर्च्छितो वनमिदं नगरीकरोति ॥४॥

[प्रविश्य]

अलमलमिति—भयं न कर्तव्यमित्यर्थः। **अतिक्रान्तः** अतीतः। इदानीं काञ्चनपार्श्वो नास्ति, येन वयं छलिताः। ससैन्यभरतागमनसमुद्भूतं रजो दूरात् पश्यन् कारणतोऽनवधारयँश्च रामः शङ्कते—**अये कुतो नु** इति। 'कुतो नु' इति पदद्वयमुत्तरश्लोकान्वयि। कस्मात् कारणादिति तदर्थः।

"रेणु"रिति—**लोध्रसमानगौरः** लोध्रेण लोध्रपुष्पेण, समानः, गौरः शुभ्रः, धूम्रवर्ण इत्यर्थः, **रेणुः** रजः, **समुत्पतति** निरतिशयमुड्डीयते। किं **च** स एव रेणुः, **पवनावधूतः** पवनेन वायुना, अवधूतः प्रेरितः, सन्, **दिशः** पूर्वादिदशदिशः, **सम्प्रावृणोति** आच्छादयति। किं **च शङ्खध्वनिः** शङ्खस्य कम्बोर्ध्मायमानस्य, ध्वनिः नादः, **पटहस्वनधीरनादैः** पटहानाम् आनन्दाख्यवाद्यानाम्, स्वनैः शब्दैः, धीराणाम् वीरसैनिकानाम्, नादैश्च, **सम्मूर्च्छितः** संवर्धितः, सन्, **इदम्**, **वनम्** अरण्यम्, **नगरीकरोति** अनगरमपि नगरं करोति, नगरवत् प्रत्याययति। नगरेष्वेव शङ्खादिशब्दोपलम्भादिति भावः। नगरत्ववनत्वयोर्वैय्यधिकरण्याद् विरोधः। सादृश्यात्त्वाभासता। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥४॥

राम—बस, बस। घबराओ मत। अब तो वह समय ही बीत चला।
[चारों ओर देखकर] **अरे! कहाँ से,**

—यह, लोध के फूलों के समान सफ़ेद धूल उड़ी आ रही है और हवा के झोंकों से सब दिशाओं को आच्छादित किये देती है? और यह शंखध्वनि ढोलों के शब्दों तथा वीरों के सिंहनादों से गुञ्जायमान होती हुई इस शान्त तपोवन को नगर-सा (कोलाहलपूर्ण) बनाये देती है? ॥४॥

[लक्ष्मण का प्रवेश]

लक्ष्मणः—जयत्वार्यः । आर्य !

अयं सैन्येन महता त्वद्दर्शनसमुत्सुकः ।
मातृभिः सह सम्प्राप्तो भरतो भ्रातृवत्सलः ॥५॥

रामः—वत्स लक्ष्मण ! किमेवं भरतः प्राप्तः ।

लक्ष्मणः—आर्य ! अथकिम् ।

रामः—मैथिलि ! श्वश्रूजनपुरोगं भरतमवलोकयितुं विशाली-
क्रियतां ते चक्षुः ।

सीता—अय्यउत्त ! इच्छिदव्वे काले भरदो आअदो ।
आर्यपुत्र ! एष्टव्ये काले भरत आगतः ।

[ततः प्रविशति भरतः समातृकः]

लक्ष्मणः प्रविश्य रामाय भरतागमनं निवेदयति—**आर्येति** ।

"**अयम्**" इति—**त्वद्दर्शनसमुत्सुकः** तव दर्शने समुत्सुकः निर-तिशयमुत्कण्ठितः, **भ्रातृवत्सलः** भ्रातृप्रियः, **अयम्**, **भरतः**, **महता** बृहता, **सैन्येन** सेनया, **मातृभिः** जननीभिश्च, **सह**, **सम्प्राप्तः** त्वत्पाद-मूलमुपस्थितः । अस्तीति शेषः ॥५॥

मैथिलीति—**श्वश्रूजनपुरोगम्** श्वश्रूजनः पुरोगः अग्रगामी यस्य तादृशम् श्वश्रूजनसहितम् इत्यर्थः । **आर्यपुत्रेति**—**एष्टव्ये काले** अभीप्सिते उचिते समय इत्यर्थः ।

लक्ष्मण—जय हो आर्य की । आर्य !
—यह देखो, आपके दर्शनों के लिए अत्यन्त उत्कण्ठित हुआ भ्रातृवत्सल भरत माताओं को साथ लिये बड़े भारी दल-बल सहित यहीं आ पहुँचा ॥५॥

राम—वत्स लक्ष्मण ! तब क्या इस तरह भरत आये हैं ?

लक्ष्मण—आर्य ! हाँ, वही आये हैं ।

राम—मैथिली ! तुम्हारी सासुओं के आगे आगे होकर आ रहे भरत को देखने के लिए अपनी आँखों को विशाल कर लो ।

सीता—आर्यपुत्र ! ठीक ही अवसर पर भरत का आना हुआ !

[माताओं सहित भरत का प्रवेश]

भरतः—

तैस्तैः प्रवृद्धविषयैर्विषमैर्विमुक्तं
मेघैर्विमुक्तममलं शरदीव सोमम् ।
आर्यासहायमहमद्य गुरुं दिदृक्षुः
प्राप्तोऽस्मि तुष्टहृदयः स्वजनानुबद्धः ॥६॥

रामः—अम्बाः ! अभिवादये ।

सर्वाः—जाद ! चिरं जीव । दिट्ठिआ वड्ढामो अवसिदपडिण्णं तुमं कुसलिणं सह वहूए पेक्खिअ ।

जात ! चिरं जीव । दिष्ट्या वर्धामहे अवसितप्रतिज्ञं त्वां कुशलिनं सह वध्वा प्रेक्ष्य ।

भरतः प्रविश्यात्मागमनं निवेदयति—"**तैस्तैः**" इति । **अद्य** अस्मिन् काले, **शरदि** शरत्समये, **मेघैः** घनैः, **विमुक्तम्** अनाच्छादितम्, अतएव **अमलम्** निर्मलम्, **सोममिव** चन्द्रमसमिव स्थितम्, **तैः तैः** वर्णनातीतैः, **प्रवृद्धविषयैः** प्रवृद्धः प्रचुरः, विषयः गोचरः, येषां तादृशैः अतिव्यापकैः, विपुलैरिति भावः, **विषमैः** व्यसनैः, विपद्भिरिति भावः, **विमुक्तम्** उन्मुक्तम्, **आर्यासहायम्** आर्या सीता सहायो यस्य तादृशम् सीतासहितम्, **गुरुम्** ज्येष्ठम्, भवन्तम्, **दिदृक्षुः** द्रष्टुमिच्छुः, **स्वजनानुबद्धः** स्वजनैः अनुबद्धः अनुगतः, **अहम्** भरतः, **तुष्टहृदयः** तुष्टं [वनवासावधिपूर्त्या रामः स्वं राज्यं प्रतिग्रहीष्यतीति बुद्धया] प्रीतम्, हृदयम् मनः, यस्य तादृशः, सन्, **प्राप्तोऽस्मि**, त्वत्पादमूल इति शेषः । उपमालङ्कारः । वसन्ततिलका ॥६॥

रामः प्रथममम्बा अभिवादयते—**अम्बा** इति । **अवसितप्रतिज्ञम्** अवसिता पूर्णा, प्रतिज्ञा यस्य तादृशम् ।

भरत—मेघों से विमुक्त हुए शरत्कालीन निर्मल चाँद की भाँति, उन उन नाना प्रकार के घोर संकटों से छुटकारा पाये हुए, आर्या सीता सहित अपने गुरुवर के दर्शनों की चाह से आज मैं अति प्रसन्नचित्त हो आत्मीय-जनों सहित यहाँ आ पहुँचा हूँ ॥६॥

राम—पूज्या माताओ ! मैं प्रणाम करता हूँ ।

सब—प्रिय बेटा ! चिरजीवी होओ । धन्य भाग्य हमारे, जो चौदह बरस के वनवास के बाद सीता-सहित तुम्हें स-कुशल देख रही हैं ।

रामः—अनुगृहीतोऽस्मि ।
लक्ष्मणः—अम्बाः ! अभिवादये ।
सर्वाः—जाद ! चिरं जीव । जात ! चिरं जीव ।
लक्ष्मणः—अनुगृहीतोऽस्मि ।
सीता—अय्या ! वन्दामि । आर्याः ! वन्दे ।
सर्वाः—वच्छे ! चिरमङ्गला होहि । वत्से ! चिरमङ्गला भव ।
सीता—अणुग्गहिदह्मि । अनुगृहीतास्मि ।
भरतः—आर्य ! अभिवादये भरतोऽहमस्मि ।
रामः—एह्येहि वत्स ! इक्ष्वाकुकुमार ! स्वस्ति, आयुष्मान् भव ।

वक्षः प्रसारय कवाटपुटप्रमाण-
मालिङ्ग मां सुविपुलेन भुजद्वयेन ।
उन्नामयाननमिदं शरदिन्दुकल्पं
प्रह्लादय व्यसनदग्धमिदं शरीरम् ॥७॥

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्ये ! अभिवादये भरतोऽहमस्मि ।

"वक्षः प्रसारय" इति—पद्यमिदं चतुर्थाङ्के व्याख्यातचरम् ॥७॥

राम—मैं आपका बहुत अनुगृहीत हुआ ।
लक्ष्मण—पूज्या माताओ ! मैं प्रणाम करता हूँ ।
सब—प्रिय बेटा ! चिरजीवी होओ ।
लक्ष्मण—मैं आपका बहुत अनुगृहीत हुआ ।
सीता—पूज्या आर्याओ ! मैं प्रणाम करती हूँ ।
सब—बेटी ! चिर-मङ्गला (सदा-सौभाग्यवती) होओ ।
सीता—मैं आपकी बहुत अनुगृहीत हुई ।
भरत—आर्य ! मैं भरत आपका अभिवादन करता हूँ ।
राम—आओ, आओ इक्ष्वाकुकुमार ! तुम्हारा कल्याण हो । चिरजीवी होओ ।

—किवाड़ों की चौखट के समान अपनी विशाल छाती को फैलाओ; और अपनी दोनों बड़ी बड़ी भुजाओं द्वारा मुझसे गले लगकर लिपटो । शरद् ऋतु के चाँद-जैसे इस मुखड़े को ऊपर उठाओ; और शोक से जले हुए मेरे इस शरीर को आह्लादित करो ॥७॥

भरत—मैं आपका बहुत अनुगृहीत हुआ । आर्ये ! मैं भरत आपका अभिवादन करता हूँ ।

सीता—अय्यउत्तेण चिरसञ्चारी होहि ।
आर्यपुत्रेण चिरसञ्चारी भव ।
भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्य ! अभिवादये ।
लक्ष्मणः—एह्येहि वत्स ! दीर्घायुर्भव । परिष्वजस्व गाढम् ।
[आलिङ्गति]
भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्य ! प्रतिगृह्यतां राज्यभारः ।
रामः—वत्स ! कथमिव ।
कैकेयी—जाद ! चिराहिलसिदो खु एसो मणोरहो ।
जात ! चिराभिलषितः खल्वेष मनोरथः ।

[ततः प्रविशति शत्रुघ्नः]

शत्रुघ्नः—

विविधैर्व्यसनैः क्लिष्टमक्लिष्टगुणतेजसम् ।
द्रष्टुं मे त्वरते बुद्धी रावणान्तकरं गुरुम् ॥८॥

[उपगम्य] आर्य ! शत्रुघ्नोऽहमभिवादये ।

रामः स्वेन राज्यस्य प्रतिग्रहे मातुरभिप्रायं जिज्ञासमानो भरताभिमुखः पृच्छति—**कथमिवे**ति । रामस्य प्रश्नाभिप्रायं विज्ञाय भरतायोत्तरावसरमदत्त्वा स्वयमेवाह—**जाते**ति । **चिराभिलषितः** चिराद् अभिवाञ्छितः । **मनोरथः** त्वया राज्यभारस्य ग्रहणरूपः ।

"**विविधैः**" इति—**विविधैः** अनेकप्रकारैः, बहुभिः, **व्यसनैः**

सीता—आर्यपुत्र के चिरसङ्गी बनो ।
भरत—मैं आपका बहुत अनुगृहीत हुआ । आर्य ! प्रणाम ।
लक्ष्मण—आओ, आओ, वत्स ! चिरजीवी होओ । आओ, जी भर कर गले लगो । [गले लगता है]
भरत—मैं आपका बहुत अनुगृहीत हुआ । आर्य ! राज्य-भार सँभालो ।
राम—वत्स ! क्योंकर ?
कैकेयी—वत्स ! हम चिरकाल से यह मनोरथ किये हुए हैं ।

[शत्रुघ्न का प्रवेश]

शत्रुघ्न—नाना प्रकार के घोर संकटों से सताये जाने पर भी, अहा ! वस्तुतः अखण्ड गुण और तेज वाले, रावणसंहारकारी अपने गुरुदेव के दर्शन करने को मेरा मन उतावला हो रहा है ॥८॥
[पास आकर] आर्य ! मैं शत्रुघ्न आपका अभिवादन करता हूँ ।

रामः—एह्येहि वत्स ! स्वस्ति, आयुष्मान् भव ।
शत्रुघ्नः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्ये ! अभिवादये ।
सीता—वच्छ ! चिरं जीव । वत्स ! चिरं जीव ।
शत्रुघ्नः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्य ! अभिवादये ।
लक्ष्मणः—स्वस्ति, आयुष्मान् भव ।
शत्रुघ्नः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्य ! एतौ वसिष्ठवामदेवौ सह प्रकृतिभिरभिषेकं पुरस्कृत्य त्वद्दर्शनमभिलषतः ।

तीर्थोदकेन मुनिभिः स्वयमाहृतेन
नानानदीनदगतेन तव प्रसादात् ।
इच्छन्ति ते मुनिगणाः प्रथमाभिषिक्तं
द्रष्टुं मुखं सलिलसिक्तमिवारविन्दम् ॥९॥

विपद्भिः, **क्लिष्टम्** भुक्तक्लेशमपि, **अक्लिष्टगुणतेजसम्** अक्लिष्टानि अविकृतानि, गुणाः शौर्यौदार्यदयादाक्षिण्यादयः, तेजः प्रभावः, यस्य तादृशम् विपत्स्वप्यविकृतस्वभावमिति भावः [एतेन रामस्यातिधैर्यशालित्वमभिव्यज्यते], **रावणान्तकरम्** रावणविनाशकम्, **गुरुम्** ज्येष्ठम्, राममिति भावः, **द्रष्टुम्** साक्षात्कर्तुम्, **मे** मम, **बुद्धिः** मनः, **त्वरते** त्वरां करोति, निरतिशयमुत्कण्ठते—इति भावः ॥८॥

"**तीर्थोदकेन**" इति—**मुनिगणाः** वसिष्ठवामदेवादयः, **तव**, **प्रसादात्** त्वत्स्वीकृतिलक्षणानुग्रहादित्यर्थः, **मुनिभिः**, **स्वयम्** आत्मना,

---

राम—आओ, आओ वत्स! तुम्हारा कल्याण हो । तुम दीर्घायु होओ ।
शत्रुघ्न—मैं आपका बहुत अनुगृहीत हुआ । आर्ये ! प्रणाम ।
सीता—वत्स ! चिरंजीव ।
शत्रुघ्न—मैं आपका बहुत अनुगृहीत हुआ । आर्य ! प्रणाम ।
लक्ष्मण—तुम्हारा कल्याण हो । दीर्घायु होओ ।
शत्रुघ्न—मैं आपका बहुत अनुगृहीत हुआ । आर्य ! ये महर्षि वसिष्ठ और वामदेव, प्रजावर्ग तथा अमात्यों समेत, आपके राज्याभिषेक के उपलक्ष्य में (उद्देश्य से) आपके दर्शनों के लिए बाट जोह रहे हैं ।

—मुनियों द्वारा छोटे-बड़े नाना नदियों और नदों से स्वयं जा जाकर लाये हुए पवित्र तीर्थ-जल से, मुनि-जन आपके अनुग्रह द्वारा, पहले के ही अभिषिक्त हुए आपके मुखारविन्द को, जल-संसिक्त कमल की भाँति, फिर दूसरी बार अभिषिक्त हुआ देखना चाह रहे हैं ॥९॥

कैकेयी—गच्छ जाद ! अभिलसेहि अभिसेअं।
गच्छ जात ! अभिलषाभिषेकम् ।

रामः—यदाज्ञापयत्यम्बा। [निष्क्रान्तः]

[नेपथ्ये]

जयतु भवान् । जयतु स्वामी । जयतु महाराजः । जयतु देवः । जयतु भद्रमुखः। जयत्वार्यः । जयतु रावणान्तकः।

कैकेयी—एदे पुरोहिदा कञ्चुइणो पुत्तअस्स मे विजअघोसं वड्ढअन्तो आसीहि पूजअन्ति ।
एते पुरोहिताः कञ्चुकिनः पुत्रकस्य मे विजयघोषं वर्धयन्त आशीर्भिः पूजयन्ति ।

आहृतेन आनीतेन, **नानानदीनदगतेन** नैकनदीनदसम्बन्धिना, **तीर्थोदकेन** तीर्थजलेन, **प्रथमाभिषिक्तम्** इदंप्रथमतया स्नपितम्, **ते** तव, **मुखम्**, **सलिलसिक्तम्** जलार्द्रम्, **अरविन्दमिव** कमलमिव, **द्रष्टुम्**, **इच्छन्ति** कामयन्ते । यदि त्वं प्रसीदसि तर्हि वसिष्ठवामदेवादयो मुनयः सह प्रकृतिभिरुपस्थिताः स्वयमानीतेन तीर्थोदकेन त्वामभिषेक्तुमिच्छन्तीति भावः । उपमालङ्कारः । वसन्ततिलकम् ॥९॥

गच्छेति—**अभिलष** स्वीकुरु इति भावः । अभिषिच्यमानस्य रामस्य सप्रकृतिभिर्वामदेवादिभिः क्रियमाणं जयशब्दैः सभाजनं दर्शयति नेपथ्ये—**जयत्वि**त्यादिना । रामाभिषेकमुपलक्ष्य प्रवर्तमानं जयशब्दं श्रुत्वा हृष्यन्ती कैकेय्याह—**एते** इति । **कञ्चुकिनः** कञ्चुकः कवचः, सोऽस्यास्तीति तस्य कवचधरस्येत्यर्थः [अथवा कञ्चुकिनः वर्धापकगृहीताङ्गस्थितवस्त्रस्येत्यर्थः] ।

कैकेयी—जाओ, वत्स ! राज्याभिषेक की खुशी मनाओ (राज्याभिषेक अङ्गीकार करो)।

राम—जो माता जी की आज्ञा। [प्रस्थान]

[नेपथ्य में]

राजा रामचन्द्र जी की जय ! स्वामी जी की जय ! महाराजाधिराज की जय !
देव की जय ! सुन्दर-सलोने मुख वाले की जय ! आर्य की जय !
रावण का संहार करने वाले की जय !

कैकेयी—अहा ! ये पूज्य पुरोहित तथा कंचुकी लोग मेरे पुत्र के जयघोष करते हुए आशीर्वादों से उसे अभिनन्दित कर रहे हैं।

सुमित्रा—पइदीओ परिचारआ सज्जणा अ पुत्तअस्स मे विजअं वड्डअन्ति ।

प्रकृतयः परिचारकाः सज्जनाश्च पुत्रकस्य मे विजयं वर्धयन्ति ।

[नेपथ्ये]

भो भो जनस्थानवासिनस्तपस्विनः ! शृण्वन्तु शृण्वन्तु भवन्तः ।

हत्वा रिपुप्रभवमप्रतिमं तमौघं
सूर्योऽन्धकारमिव शौर्यमयैर्मयूखैः ।
सीतामवाप्य सकलाशुभवर्जनीयां
रामो महीं जयति सर्वजनाभिरामः ॥१०॥

रामस्य राज्यसिंहासनारोहणमुद्घोषयति—**नेपथ्ये** इत्यादिना ।

"**हत्वा**" इति—**सर्वजनाभिरामः** सर्वेषां जनानाम्, अभिरामः रमणीयः, निखिलप्रजारञ्जनः, **रामः**, **रिपुप्रभवम्** रिपुः शत्रुः, प्रभवः उत्पत्तिकारणं यस्य तादृशम् शत्रूत्पादितम्, रावणकृतम्, **अप्रतिमम्** असमम्, **तमौघम्** तमसां दुःखानाम्, ओघं समूहम् [सन्धिः कवीनां निरङ्कुशत्वात्, अथवा सर्वे सान्ता अजन्ता अपीति सिद्धान्ते—अकारान्तोऽयं तमशब्दो बोध्यः], **अन्धकारम् सूर्य इव**, **शौर्यमयैः** [प्राचुर्ये मयट्] पराक्रमरूपैः, **मयूखैः** किरणैः, **हत्वा** विनाश्य, **सकलाशुभवर्जनीयाम्** सकलैः, अशुभैः दोषैः, वर्जनीयाम् रहिताम्, मङ्गलैकमयीमिति भावः, **सीताम्**, **अवाप्य** अधिगत्य, रावणाधिकाराद् उन्मोच्य, **महीं** पृथ्वीम्, **जयति** स्वायत्तीकरोति । राजसिंहासनमारोहतीत्यर्थः । उपमालङ्कृतिः । वसन्ततिलकम् ॥१०॥

सुमित्रा—अहा ! अमात्य, परिचारक तथा सज्जनवृन्द मेरे पुत्र की जय-वृद्धि कर रहे हैं ।

[नेपथ्य में]

हे, हे जनस्थान में रहने वाले तपस्वि-जनो ! सुनिए, सुनिए आप लोग ।

—जिस प्रकार सूर्य अपनी प्रचण्ड किरणों से अन्धकार का नाश कर देता है, इसी प्रकार शत्रु के फैलाये हुए अतुल तमःपटल को अपने प्रबल प्रताप से तहस-नहस कर, और मङ्गलमयी सती सीता को पाकर लोकाभिराम (सब जनों के हृदयों के दुलारे, नयनों के तारे) राम ने समग्र पृथ्वी को जय किया है ॥१०॥

कैकेयी—अम्महे, पुत्तस्स मे विजअघोसणा वड्ढइ।
अम्महे, पुत्रस्य मे विजयघोषणा वर्धते।
[ततः प्रविशति कृताभिषेको रामः सपरिवारः]

रामः—[विलोक्याकाशे] भोस्तात !

स्वर्गेऽपि तुष्टिमुपगच्छ विमुञ्च दैन्यं
कर्म त्वयाभिलषितं मयि यत् तदेतत्।
राजा किलास्मि भुवि सत्कृतभारवाही
धर्मेण लोकपरिरक्षणमभ्युपेतम् ॥११॥

कैकेयी रामस्य राजसिंहासनारोहणघोषणया हृष्यति—**अम्महे** इति। **अम्महे** इति सन्तोषार्थकमव्ययम्।

राज्याभिषिक्तो रामो ब्रवीति—"**स्वर्ग**" इति। **भोस्तात ! स्वर्गेऽपि** असन्निहितोऽपीति भावः, **तुष्टिम्** प्रीतिम्, **उपगच्छ** प्राप्नुहि [मम सुतो मत्प्रतिज्ञामवितथीकृत्य राज्यसिंहासनमारोहतीति विज्ञाय प्रसन्नो भवेत्यर्थः]। **दैन्यम्** चिन्ताम्, **विमुञ्च** त्यज [मयि सकुशलं वनाद् विनिवृत्ते चिन्ताया अनवसरादिति भावः]। **त्वया, मयि** मद्विषये, **यत्कर्म** राज्याभिषेचनलक्षणम्, **अभिलषितम्** इष्टम्, आसीद्, **तदेतद्**, सम्पन्नमिति शेषः। **भुवि** पृथिव्याम्, **सत्कृतभारवाही** सत्कृतम् सद्भिरनुमोदितम्, भारम् राज्यभारम्, वहतीति तादृशः सन् [पूजितस्य भारस्य वोढेति गणपतिशास्त्रिणः], **राजा** नृपतिः, **अस्मि** भवामि। **किलेति** निश्चये। **धर्मेण** धर्मानुकूलम्, **लोकपरिरक्षणम्** लोकस्य, परिरक्षणम् परिपालनम्, **अभ्युपेतम्** अङ्गीकृतम्, मयेति शेषः। वसन्ततिलकम् ॥११॥

कैकेयी—अहा ! जिधर देखो उधर ही मेरे पुत्र की जय-घोषणा हो रही है।
[राज्याभिषिक्त हुए राम का सपरिवार प्रवेश]

राम—[आकाश की ओर देखकर] **पूज्य पितृदेव !**

—आप (तब न सही) अब, स्वर्ग में ही आनन्दमग्न हो लो; और दीनता को छोड़ो। आपने मेरे विषय में जो (राजतिलक का) कार्य करना चाहा था, (आपके आशीर्वाद से) वह अब सफल हो चला। अब मैं धराधाम में पुण्य-भार का उठाने वाला राजा बन गया हूँ और मैंने न्याय-पूर्वक प्रजा-पालन का उत्तरदायित्व ग्रहण कर लिया है ॥११॥

भरतः—

अधिगतनृपशब्दं धार्यमाणातपत्रं
विकसितकृतमौलिं तीर्थतोयाभिषिक्तम् ।
गुरुमधिगतलीलं वन्द्यमानं जनौघै-
र्नवशशिनमिवार्यं पश्यतो मे न तृप्तिः ॥१२॥

रामं राज्यारूढं विलोक्य प्रसन्नो भरत आह—"**अधिगत**" इति । **अधिगतनृपशब्दम्** अधिगतः प्राप्तः स्वीकृतः, नृपशब्दः नृप इति शब्दो येन तम्, प्राप्तराज्यमित्यर्थः, **धार्यमाणातपत्रम्** धार्यमाणम्, आतपत्रम् राजचिह्नरूपं छत्रम्, यस्मै तादृशम्, राजच्छत्रधारिणमिति भावः, **विकसितकृतमौलिम्** विकसितः सुशोभितः, कृतः, मौलिः किरीटं येन तादृशः, येन स्वशिरसि धारणेन किरीटस्यापि शोभा समुत्पादितेति भावः ['मौलिः किरीटे धम्मिल्ले चूडायामनपुंसकम्' इति मेदिनी । कृतो धारित इति गणपतिशास्त्रिणः], **तीर्थतोयाभिषिक्तम्** तीर्थतोयेन गङ्गादिसरिदुदकेन, अभिषिक्तम् स्नपितम्, **अधिगतलीलम्** अधिगता प्राप्ता लीला राजोचितविलासो येन तादृशम्, **जनौघैः** जनसमूहैः, **वन्द्यमानम्** नम्यमानम्, अतएव, **नवशशिनमिव** नवोदितं चन्द्रमसमिव द्वितीयाचन्द्रमिवेति भावः, स्थितम्, **गुरुम्** ज्येष्ठम्, **आर्यम्** पूजनीयं रामम्, **पश्यतः**, **मे** मम भरतस्य, **तृप्तिः** श्रद्धाप्रतीघातः, **न** न भवतीत्यर्थः ।

भरतनिष्ठो रामविषयो रतिभावः प्रधानतया व्यज्यते । नवशशिनमिवेत्युपमया रामस्य निष्कलङ्कत्वं प्रतिक्षणवर्धिष्णुता चाभिव्यज्यते । मालिनीवृत्तम् ॥१२॥

भरत—'महाराज' यह पदवी ग्रहण किये, अपने ऊपर राजच्छत्र धारण किये, सिर पर जगमगाते हुए ताज को पहने, पावन तीर्थ-जलों से राज्याभिषिक्त हुए, राज-गौरव को प्राप्त हुए, और (जिधर देखो, उधर ही) चारों ओर से प्रजा-वर्ग द्वारा जय-जयकार से अभिनन्दित किये जा रहे, नये चाँद की भाँति, अपने पूज्य भ्राता आर्य को देखते-देखते मेरा जी नहीं भरता ॥१२॥

शत्रुघ्नः—

एतदार्याभिषेकेण कुलं मे नष्टकल्मषम् ।
पुनः प्रकाशतां याति सोमस्येवोदये जगत् ॥१३॥

रामः—वत्स लक्ष्मण ! अधिगतराज्योऽहमस्मि ।

लक्ष्मणः—दिष्ट्या भवान् वर्धते ।

[प्रविश्य]

काञ्चुकीयः—जयतु महाराजः । एष खलु तत्रभवान् विभीषणो विज्ञापयति, सुग्रीवनीलमैन्दजाम्बवद्धनूमत्प्रमुखाश्चानुगच्छन्तो विज्ञापयन्ति—दिष्ट्या भवान् वर्धत इति ।

शत्रुघ्नः स्तौति—"एतद्" इति । **एतद् मे कुलम्**, **आर्याभिषेकेण** आर्यस्य ज्येष्ठस्य रामस्य, अभिषेकेण राजसिंहासनारोहणेनेत्यर्थः, **नष्टकल्मषम्** नष्टं विलुप्तम्, कल्मषम् आर्यानभिषेकप्रयुक्तं मालिन्यं यस्य तादृशं सत्, **सोमस्य** चन्द्रमसः, **उदये**, **जगदिव** भुवनमिव, **पुनः** भूयः, **प्रकाशताम्** प्रख्यातिम्, हर्षं वा, चन्द्रपक्षे आलोकवत्त्वम्, **याति** प्राप्नोति ।

यथा अन्धकारावृतं जगच्चन्द्रमस उदये प्रकाशमधिगच्छति, तथैव पूर्वमार्यानभिषेकेण किञ्चिदपकीर्तिं दुःखं वा भजदपीदं नः कुलमिदानीं पुनरार्यस्याभिषेकेण यशोभाजनं भवतीति भावः । उपमालङ्कारः ॥१३॥

शत्रुघ्न—जिस प्रकार चन्द्रमा के उदय होने से (अन्धकार विलीन होकर) सारा संसार प्रकाशित होने लगता है, इसी प्रकार आर्य का राज्याभिषेक हो जाने से निष्कलङ्क हुआ हमारा यह रघु-कुल अब फिर देदीप्यमान होने लगा ॥१३॥

राम—वत्स लक्ष्मण ! अब मैंने राज्य प्राप्त कर लिया !

लक्ष्मण—अहोभाग्य ! आपकी जय-वृद्धि हो (आपको बधाई हो) ।

[कंचुकी का प्रवेश]

कंचुकी—जय हो महाराज की । यह लङ्काधिपति विभीषण निवेदन करते हैं; सुग्रीव, नील, मैन्द, जाम्बवान्, तथा हनूमान् प्रभृति आपके अनुचर निवेदन करते हैं—'अहोभाग्य ! आपकी जय-वृद्धि (मंगल जय-जयकार) हो' ।

रामः—सहायानां प्रसादाद् वर्धत इति कथ्यताम् ।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः ।

कैकेयी—धण्णा खु म्हि । इदं अब्भुदअं अओज्झाअं पेक्खिदुं इच्छामि ।

धन्या खल्वस्मि । इममभ्युदयमयोध्यायां प्रेक्षितुमिच्छामि ।

रामः—द्रक्ष्यति भवती । [विलोक्य] अये प्रभाभिर्वनमिदमखिलं सूर्यवत् प्रतिभाति । [विभाव्य] आ ज्ञातम् । सम्प्राप्तं पुष्पकं दिवि रावणस्य विमानम् । कृतसमयमिदं स्मृतमात्रमुपगच्छतीति । तत् सर्वैरारुह्यताम्[1] ।

[सर्वे आरोहन्ति]

काञ्चुकीयमुखेन विभीषणादीनां सभाजनं प्राप्य राम उत्तरति—**सहायानामिति** । भवत्साहाय्यमेव मे वृद्धौ कारणमिति भावः । आकाशादवतरतः पुष्पकस्य प्रभाभिरकस्मात् सूर्यवत् प्रकाशमानं तपोवनं वीक्ष्य तत्कारणमनवधारयन् रामो विस्मयते—**अये** इति । विभाव्य विचार्य ऊहित्वा । **ज्ञातम्** विदितम् । **कृतसमयम्** कृतसङ्केतम् । विमानेन सहैष सङ्केत आसीद् यद् यदैव यत्र तत् स्मर्येत तदानीमेव तत्र तदुपतिष्ठेतेति भावः ।

राम—'सहायकों के अनुग्रह से जय-वृद्धि (मंगल जय-जयकार) ही है' यह कह दीजिए ।

कंचुकी—जो महाराज की आज्ञा ।

कैकेयी—मैं धन्य-धन्य हूँ । इस अभ्युदय को अयोध्या में भी हुआ देखना चाहती हूँ ।

राम—आप वहाँ भी देख लेंगी । [देखकर] अहो ! प्रभा-पुञ्ज से यह सारा वन, सूर्य की भाँति, प्रकाशित हो रहा है । [सोचकर] अच्छा, समझ गया । आकाश में रावण का पुष्पक विमान आ पहुँचा है । याद करते हीं यह ठीक समय पर उपस्थित हो जाता है । सो आप सब लोग सवार हो जाइए ।

[सब सवार होने लगते हैं]

---

१ आरुह्यतां रथः.

रामः—

अद्यैव यास्यामि पुरीमयोध्यां
सम्बन्धिमित्रैरनुगम्यमानः।

लक्ष्मणः—

अद्यैव पश्यन्तु च नागरास्त्वां
चन्द्रं सनक्षत्रमिवोदयस्थम् ॥१४॥

[भरतवाक्यम्]

"अद्यैव" इति—अहम्, **सम्बन्धिमित्रैः** सम्बन्धिभिः भ्रात्रादिभिः, मित्रैः सुहृद्भिः विभीषणादिभिः, **अनुगम्यमानः** अनुस्रियमाणः, सन्, **अद्यैव**, **अयोध्याम्**, **पुरीम्**, **यास्यामि** गमिष्यामि।

न केवलं गमनमद्यैव करणीयमपितु तत्र प्राप्तिरप्यद्यैवोचिता, नागराणामत्युत्कण्ठितत्वाद् इत्याह लक्ष्मणः—**"अद्यैवे"**ति। किं **च, नागराः** नगरवासिनः, **त्वाम्**, **अद्यैव**, **सनक्षत्रम्** नक्षत्रसनाथम्, **उदयस्थम्** उदयपर्वतारूढम्, रामपक्षे राजपदप्राप्तिरूपाभ्युदययुक्तम्, **चन्द्रमिव** चन्द्रतुल्यम्, **पश्यन्तु**।

उपमालङ्कारः। नक्षत्राणां सम्बन्धिमित्राणां च परस्परं बिम्बप्रतिबिम्बभावः। इन्द्रवज्रा छन्दः ॥१४॥

अथ कविर्ग्रन्थान्ते भरतवाक्येन प्रशस्तिं वक्ष्यन्नाह—**भरतवाक्यमिति**। भरतस्य नटस्य वाक्यमित्यर्थः।

राम—मैं आज ही, अपने सगे-सम्बन्धियों और सुहृद्-वर्ग समेत, अयोध्या नगरी को जा पहुँचूँगा।

लक्ष्मण—और आज ही सारे नगरनिवासी, उदयाचल पर आरूढ हुए नक्षत्र-मण्डल सहित चन्द्रमा की भाँति, आपके दर्शन करें ॥१४॥

[भरतवाक्य]

यथा रामश्च जानक्या बन्धुभिश्च समागतः ।
तथा लक्ष्म्या समायुक्तो राजा भूमिं प्रशास्तु नः ॥१५॥

[निष्क्रान्ताः सर्वे]

सप्तमोऽङ्कः ।

प्रतिमानाटकं समाप्तम् ।

"**यथा**" इति—**यथा रामः**, **जानक्या च**, **बन्धुभिश्च**, **समागतः** संयुक्तः, **तथा**, **लक्ष्म्या** श्रिया, **समायुक्तः**, **नः** अस्माकम्, **राजा**, **भूमिम्**, **प्रशास्तु** परिपालयतु ॥१५॥

अङ्कसमाप्तिं सूचयति—**निष्क्रान्ताः सर्वे** इति ।

दैवज्ञागमपारीणाद् द्रोणाश्रमनिवासिनः ।
क्षीराब्धेरिव शुभ्रांशुर**च्युता**दजनिष्ट यः ॥
पार्वती यस्य जननी पार्वतीव पतिप्रिया ।
दया दानमलोभश्च यस्या नैसर्गिका गुणाः ॥
ज्येष्ठो यस्य गुणग्रामैरभिरामैरलङ्कृतः ।
विष्णुः श्रियेव सत्पत्न्या **श्रीधर्या** समुपाश्रितः ॥
सन्मतः करुणाचान्तचित्तः परहितव्रतः ।
आख्यया **सच्चिदानन्दो** भ्रातॄणामतिवत्सलः ॥
चतुर्वेदगुरोः पादमूलाद् विद्यास्वधीतिनः ।
परमेश्वरस्य तस्येयं कृतिनः कृतिरेधताम् ॥

इतिश्रीद्रोणाश्रमाभिजनश्रीमदच्युतानन्दशर्मतनुजन्म**श्रीपरमेश्वरानन्द**शर्म-कृतायां प्रतिमानाटकव्याख्यायां सप्तमोऽङ्कः समाप्तः ।

—जिस प्रकार मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् राम जानकी जी तथा अपने बन्धु-बान्धवों समेत (स-कुशल अपनी राजधानी अयोध्या पहुँच) रामराज्य करते रहे, उसी प्रकार राज्य-लक्ष्मी से युक्त हुए हमारे महाराज (राजसिंह ?) इस विशाल वसुधा का चिर-शासन करें ॥१५॥

[सब का प्रस्थान]

प्रतिमानाटक समाप्त ।

श्लोकानुक्रमणिका ।

श्लोकाः		पृष्ठाङ्काः
अक्षोभ्यः		४०
अङ्गं मे स्पृश		७९
अत्र रामश्च		१२९
अद्य खल्वव-		१३९
अद्यैव यास्यामि	इन्द्रवज्रा	२३९
अधिगतनृप-	मालिनी	२३६
अनपत्या वयं		६६
अनुचरति	मालिनी	५०
अन्वास्यमान-	उपजातिः	११२
अपि सुगुण !	मालिनी	१५०
अयं ते दयितो		१३८
अयं सैन्येन		२२८
अयं हि पतितः		११०
अयममरपतेः	पुष्पिताग्रा	८२
अयशसि यदि	मालिनी	१२०
अयोध्यामटवी-		१०६
असुरसमर-	मालिनी	१३७
अहं पश्चात्		१४२
अहं हि दुःख-		६९
अहो बलमहो		१८२
आदर्शे वल्कला-		२९
आपृच्छ पुत्र-	वसन्ततिलका	१७७
आरब्धे पटहे	शार्दूलवि०	२०
आशावन्तः		१५९
इदं गृहं तत्	वंशस्थं	१०९
इदं तत् स्त्रीमयं		१४१
इदानीं भूमि-		८
इयं स्वयं	उपजातिः	१४०
इयं हि	वंशस्थं	१९०
इयमेका		१७१
इह स्थास्यामि		१४८
उभयस्यास्ति		१७५
एतदार्याभि-		२३७
एते ते दैव-	सुवदना	९९
एते भृत्याः	शालिनी	७२
कमप्यर्थं चिरं		७८
कर्णौ त्वरापहृत-	वसन्ततिलकं	२७
कस्यासौ सदृश-	प्रहर्षिणी	१३२
कामं दैवत-		९७
काले खल्वागता		१०९
कुतः क्रोधो		२०२
कृतान्तशल्या-	उपजातिः	१६६
कृत्वा स्ववीर्य-	वसन्ततिलकं	१९४
क्रमप्राप्ते हृते		४३
क्व मे(ते)	शिखरिणी	७३
गच्छन्ति तुष्टिं	उपजातिः	१६७

श्लोकाः		पृष्ठाङ्काः
गतो रामः प्रियं		८१
गत्वा तु पूर्वं-	वसन्ततिलकं	१९८
गत्वा पूर्वं स्व-	स्रग्धरा	१४४
गुरोर्मे पाद-		५३
गोपहीना यथा		१२२
घनः स्पष्टो	शिखरिणी	१३३
चरति पुलिनेषु	आर्या	४
चीरमात्रोत्तरी-		५७
छत्रं सव्यजनं	शार्दूलवि०	७
जय नरवर	मालिनी	२२२
तं चिन्तयामि	वसन्ततिलकं	१५१
तं स्मृत्वा शुल्क-	सुवदना	१०७
तत्र यास्यामि		१२३
तपःसङ्ग्राम-		५४
तवैव पुत्रः		७०
तातस्यैतानि		१८०
ताते धनुर्नमतु	वसन्ततिलकं	४५
तीर्थोदकेन	वसन्ततिलकं	२३२
तेनोक्तं रुदित-		२१३
तैस्तर्पिताः सुत-	वसन्ततिलकं	१७७
तैस्तैः प्रवृद्ध-	वसन्ततिलकं	२२९
त्यक्त्वा तां गुरुणा	शार्दूलवि०	१६२
त्यक्त्वा स्नेहं	शालिनी	११७
त्रैलोक्यं दग्धु-		४४
त्वया राज्यैषिण्या	शिखरिणी	१२१
दैत्येन्द्रमान-	वसन्ततिलकं	१२७
द्रुमा धावन्तीव	शिखरिणी	८९

श्लोकाः		पृष्ठाङ्काः
धन्याः खलु		७२
नरपतिनिधनं	पुष्पिताग्रा	१४५
नरपतिनिधनं	पुष्पिताग्रा	१९९
नागेन्द्रा यवसा-	शार्दूलवि०	६१
नारीणां पुरुषाणां	अनुष्टुप्	३२
नियतमनियतात्मा	मालिनी	१६९
निर्घृणश्च कृतघ्नश्च		१३१
निर्योगाद् भूष-		५२
पक्षाभ्यां परिभूय	शार्दूल०	१९२
पतत्युत्थाय		६२
पतितमिव	उपजातिः	९१
पादोपभुक्ते	इन्द्रवज्रा	१५५
पितुः प्राणपरि-		९३
पितुर्नियोगा-	वंशस्थं	१४८
पितुर्मे को	शिखरिणी	८८
पितुर्मे नौरसः		११८
पित्रा च बान्धव-	वसन्तति०	२०६
प्रख्यातसद्गुण-	वसन्त०	१९७
फलानि दृष्ट्वा		१६८
बलादेष दश-		१८८
भग्नः शक्रः	शालिनी	१८४
भरतो वा भवेद्		४४
भ्रमति सलिलं	हरिणी	१६३
मङ्गलार्थेऽनया		४८
मद्गुजाकृष्ट-		१८९
मम मातुः प्रियं		१२८
मम मातुश्च		११४
माययापहृते		१८२

श्लोकाः		पृष्ठाङ्काः
मा स्वयं मन्यु-		३१
सुखमनुपमं	हरिणी	१३४
मेरुश्चलन्निव	वसन्त०	५९
यः स्वराज्यं		२१०
यत्कृते महति		४७
यत्सत्यं परि-	शार्दूलवि०	१५२
यथा रामश्च		२४०
यदि न सहसे	हरिणी	४१
यस्याः शक्रसमो		३५
यावद्भविष्यति	वसन्त०	१५३
युद्धे येन सुराः	शार्दूल०	१८३
येन प्राणाश्च		१०३
योऽस्याः करः	उपजातिः	१६४
योऽहमुत्पातितो		१८७
रघोश्चतुर्थो-	उपजातिः	१३६
राज्ये त्वामभिषिच्य	शार्दूल०	८०
रामं वा शरण-	प्रहर्षिणी	१८५
रामलक्ष्मणयो-		७६
रामेणापि परि-		६४
रेणुः समुत्पतति	वसन्त०	२२७
वक्तव्यं किञ्चि-		९८
वक्षः प्रसारय	वसन्त०	१४३; २३०
वनगमन-	मालिनी	३६
वयमयशसा	हरिणी	११५
वल्कलैर्हृत-		११९
विचेष्टमानेव	वंशस्थं	१९१
विलपसि किमिदं	पुष्पिताग्रा	१८६

श्लोकाः		पृष्ठाङ्काः
विविधैर्व्यसनैः		२३१
वेलामिमां मत्त-	उपजातिः	२१७
वैरं मुनिजन-		२०५
शत्रुघ्नलक्ष्मण-	वसन्त०	२६
शरीरेऽरिः		३३
शुल्के विपणितं		३८
शून्यः प्राप्तो यदि		७१
शोकादवचनाद्		३९
श्रद्धेयः स्वजनस्य	शार्दूल०	१५७
श्रुत्वा ते वनगमनं	प्रहर्षिणी	५६
सकृत् स्पृशामि		७७
सखीति सीतेति	उपजातिः	२२४
सत्यसन्ध ! जित-		६४
समं बाष्पेण		२५
समुदितबल-	मालिनी	२२३
सीताभवः पातु	उपजातिः	१
सुग्रीवो भ्रंशितो		२०४
सुचिरेणापि		१५६
सूर्य इव गतो	आर्या	६६
सौवर्णान् वा मृगान्		१७९
स्वर्गं गते नर-	वसन्त०	१२६
स्वर्गेऽपि तुष्टि-	वसन्त०	२३५
स्वैरं हि पश्यन्तु	इन्द्रवज्रा	५५
हत्वा रिपुप्रभव-	वसन्त०	२३४
हन्त भोः सत्त्व-		२१०
हा वत्स ! राम !	वसन्त०	६३
हृदय ! भव	मालिनी	१०४
हृदयस्थित-		१९६

इन्द्रवज्रा—

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः ।

जिसमें दो तगण, एक जगण और दो गुरु हों, उसे 'इन्द्रवज्रा' कहते हैं।

मालिनी—

ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ।

यदि दो नगण, एक मगण, पुनः दो यगण हों तो वह छन्द 'मालिनी' कहाता है।

उपजातिः—

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ।
अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ॥

जिसमें दो तगण, एक जगण और दो गुरु हों, उसे 'इन्द्रवज्रा' कहते हैं। जिसमें क्रम से जगण, तगण, जगण और तदनन्तर दो गुरु हों, उसको 'उपेन्द्रवज्रा' कहते हैं। जिसके पादों में 'इन्द्रवज्रा' और 'उपेन्द्रवज्रा' के लक्षण हों, उसे 'उपजातिवृत्त' कहते हैं।

पुष्पिताग्रा—

अयुजि नयुगरेफतो यकारो
युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।

जिसके विषम (पहले, तीसरे) पादों में दो नगणों और एक रगण से परे एक यगण हो और सम (दूसरे, चौथे) पादों में नगण, जगण, पुनः जगण, रगण, तदनन्तर एक गुरु हो, उसको 'पुष्पिताग्रा' कहते हैं।

वसन्ततिलका—

उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।

जिसमें तगण, भगण, जगण, पुनः जगण, तदनन्तर दो गुरु हों, उसको 'वसन्ततिलका' कहते हैं।

शार्दूलविक्रीडितम्—

सूर्याश्वैर्मसजस्ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ।

जिसमें मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, पुनः तगण, तदनन्तर

एक गुरु हो, उसको 'शार्दूलविक्रीडित' कहते हैं। इसमें बारह और सात पर यति होती है।

वंशस्थम्—

जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ ।

यदि जगण, तगण, जगण, रगण हो तो 'वंशस्थ' वृत्त होता है।

सुवदना—

ज्ञेया सप्ताश्वषड्भिर्मरभनययुता भ्लौ गः सुवदना ।

जिसमें मगण, रगण, भगण, नगण, यगण, पुनः भगण, लघु और अन्त में एक गुरु हो तथा ७, ७, ६ पर यति हो तो उसको 'सुवदना' कहते हैं।

प्रभा—

स्वरशरविरतिर्ननौ रौ प्रभा ।

यदि दो नगण, दो रगण हों तो 'प्रभा' छन्द होता है।

स्रग्विणी—

रैश्चतुर्भिर्युता स्रग्विणी सम्मता ।

यदि चार रगण हों तो 'स्रग्विणी' छन्द होता है।

शालिनी—

शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः ।

जिसमें एक मगण, दो तगण, तदनन्तर दो गुरु हों, उसको 'शालिनी' कहते हैं। इसकी चार और सात पर यति होती है।

प्रहर्षिणी—

म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम् ।

यदि क्रमशः मगण, नगण, जगण, रगण और अन्त में एक गुरु हो तो उस छन्द का नाम 'प्रहर्षिणी' होता है। इसकी तीन तथा दस पर यति होती है।

शिखरिणी—

रसैः रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ।

जिसमें यगण, मगण, नगण, सगण, भगण, तदनन्तर क्रमशः एक लघु और एक गुरु हों, उसको 'शिखरिणी' कहते हैं। इसकी छः और ग्यारह पर यति होती है।

स्रग्धरा—

> म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ।

यदि मगण, रगण, भगण, नगण और तदनन्तर तीन यगण हों तथा तीन बार सात २ अक्षरों पर यति हो तो उसे 'स्रग्धरा' कहते हैं।

आर्या—

> यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
> अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या ॥

जिसके पहले और तीसरे पाद में तो बारह, दूसरे पाद में अठारह, और चौथे पाद में पन्द्रह मात्राएँ हों, उसे 'आर्या' कहते हैं।

अनुष्टुप् श्लोक—

> पञ्चमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः ।
> षष्ठं गुरु विजानीयाद् एतत् श्लोकस्य लक्षणम् ॥

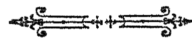
इसके चारों पादों में पाँचवाँ वर्ण लघु और छठा वर्ण दीर्घ और सम पादों में सातवाँ वर्ण भी लघु होता है।

हरिणी—

> रसयुगहयैन्सौं म्रौ स्लौ गो यदा हरिणी तदा ।

जिसमें नगण, सगण, मगण, रगण, सगण, तदनन्तर क्रमशः एक लघु और एक गुरु हों, उसको 'हरिणी' कहते हैं। इसकी छः, चार और सात पर यति होती है।

नाटकादिलक्षणानि ।



नाटकम्—

> वीरशृङ्गारयोरेकः प्रधानं यत्र वर्ण्यते ।
> प्रख्यातनायकोपेतं नाटकं तदुदाहृतम् ॥

जिसमें वीर या शृङ्गार इनमें से कोई एक रस प्रधानतया वर्णित रहता है—अन्य सब रस अङ्गभूत रहते हैं, और नायक प्रसिद्ध होता है, वह 'नाटक' कहा गया है।

पूर्वरङ्गः—

यन्नाट्यवस्तुनः पूर्वं रङ्गविघ्नोपशान्तये ।
कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरङ्गः स उच्यते ॥

नाटकीय वस्तु के पूर्व, रङ्ग (नाट्यशाला) के विघ्नों को दूर करने के लिए नर्तक लोग जो कुछ करते हैं, उसे 'पूर्वरङ्ग' कहते हैं ।

नान्दी—

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥

देवता, ब्राह्मण तथा राजादिकों की आशीर्वाद युक्त स्तुति इससे की जाती है, इसलिए इसे 'नान्दी' कहते हैं । इससे लोग आनन्दित होते हैं, इसलिए यह 'नान्दी' है ।

सूत्रधारः—

आसूत्रयन् गुणान् नेतुः कवेरपि च वस्तुनः ।
रङ्गप्रसाधनप्रौढः सूत्रधार इहोदितः ॥

नायक के, कवि के और नाटकप्रतिपाद्य वस्तु के गुणों को (नान्दी द्वारा) संक्षेप से सूचित करने वाला 'सूत्रधार' कहाता है । यह रङ्गमञ्च को अलङ्कृत करने में सुचतुर होता है ।

प्रयोगातिशयः—

यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते ।
तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तदा ॥

यदि एक ही प्रयोग में अन्य प्रयोग प्रारम्भ हो जाय और उसी के द्वारा पात्र का प्रवेश हो तो उसे 'प्रयोगातिशय' नामक प्रस्तावना कहते हैं ।

नेपथ्यम्—

कुशीलवकुटुम्बस्य स्थलं नेपथ्यमुच्यते ।

नर्तक समुदाय के रहने की जगह को (जहाँ रह कर कि वे वेष बदलते हैं) 'नेपथ्य' कहते हैं ।

प्रस्तावना स्थापना आमुखं वा—

सूत्रधारो नटीं ब्रूते मारिषं वा विदूषकम् ।
स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम् ॥
प्रस्तावना वा—

जहाँ सूत्रधार नटी, मारिष वा विदूषक से अपने कार्य के विषय में विचित्र उक्ति से इस प्रकार बात चीत करे जिससे प्रस्तुत कथा का सूचन हो जाय, उसे 'आमुख' कहते हैं। उसीका नाम 'प्रस्तावना' भी है। उसीको प्राचीन कवि भास के नाटकों में 'स्थापना' शब्द से कहा गया है।

अङ्कः—

अङ्क इति रूढिशब्दो भावैश्च रसैश्च रोहयत्यर्थान् ।
नानाविधानयुक्तो यस्मात् तस्माद् भवेदङ्कः ॥
यत्रार्थस्य समाप्तिर्यस्य च बीजस्य भवति संहारः ।
किञ्चिदवलग्नबिन्दुः सोऽङ्क इति सदावगन्तव्यः ॥

जो भाव और रसों से अर्थों को अङ्कुरित करता है, जिसमें नाना प्रकार के विधान होते हैं, जहाँ एक अर्थ की समाप्ति तथा बीज का उपसंहार होता है और कुछ बिन्दु का सम्बन्ध होता है, उसे 'अङ्क' कहते हैं। 'अङ्क' यह रूढिशब्द है।

मिश्रविष्कम्भकः—

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः ॥
मध्येन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां सम्प्रयोजितः ।
शुद्धः स्यात् स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः ॥

---

१. अल्पमात्रं समुद्दिष्टं बहुधा यद्विसर्पति ।
फलस्य प्रथमो हेतुर्बीजं तदभिधीयते ॥

जिसका पहले अत्यल्प कथन किया जाय, किन्तु विस्तार उसका अनेक रूप से हो, उसे 'बीज' कहते हैं। यह फलसिद्धि का प्रथम हेतु होता है।

२. अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम् ।

अवान्तर कथा के विच्छिन्न होने पर भी प्रधान कथा के अविच्छेद का जो निमित्त है, उसे 'बिन्दु' कहते हैं।

बीती हुई और होने वाली कथाओं का सूचक, कथा का संक्षेप करने वाला अङ्क 'विष्कम्भक' कहाता है। यह अङ्क के आदि में प्रयुक्त होता है। जब एक ही मध्यम पात्र अथवा दो मध्यम पात्र प्रयोग करते हैं, तब इसे 'शुद्ध-विष्कम्भक' कहते हैं। और यदि नीच तथा मध्यम दोनों तरह के पात्रों द्वारा प्रयोग किया जाय तो इसे 'मिश्र-विष्कम्भक' कहते हैं।

स्वगतम्—

अश्राव्यं खलु यद्वस्तु तदिह स्वगतं मतम्।

जो बात सुनाने योग्य नहीं होती, उसे 'स्वगत' कहते हैं। नाटक में जिस उक्ति के साथ 'स्वगत' या 'आत्मगत' लगा होता है, उसे वह पात्र अपने ही मन में कहता है, दूसरे पात्र से नहीं। किन्तु इस तरह कहता है, जिससे सामाजिक सुन लें।

प्रकाशम्—

सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्।

जो बात सब को सुनाने योग्य होती है, उसे 'प्रक... कहते हैं।

प्रवेशकः—

प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।

प्रवेशक का प्रयोग नीच पात्रों के द्वारा कराया जाता है। इसमें उक्तियाँ उदात्त (उत्कृष्ट—रमणीय) नहीं होतीं।

अपवारितम्—

रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्यापवारितम्।

जो बात किसी एक पात्र से छिपाकर दूसरे पात्र से फिर कर कहनी हो, उसे 'अपवारित' कहते हैं।

आकाशभाषितम्—

किं ब्रवीष्येवमित्यादि विना पात्रं ब्रवीति यत्।
श्रुत्वेवानुक्तमप्येकस्तत् स्यादाकाशभाषितम्॥

किसी दूसरे पात्र के विना ही, बिन कही बात को सुना सा करके 'क्या कहते हो' यह वाक्य कहकर पात्र अपनी जो कोई बात कहता है, उसे 'आकाशभाषित' कहते हैं।

काञ्चुकीयः—

ये नित्यं सत्यसंपन्नाः कामदोषविवर्जिताः।
ज्ञानविज्ञानकुशलाः काञ्चुकीयास्तु ते स्मृताः॥

जो सदा सत्य बोलने वाले, निश्छल व्यवहार करने वाले, कामदोषों से रहित और ज्ञान तथा विज्ञान में कुशल होते हैं, वे 'काञ्चुकीय' कहाते हैं ।

नायकः—

त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही ।
दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजोवैदग्ध्यशीलवान् नेता ॥

दानी, कृतज्ञ, कुलीन, लक्ष्मीसम्पन्न, रूप यौवन और उत्साह से युक्त, चतुर, लोगों के अनुराग का पात्र, तेजस्वी और सुशील पुरुष 'नायक' होता है ।

नायिका—

'त्यागी कृती कुलीनः' इत्यादि में कहे हुए नायक के त्यागादि सामान्य लक्षणों से युक्त 'नायिका' कहलाती है ।

धीरोदात्तः इति—

[illegible]राविधानः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्त्वः ।
स्थे[illegible]मानो धीरोदात्तो दृढव्रतः कथितः ॥

[illegible]ता न करने वाला, क्षमायुक्त, गम्भीर, हर्षशोकादि में भी विचलित न होने वाला और स्थिर प्रकृति वाला, जिसका अभिमान विनय के कारण छिपा हुआ रहता है और जो अपनी बात का पक्का और भाव का पूरा होता है, वह 'धीरोदात्त' कहलाता है ।

रसः—

व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायीभावो रसः स्मृतः ।

विभाव, अनुभाव और व्यभिचारिभाव से अभिव्यक्त स्थायीभाव को रस कहते हैं ।

करुणः—

इष्टनाशादनिष्टाप्तेः करुणाख्यो रसो भवेत् ।
शोकोऽत्र स्थायिभावः स्याच्छोच्यमालम्बनं मतम् ॥

इष्टवस्तु के नाश और अनिष्ट की प्राप्ति से करुणरस आविर्भूत होता है । इस रस में शोक स्थायी भाव होता है और जिसके विषय में शोक हो, पुत्र-पति आदि आलम्बन विभाव ।

वीररसः—

उत्तमप्रकृतिर्वीर उत्साहस्थायिभावकः ।

जिसका स्थायीभाव उत्साह हो और जो पात्र में आश्रित हो, उसको वीररस कहते हैं ।